

तावद्दर्शं तद्वारि संस्थितं मकरध्वजम् । स धृत्वा तं हनुमन्तं प्रच्छ मकरध्वजः ॥८३॥  
 कस्त्वं कुतः समायातः स्ववृत्तं प्राह मारुतिः । रामदृतस्तु लङ्कायाश्चानीतौ रामलक्ष्मणौ ॥८४॥  
 निद्रितौ निशि दैत्याभ्यामन्त्र पातालमध्यं हि । तयोः शोधार्थमायातथेच्च वेत्सि वदस्व तौ ॥८५॥  
 तन्मारुतिवचः श्रुत्वा तं प्राह मकरध्वजः । पिता मे वर्तते तत्र क्षेमेणाजनिसंभवः ॥८६॥  
 तच्छ्रुत्वा चकितः प्राह हनुमान् मकरध्वजम् । हनुमतः कुतः पत्नी सोऽन्नवीन्मारुतिं पुनः ॥८७॥  
 लङ्कादाहं पुरा कृत्वा सागरे शीतलं कृतम् । यदा पुच्छं मारुतिना तदा तद्मपूरितात् ॥८८॥  
 कंठाच्छ्लेष्मा बहिस्त्यकः सागरे सोऽपततदा ।

मकर्या भक्षितः सोऽपि तस्यां जातः मुतोऽस्म्यहम् ॥८९॥

तच्छ्रुत्वा मारुतिः प्राह सोऽयमेव न संशयः । तदा ननाम पितरं तथा वृत्तं न्यवेदयत् ॥९०॥  
 कामाक्ष्याश्च बलिं कर्तुं निश्चितौ पूर्वमेव हि । तावानेतुं यदोद्युक्तौ लङ्कां गत्वा सुरोत्तमौ ॥९१॥  
 श्वः कामाक्ष्याः पुरः कर्तुं तयोर्दानं विनिश्चितम् । गच्छ देवालये गत्वा तत्र स्थित्वा हरस्व तौ ॥९२॥  
 ततः स मारुतिर्गत्वा त्रसरेणुस्वरूपघृक् । देवालये प्रविश्याथ कपाटानि ववंध सः ॥९३॥  
 तावद्देत्यौ सप्तायातौ पूजार्थं द्वारि संस्थितौ । शर्नदेव्याः स्वरेणैव मारुतिस्तौ वचोऽन्नवीत् ॥९४॥  
 पूजा कार्शा गत्राक्षेण सजीवी रामलक्ष्मणौ । वनोद्भूवैः फलैः पुष्पादिभिः सम्यक् प्रपूजितौ ॥९५॥  
 घृतकोदण्डतूणीरौ वन्यपुष्पैश्च शोभितौ । देवालयस्य किंचिद्विद्वामुद्वाय्य वै शनैः ॥९६॥  
 मत्पृष्ठर्थं प्रेपणीयावत्र मामध्यं मानवी । येन केन प्रकारेण यो मामध्यं प्रपश्यति ॥९७॥  
 भविष्यति निश्चयेन सोऽन्धो नास्त्येव संशयः । तदेव्या वचनं श्रुत्वा तुष्टां ज्ञात्वाऽम्बिकां मुदा ॥९८॥

ते लिए नरमांस ला देंगा । इस बातको सुनकर मारुति कुछ संतुष्ट होकर आगे बढ़े ॥ ८२ ॥ आगे जाकर उन्होंने उसके द्वारपर मकरध्वजको बैठे देखा । उस मकरध्वजने मारुतिको पकड़ लिया और पूछा—॥ ८३ ॥ तुम कौन हो और कहांसे आये हो ? मारुतिने अपना परिचय दिया कि मैं रामका दूत हूँ । सीते हुए रामलक्ष्मणको लङ्कासे दो राजस उठाकर यहाँ पातालमें आज ही ले आये हैं । मैं उन दोनोंकी खोज करने यहाँ आया हूँ । यदि तुमको उनका कुछ पता हो तो बताओ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ मारुतिके इस वचनको सुनकर मकरध्वजने पूछा कि मेरे पिता अञ्जनीकुमार हनुमान् वहाँ कुशलक्षेमसे हैं ? ॥ ८६ ॥ यह सुना तो हनुमान् ने चकित होकर पूछा—अरे ! हनुमान् की स्त्री ही कौन सी थी कि जिससे तू पंदा हुआ ? उसने मारुतिको उत्तर दिया—॥ ८७ ॥ (जब हनुमान् ने लङ्काको जलाकर अपनी पूँछ समुद्रमें ठण्डी की थी । उस समय उन्होंने घुऐसे जमा हुआ कठका कफ जलमें धूक दिया था । उसे एक मछलीने खा लिया । वह, उसीसे उत्पन्न मैं उनका पुत्र हूँ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥) यह सुनकर मारुतिने कहा कि यदि ऐसा है, तब तो मैं ही अञ्जनीपुत्र हूँ । यह बात सर्वथा सत्य है । तब मकरध्वजने अपने पिता हनुमान् को प्रणाम किया और सब समाचार भी कह नुनाया ॥ ९० ॥ उसने कहा कि जब वे दोनों असुर वहाँसे रामलक्ष्मणको निनेके लिए लङ्का गये थे, उससे पूर्व ही उन दोनोंने रामलक्ष्मणको कामाक्षी देवीके सामने वलिदान देनेका निश्चय कर लिया था । तदनुसार कल उन दोनोंका देवीके सम्मुख वलिदान देना निश्चित हो चुका है । जाओ, देवालयमें जाकर खड़े हो जाओ और वहाँसे उन दोनोंको उठा ले जाना ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ तत्पश्चात् हनुमान् त्रसरेणुके समान छोटा रूप धारण करके देवालयमें घुस गये तथा अन्दर जाकर चुपचाप खड़े हो गये । उसी समय मारुतिने भीतरसे देवीके जैसा स्वर बनाकर कहा—॥ ९३ ॥ ९४ ॥ आज तुम लोग ज्ञानोंमेंसे ही मेरी पूजा कर लो और वादमें घनुष तथा तूणीरको धारण करनेवाले रामलक्ष्मण नामके दोनों मनुष्योंको बनफूल तथा फलों और पुष्पमालाओंसे सुशोभित करके जीवित ही मेरी प्रसन्नताके लिए तनिक-सी किवाड़ खोलकर धीरेसे भीतर कर दो । कोई मनुष्य यदि आज किसी प्रकार तनिक भी मुझको देखेगा तो वह अवश्य अन्धा हो जायगा । देवीके इस आदेशको

ततस्तौ पूजनं दैत्यौ गवाक्षेणैव चक्रतुः । पक्वान्नपायसादीनां राशीस्तौ प्रमुमोचतुः ॥१९॥  
 प्रिंचामृतघटांश्चापि कोटिशस्तौ मुमोचतुः । कोटिशः फलभारैश्च गवाक्षेण मुमोचतुः ॥२०॥  
 तत्सर्वं भक्षयित्वा स मारुतिः प्राह तौ पुनः । किं दत्तं ग्रासमात्रं मे भोजनं चुधिताऽस्म्यहम् ॥२१॥  
 तदेव्या वचनं अत्वा तौ दैत्यावतिस्मितौ । दूतैविलुङ्घ्य हड्डांश्च तथा स्त्रीयपुरुषैकसाम् ॥२२॥  
 भक्षणीयपदाथाँस्तौ गिरीनिव मुमोचतुः । राजगृहादिषु स्वेषु यद्यद्वस्त्वस्ति संचितम् ॥२३॥  
 तच्चापि दूतैरानीय देव्यै शीघ्रं मुमोचतुः । तदा कोलाहलशासीत्प्रतिगेहे पुरुषैकसाम् ॥२४॥  
 नासीच्छेष्व बालकानां भक्षयवस्त्वण्वपि क्षचित् । ततस्तौ वन्यपुष्पाद्यैर्भूषितौ रामलक्ष्मणौ ॥२५॥  
 घृतकोदंडतूणीरौ द्वारेणैवार्पितौ श्रियै । तौ हृष्टा मारुतिर्नत्वाऽलिङ्ग्य श्रीरामलक्ष्मणौ ॥२६॥  
 कपाटानि तदोद्भाव्य दैत्ययोः स व्यतर्जयत् । ततो रामो लक्ष्मणेन वहिर्देवालयात्तदा ॥२७॥  
 निर्गत्य शरजालैस्तौ जघान क्षणमात्रतः । सेवकान् सुहृदार्दीश्च तयोर्वर्णं जघान सः ॥२८॥  
 पुनस्तौ जीवितौ दैत्यौ पुनस्तेन निपातितौ । शतवारं हतावेवं नासीन्मृत्युस्तयोस्तदा ॥२९॥  
 ततोऽतिविस्मितो भूत्वा त्वरन्गत्वा स मारुतिः । इतस्तो अमन्युर्यां नारीं रहसि संस्थिताम् ॥२१०॥  
 ऐरावणभोगपत्नीं पप्रच्छ मरणं तयोः । सा प्राह नागकन्याऽहं बलेनानेन धर्षिता ॥२११॥  
 मैरावणोऽपि मा नित्यं दुष्टबुद्ध्याऽन्नं पश्यति । उभाभ्यामपि च क्रीडां दातुं नास्ति बलं मयि ॥२१२॥  
 मित्रं त्वेको रिपुस्त्वेकस्त्वति दुःखं तयोर्मम । अतस्तयोर्वधे तुष्टिर्मम चापि भविष्यति ॥२१३॥  
 मारुते यदि रामो मां स्वस्त्रियं हि करिष्यति । तर्ष्णहं कथयाम्यद्य तयोमृत्युर्यतो भवेत् ॥२१४॥  
 तच्छ्रुत्वा मारुतिः प्राह यदि श्रीगमभारतः । न भविष्यति भग्नस्ते मंचकस्तहिं ते पतिः ॥२१५॥

सुनकर दोनों दैत्योंने समझ लिया कि आज देवी भली भाँति हमपर प्रसन्न हुई हैं ॥ ६५-६८ ॥ बादमें दोनोंने गवाक्षमागंसे ही देवीका पूजन किया । बताशे, मिठाई, मालपूए तथा खीर आदि भी ज्ञानेष्वेसे भीतर डाल दिया ॥ ६६ ॥ करोड़ों पञ्चामृतके घड़े अन्दर उड़ेले और करोड़ों फलोंके ढेर वहीसे भीतर डाल दिये ॥ १०० ॥ वह सब खाकर मारुति पुनः उनसे कहने लगे—क्या तुमने कबलमात्र भोजन दिया है । मैं तो अभी बहुत भूखी हूँ ॥ १०१ ॥ देवीके इस वचनको सुनकर वे दोनों दैत्य बड़े विस्मयमें पढ़ गये और अपने दूतों द्वारा दूकानोंका माल तथा नगरवासियोंके सब खाद्य पदार्थ लुटवाकर उसके पर्वतसदृश ढेरको भीतर डाल दिया । अपने राजगृहोंमें भी जो कुछ खाने-पीनेकी चीजें संचित कर रखी थीं, वे भी नौकरोंसे मैंगवाकर देवीको समर्पण कर दीं । इससे पुरवासियोंके प्रत्येक घरमें बड़ा भारी कोलाहल मच गया । वच्चोंको खानेके लिए भी कहीं कुछ नहीं बचा । तदनन्तर कोदण्ड ( घनुष ) तथा तूणीर ( तरक्स ) धारण किये हुए राम-लक्ष्मणकी वन्य पुष्पोंसे पूजा करके द्वारके रास्ते धीरेसे देवीको अर्पण कर दिया । उन्हें देखकर मारुतिने नमस्कार किया और उन दोनोंने हनुमान्त्रको हृदयसे लगाया । तब हनुमान् किवाड़ खोलकर बाहर आये और उन दोनों दैत्योंको ललकारा । बादमें राम-लक्ष्मण भी देवालयसे बाहर निकल आये और उन्होंने शरसमुदायकी वर्षा करके उन दोनों राक्षसोंको क्षणभरमें मार डाला ॥ १०२-१०५ ॥ पर वे दोनों राक्षस फिर जी गये । रामने फिर उन्हें मारा तो फिर जी गये और फिर मारा । इस प्रकार उन दोनोंको उन्होंने सौ बार मारे । परन्तु उनकी मृत्यु नहीं हुई ॥ १०६ ॥ तब चकित होकर मारुति उनकी मृत्युके उपायकी खोजमें इधर-उधर भ्रमण करने लगे तो नगरीके एक एकान्त स्थानमें स्थित ऐरावणकी भोगपली ( रखेल ) को देखा और उससे उन दोनोंके भ्रमणका उपाय पूछा । उसने कहा कि मैं एक नागकन्या हूँ । मेरे साथ ऐरावणने बलात्कार किया है ॥ ११० ॥ १११ ॥ मैरावण भी मुझे कुट्टिसे देखता है । इन दोनोंको रतिदान देनेकी सामर्थ्य मेरेमें नहीं है ॥ ११२ ॥ एक मेरा मित्र है और एक शत्रु है । पर उन दोनोंसे मुझे दुःख ही मिलता है । अतः इन दोनोंके मारे जानेपर मुझको तो आनन्द ही होगा ॥ ११३ ॥ किन्तु हे मारुति ! यदि राम मुझे अपनी स्त्री बनायें तो मैं वह उपाय बतला सकती हूँ, जिससे कि वे दोनों मारे जा सकें ॥ ११४ ॥ यही

भविष्यति रामचन्द्रस्तथेत्युक्त्वा तमाह सा । अमरानेकदा पूर्व वालैः कंटकरोपितान् ॥११६॥  
 मोचयामासतुस्तौ हि तेन तुष्टाश्च पट्पदाः । तावच्चुस्ते युवाभ्यां हि मरणाद्रक्षिता वयम् ॥११७॥  
 यथा तथा युवा चापि रक्षामो मरणाद्ययम् । इत्युक्त्वा ते स्थिताश्चात्र ते नीत्वाऽमृतमुत्तमम् ॥११८॥  
 तदक्तविद्वन् स्पृष्टा ते प्रकुर्वति मज्जीवितौ । अमरास्ते तयोर्निंद्रास्थाने संत्यधुना कपे ॥११९॥  
 कोटिशस्तान्मद्यस्व सोऽपि तान्मद्यत्क्षणात् । तत्रैकं ग्रहणं प्राप्तं अमरं प्राह मारुतिः ॥१२०॥  
 कुरु मंचकगम्भै त्वं गजभुक्तकपित्थवत् । ऐरावणभोगपत्न्याः पट्पदोऽपि तथाऽकरोत् ॥१२१॥  
 ततो निहत्य तौ दैत्यौ पुनर्वाणं रघुद्वहः । अभिषिद्य तयोः स्थाने राज्ये तं मकरध्वजम् ॥१२२॥  
 यावद्गांतुं मनथके तावन्मारुतिनाऽर्थितः । नागकल्यागृहं गत्वा नानाचित्रविचित्रितम् ॥१२३॥  
 दृष्टा तां चारुवदनां वस्त्रालङ्घारमण्डिताम् । धृत्वा करेण तद्वस्तं किंचित्कुत्वा स्मिताननम् ॥१२४॥  
 चकार मञ्चकं भग्नं स्वभारेण रघूत्तमः । ततस्तया प्रार्थितः स रामस्तां पुनरब्रवीत् ॥१२५॥  
 त्यक्त्वा देहं भुवं गत्वा भृत्वा ब्राह्मणकन्यका । तपस्तप्त्वा चिरं कालं वृतीये त्वं तु जन्मनि ॥१२६॥  
 द्वापरे द्वारकायां हि मम पत्नी भविष्यति । तद्रामवचनं श्रुत्वा रामायेऽपि प्रविश्य सा ॥१२७॥  
 कल्याकुमारी नामनामीद्विजकल्याऽविधरोधसि । मारुतेः स्कंधसंस्थोऽभृतदारामो मुदान्वितः ॥१२८॥  
 राज्ये कुत्वा मन्त्रिणं स्वं लक्षणं मकरध्वजः । अकरोत्तं स्कंधसंस्थं शेषं ब्रह्माण्डधारकम् ॥१२९॥  
 ततः क्षगाजज्ञमतुस्तौ लंकां श्रीरामलक्षणाणां । श्रीरामलक्षणाणां दृष्टा सुग्रीवाद्याश्च वानराः ॥१३०॥  
 तावालिंग्य मुहुर्नत्वा वभूतुस्तोपपूरिताः । रामोऽपि सकलं वृत्तं सुग्रीवादीन्यवेदयत् ॥१३१॥

मुनकर मारुतिने कहा कि यदि श्रीरामके भारसे तुम्हारा पलंग नहीं ठूटेगा तो राम तुम्हारे पति बनेगे ॥११५॥  
 तब 'तयास्तु' कहकर उसने कहा कि पूर्व समयमें एक बार बालकोंके द्वारा कौटोंपर आरोपित अमरोंको  
 उन ऐरावण-मंरावणने छुड़ा दिया था । इससे सन्तुष्ट होकर उन अमरोंने उन दोनोंसे कहा कि तुम दोनों  
 ने हम लोगोंको मरनेसे बचाया है ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ इसलिए जैसे भी होगा, हम तुम दोनोंकी मृत्युसे रक्षा  
 करेंगे । इतना कहकर वे सब भैंवरे वहीं रहने लगे । वह, ये भैंवरे ही इस समय उत्तम अमृत लाकर  
 उसकी विन्दुओंसे इन दोनोंके रक्तको स्पर्श कराके बारम्बार सजीव कर दिया करते हैं । हे कपे ! वे भैंवरे अभी  
 भी उन दोनोंके शयनगृहोंमें विद्यमान हैं ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ वे करोड़ोंकी संख्यामें हैं । तुम उन्हें मार डालो ।  
 उसके कथनानुसार हनुमानने जाकर क्षणभरमें उन सब भैंवरोंको मार डाला । उनमेंसे शरणमें आये हुए एक  
 भैंवरेसे मारुतिने कहा-॥ १२० ॥ तुम जाकर ऐरावणकी भोगपत्नीके पलंगको भीतरसे खाकर हाथीके द्वारा  
 खाये हुए कंधेकी तरह अन्दर ही अन्दरसे खोखला कर दो । भैंवरेने बैसा ही किया ॥ १२१॥ बादमें राम-  
 चन्द्रने वाणसे उन दोनों राक्षसों को मार डाला और उनके स्थानमें राज्यासनपर मकरध्वजको अभिषिक्त कर  
 दिया ॥ १२२ ॥ इतना करके उन्होंने ज्यों ही वहाँसे चलनेकी तैयारी की, ज्यों ही मारुतिने रामसे प्रार्थना की कि  
 जाप नागकल्याके घर चलकर अनेक चित्र-विचित्र शोभा देवें ॥ १२३ ॥ वस्त्रों तथा अलङ्घारोंसे मण्डित सुन्दर  
 मुखवाली उस कल्याका हाथ पकड़े तथा कुछ हँसकर उसके पलङ्घकर बैठकर अपने भारसे उसके पलङ्घको तोड़  
 जाएं । यह सब कर लेनेके बाद उस कल्यासे प्रार्थित रामने उनसे कहा-॥ १२४ ॥ १२५ ॥ तू इस देहको ठोड़-  
 कर पृथ्वीपर जा । वहाँ ब्राह्मणकल्याका शरीर धारण करके बहुत कालसक तप करनेके बाद तीसरे जन्म तथा  
 द्वापरके युगमें तू मेरी पत्नी बनेगी । रामके सुन्दर तथा मधुर वाक्यको सुनकर वह रामके सामने ही अनिमें  
 प्रवेश कर गयी ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ जन्मान्तरमें वह कल्याकुमारी नामकी द्विजकल्या होकर पृथ्वीपर उत्पन्न हुई ।  
 तब राम मारुतिके कन्धेपर प्रसन्नतापूर्वक आहृद हुए ॥ १२८ ॥ मारुतितनय मकरध्वजने भी अपने राज्यका  
 भार मन्त्रीको सौंप दिया और ब्रह्माण्डको धारण करनेवाले शेषके अवतारस्वरूप लक्षणको अपने कन्धेपर  
 बित्त लिया ॥ १२९ ॥ इस प्रकार दोनों भाई राम-लक्षण क्षणभरमें लङ्घा जा पहुंचे । श्रीराम तथा लक्षणको  
 देहकर सुग्रीव आदि सब वानर वडे प्रसन्न हुए और बारम्बार आलङ्घन तथा प्रणाम करने लगे । रामने भी

दैत्यौ रामेण निहतौ श्रुत्वा सदसि रावणः । राक्षसांशकितः प्राह पूर्ववृत्तं मयान्वितः ॥१३२॥  
 मानुषेणैव मृत्युमें द्वाह पूर्वं पितामहः । अतो नारायणः साक्षान्मानुषोऽभूत्वं संशयः ॥१३३॥  
 रामो दाशरथिभूत्वा मां हंतु समुपस्थितः । यदाऽनरण्यः पूर्वं हि स हतो दीक्षितो मया ॥१३४॥  
 शस्त्राहं तदा तेन दूर्यवंशोऽद्वेन हि । उत्पत्स्यते च मद्वंशे परमात्मा सनातनः ॥१३५॥  
 स एव त्वां पुत्रपौत्रैवधैर्वैनिहनिष्यति । इत्युक्त्वा स ययौ नाकं सोऽधुना समयो मम ॥१३६॥  
 समागतो राघवो मां समरे स हनिष्यति । विवोध्य कुम्भकणं तमानयध्वं त्वरान्विताः ॥१३७॥  
 ततस्ते तां गुहां गत्वा तच्छासेन विकर्षिताः । यातायाते प्रचक्रुते कुम्भकणोदरे मुद्दुः ॥१३८॥  
 तदैकत्र वाहुपाशर्वलं कृत्वाऽथ राक्षसाः । गत्वा तदंतिकं भीत्या निजघनुस्तं दुमैः पदैः ॥१३९॥  
 शिलाभिस्ताडयामासुश्राश्वैरुपृथ्व्यचूर्णयन् । काष्ठभारैर्महादाहं देहे चक्रुर्नृपञ्जया ॥१४०॥  
 तदा प्रभुद्वशोत्थाय सूकरान् महिषान् वरान् । कोटिशः स्वमुखे जिप्त्वा जलवापीर्विशोष्य सः ॥१४१॥  
 गत्वा नत्वा राक्षसेन्द्रं वोधयामास रावणम् । एकदाऽहं वन गत्वा दृष्ट्वा त नारदं मुनिम् ॥१४२॥  
 पृष्ठवाँस्त्वं कुत्र यासि कुतश्चागमनं कृतम् । स मा प्राह देवलोकादयोध्यां प्रति गम्यते ॥१४३॥  
 रावणादीन् रणे हंतुं विष्णुर्जातोऽत्र मानुषः । देववाक्याऽत्वरयितुं रामं गच्छाम्यहं जवात् ॥१४४॥  
 इत्युक्त्वा मां गतः सोऽथ प्रेपयामास राघवम् । इति श्रुतं मया पूर्वं तवाग्रे तभिवेदितम् ॥१४५॥  
 अतोऽप्याद्य रामाय सीतां सख्यं कुरु प्रभो । इति तद्वचनं श्रुत्वा रावणस्तं वचोऽब्रवीत् ॥१४६॥  
 निद्राव्याप्तेऽक्षिणी तेऽद्य गच्छ निद्रां सुखं कुरु । तद्रंधोः क्रूरवचनं श्रुत्वा नत्वाऽथ रावणम् ॥१४७॥

वहाँका सब समाचार सुग्रीव आदिको कह सुनाया ॥ १३० ॥ १३१ ॥ उधर भरा सभामें रावणने जब ऐरावण तथा मंरावणकी मृत्युका समाचार सुना तो घबराकर भयभीत भावसे अपना पूर्ववृत्तान्त राक्षसोंसे कहने लगा ॥ १३२ ॥ उसने कहा कि पितामह ब्रह्माने मुझे पहले ही कह रखा है कि तेरा मरण मनुष्यके द्वारा होगा । इससे जात होता है कि ये राम साक्षात् नारायण ही मनुष्यरूप धारण करके आये हैं । इसमें संदेह नहीं है ॥ १३३ ॥ इन रामने मुझे मारनेके लिए ही दशरथपुत्र बनना स्वीकार किया है और यहाँ आकर उपस्थित हुए हैं । जब मैंने पूर्वकालमें ( दीक्षाको प्राप्त या सत्सङ्घल्यनिरत ) अनरण्य नामके सूर्यवंशी राजाको मार डाला था ॥ १३४ ॥ उस समय राजाने मुझे शाप दिया था कि मेरे वंशमें सनातन पुरुष परमात्मा उत्पन्न होंगे ॥ १३५ ॥ वे तुम्हें पुत्र-पौत्र तथा बान्धवों सहित मारेंगे । इतना कहकर राजा स्वर्गं चले गये । बस, अब वही समय आ गया है ॥ १३६ ॥ राम मुझे समरमें अवश्य मारेंगे । तुमलोग जाकर शीघ्र कुम्भकणको जगाकर यहाँ ले आओ ॥ १३७ ॥ बादमें वे सब जब उस गुफामें गये, जहाँपर कुम्भकणका सीधा था । तब तो उसके लम्बे तथा बलवान् श्वाससे आकर्षित होकर वे सब बार-बार उसके पेटमें आने-जाने लगे ॥ १३८ ॥ यह देखकर वे बड़े चकराये और एक साथ मिल तथा बाहुबलका आश्रय लेकर किसी प्रकार उसके शरीरके पास पहुँचे । वहाँ जाकर ढरते हुए वे लातों तथा पेड़ोंसे पीटकर उसे जगाने लगे ॥ १३९ ॥ उसपर बहुतेरे पत्थर फेंके, धोड़ों तथा ऊँटोंसे कुचलवाया, पर उसकी नींद नहीं टूटी । तब राजाकी आज्ञासे उसपर बहुतसे लकड़ीके ढेर डालकर जलाये गये ॥ १४० ॥ तब वह किसी प्रकार उठा और करोड़ों सूबर तथा मोटे-मोटे भैसोंको खा तथा जलपान करके उसने एक बालीको सुखा दिया ॥ १४१ ॥ तत्पश्चात् वह राक्षसेन्द्र रावणके पास गया और समझाकर कहने लगा कि एक बार मैं वनमें गया था । मैंने वहाँ नारद मुनिको देखकर पूछा-॥ १४२ ॥ हे महामुने ! आप कहाँसे आये और कहाँ जा रहे हैं ? उन्होंने कहा कि मैं देवलोकसे अयोध्या जा रहा हूँ ॥ १४३ ॥ वहाँ रावणादिको मारनेके लिए साक्षात् नारायण अवतरे हैं । उन भगवान् रामको देवताओंके कथनानुसार जल्दी करनेका स्मरण करानेके लिए मैं बेगसे जा रहा हूँ ॥ १४४ ॥ इतना कहकर वे चले गये । उन्होंने ही रामको भेजा है । इस प्रकार जो मैंने सुना था, सो कह सुनाया ॥ १४५ ॥ इसलिए तुम सीता रामको समर्पण करके उनसे मित्रता कर लो । यह सुनकर

जवाययो तु युद्धायोल्लंघ्य प्राप्नादमुन्नतम् । कुम्भकण्ठं ततो दृष्टा कृपणा भयविहूलाः ॥१४८॥  
 चक्रुः पलायनं सर्वे रामपाञ्चमुपागताः । कुम्भकण्ठं तत्र दृष्टा प्रणनाम विभाषणः ॥१४९॥  
 उवाच ग्रन्तो भूत्वा मया राजाऽतिश्रोधितः । सीतां रामाय देहीति तेन धिरिधकृतस्त्वहम् ॥१५०॥  
 तच्छ्रुत्वाऽहं राघवस्य सेवां कर्तुमुपागतः । तच्छ्रुत्वा वंशुवचनं कुम्भकण्ठस्तमव्रवात् ॥१५१॥  
 सम्यकृतं त्वया वत्स मद्ये मा स्थिरो भव । युद्धे स्वायः परो वाऽत्र ज्ञायते न मयाऽद्य हि ॥१५२॥  
 ततो वंधुं नमस्कृत्य रामयाञ्चमुपाययो । कुम्भकण्ठोऽपि हस्ताभ्यां पादाभ्यां पेपयन्हरान् ॥१५३॥  
 चचार बानरीं सेवां तत्र दृष्टा कर्तीश्वरम् । विशुलेनाथं तं भिन्नाऽऽनयामास पुरीं तु सः ॥१५४॥  
 मार्गे स्वस्थः स सुग्रीवः कण्ठं ग्राणं रिषोन्नेष्ये । छिन्वा ययौ राघवेन्द्रं सोऽपि पौरविंलजितः ॥१५५॥  
 पुनर्ययौ रणभुवं तं दृष्टा रघुनन्दनः । विभाव निशितवीर्णः सोऽपि रामं दुर्मन्नर्गः ॥१५६॥  
 ताडयामास तान् वाणीनिवार्य रघुनन्दनः । वायव्यास्त्रेण चिच्छेद तद्वस्त्रौ सायुधो शृणात् ॥१५७॥  
 छिन्वाहुमयायांतं नदंत वीक्ष्य राघवः । द्वावद्वचद्रौ निशितावादायास्य पददृपम् ॥१५८॥  
 चिच्छेद पतितो पादो लङ्घाद्वारि महास्वर्नो । निकृतहस्त गदोऽपि कुम्भकण्ठोऽपि भिर्भाषणः ॥१५९॥  
 वडवामुख्यद्वक्त्रं व्यादाय रघुनन्दनम् । अभिदुदाव विनदन् राहुश्चन्द्रमस यथा ॥१६०॥  
 अपूर्यच्छिताग्रेत्रं सायकेस्त्रदघृतमः । शरपूरितयक्त्रोऽसौ चुकाशातिभयकरः ॥१६१॥  
 अथ सूर्यप्रतीकाशमैद्रं शरमनुत्तमम् । मुमोच तेन चिच्छेद कुम्भकण्ठशिरो महत् ॥१६२॥  
 तथा खे देववाद्यानि नेत्रुः कुमुमवृष्टिभिः । वयपूरमग रामं तुष्टुविंविधेः स्तवैः ॥१६३॥  
 पितृव्यं निहत श्रुत्वा पितरं चाविविहूलम् । रात्रणिः सांत्वयामास त्वं मे पश्याद्य वै वलम् ॥१६४॥

रावणने कहा—॥ १४६॥ अभी तुम्हारी आंखोंमें निद्रा भरी है, जाकर सो जाओ। मैंने तुमको उपदेश देनेके लिये नहीं बुलाया है। वन्धुके ऐसे कठार वचन सुनकर उसने रावणको नमस्कार किया ॥ १४७॥ तदनन्तर वडे वगसे वह मकानीं तथा गढ़को लौधिकर लड़नेके लिए गया। उस भयानक कुम्भकण्ठका देखत ही सब बानर दोडकर रामके पास चले गये। विभाषणने कुम्भकण्ठका आया देखकर नमस्कार किया ॥ १४८॥ १४९॥ किर कहा कि मैंने राजा रावणको बहुत नम्रतापूर्वक समझाया कि तुम सीता रामका दे दो। इसपर उसने मुझे बहुत धिक्कारा। तब मैं उसके धिक्कारसे दुःखोंकर यहाँ रामका सेवामें चला आया। यह सूनकर कुम्भकण्ठे न कहा—॥ १५०॥ १५१॥ हे यत्स ! तुमने बहुत अच्छा किया, पर इस समय तुम मेरे सामनेसे हट जाओ। मूँ इस समय युद्धमें अपनापराया नहीं सूझ रहा है ॥१५२॥ तब विभाषण भाईका नमस्कार करके रामके पास चले गये। कुम्भकण्ठ भी हाथों तथा पाँवोंसे बानरोंको पीसता हुआ बानरोंसे नाम व्यंच्छ विचरने लगा। अन्तमें वीक्षर सुग्रीवको देखत ही उन्हें विशुलम् पोहकर वह सहृदयं लंका पुराका आर ले चला ॥१५३॥१५४॥ रास्तेमें नूरीवको जब होश आया तो नज़ोंसे कुम्भकण्ठके नाक-कान काटकर व राघवेन्द्र रामके पास लौट आये। कुम्भकण्ठ भी पुरवासियोंसे लजिजन हाकर पुनः रणस्पलाम् लड़न चला गया। उसे इखकर रघुनन्दन रामने अपने ताळग बाणोंसे बींधना आरम्भ किया। उन्होंने हवियार समेत उसके हाव काट गिराये ॥ १५५-१५६॥ रामने जब देखा कि भुजा कट जानेपर भी वह गजन करता हुआ भासने चला आ रहा है, तब उन्होंने शो अर्द्धचन्द्राकार बाणोंसे उसके दोनों पैर काट दिये। वे कटे पौर जाकर लंकाके दरवाजेन्द्र गिरे। हाथ-पाँवसे रहित होकर भी कुम्भकण्ठ अति भीषण बड़वानलके समान मुख फाढ़कर घोर नाद करता हुआ चन्द्रमाष्ठर राहुके समान रामपर झपटा ॥ १५८-१६०॥ तब रामने तीक्षण बाणोंसे उसका मुह भर दिया। मुखमें बाण भर जानेसे वह और भी भयानक तथा त्रुट हो उठा ॥ १६१॥ तब रामने उसपर लुर्में समान प्रदीप्त एन्द्र बाण छाँड़ा। उससे कुम्भकण्ठका महान् तिर कठकर गिर पड़ा ॥ १६२॥ उस समय आकाशमें देवताओंने दिव्य बाज बजाये और पुष्पोंकी वर्षी करके रामकी विविध स्त्रांगोंसे सुन्ति की ॥ १६३॥ चावा कुम्भकण्ठको मारा क्षमा तथा पिताको विहूल सुनकर रावणपुत्र भेघनाई पिताको सांत्वना देकर बोला—हे पिताजो ! आप आज

इत्युक्त्वा त्वरितं गत्वा मेघनादो निकुम्भिलाम् । रक्तमाल्यांवरधरो हननायोपचक्रमे ॥१६६॥  
 रक्षार्थं दिव्यशस्त्रार्थं जयार्थमभिचारकैः । योगिनीवटाद्वोभूम्यां गुहायां संस्थितो रहः ॥१६७॥  
 तोयानिलानलव्याघ्रसर्पराक्षसकंटकैः । आत्मनः परितः कृत्वा परिधानसप्तदुर्गमान् ॥१६८॥  
 होमकुण्डाधर्वतः सर्पवद्वज्ञा कृष्णमधोमुखम् । रक्तपुष्पांवरधरो रक्तचंदनलेपितः ॥१६९॥  
 रक्तपुष्पाभता गुड्जा सर्षपश्चंदनेन्नुभिः । खदिरामपलाशोदुम्बरभल्लातकास्थिभिः ॥१७०॥  
 समिद्धिर्मापिमांसादिभन्नातकफलैरपि अक्निववाजपूरकृष्णधत्तरोचनैः ॥१७१॥  
 अपामार्गवदरिकानलदालकबंधुकैः । नरमुण्डः समांसैश्च विभीतकफलादिभिः ॥१७२॥  
 सर्पषड्डेश्च मण्डूकैस्त्वरदंतस्नायुलोमभिः । नानावनचराणां च मांसैरपि समन्त्रकम् ॥१७३॥  
 इत्थं चकार होमं स निमील्य नयने रहः । विभीषणोऽपि तं दृष्ट्वा होमधृत्रं भयावहम् ॥१७४॥  
 प्राह रामाय सकलं होमारंभं दुरात्मनः । समाप्यते चेद्वोमोऽयं मेघनादस्य दुर्मतेः ॥१७५॥  
 स चाजययो भवेद्राम मेघनादः सुरासुरैः । अतः शाश्वतं लक्ष्मणेन घातयिष्यामि रावणिम् ॥१७६॥  
 यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जितः । तेनैव मृत्युनिर्दिष्टा ब्रह्मणाऽस्य दुरात्मनः ॥१७७॥  
 लक्ष्मणोऽयं यदाऽयोध्यापुर्यास्त्वामनुनिर्गतः । तदादि निद्राहारादोन्न प्राप्तः स रघुचम ॥१७८॥  
 सेवार्थं तव राजेन्द्र ज्ञातं सर्वमिदं मया । ततो रामाज्ञया गत्वा लक्ष्मणेन विभाषणः ॥१७९॥  
 हनुमत्प्रमुखैर्वीर्यैर्थपैः सर्वतो द्वृतः । लक्ष्मणं दर्शयामास होमस्थान निकुम्भिलाम् ॥१७९॥  
 अङ्गदस्कंधमारुद्ध्य वह्यस्त्रेणाथ कंटकान् । ज्वालयामास सौमत्रिज्जघान राक्षसाङ्घरैः ॥१८०॥  
 गारुडास्त्रेण सर्पाश्च पवर्तास्त्रेण दाष्टिणः । अनलं शातमकरोत्पञ्जन्यास्त्रेण लक्ष्मणः ॥१८१॥  
 प्राशयामास हनुमाननिलं क्षणमात्रतः । जलं सशोषयामास वायव्यास्त्रेण लक्ष्मणः ॥१८२॥

मेरा बल देखें ॥ १६४ ॥ इतना कहकर मेघनाद तुरन्त निकुम्भिला नामकी पश्चिमी गुफामें गया । वहाँ लाल फूलोंकी माला तथा लाल वस्त्र धारण करके वह हृवनकी तेयारी करने लगा ॥ १६५ ॥ दिव्य रथ, दिव्य अस्त्र तथा जयलाभके लिए अभिचारकिया करनेका निश्चय करके वह गुफाके भीतर योगिनीवटके पास एकान्तमें जा बैठा ॥ १६६ ॥ उसने वहाँ अपना सुरक्षाके लिये अग्नि जल वायु सिंह सर्प राक्षस तथा कौटीसे अपने चारों ओर सात दुर्ग बना लिये ॥ १६७ ॥ होमकुण्डक ऊपरी भागमें अघोमुख करके एक काला साँप बाँध दिया । तदनन्तर रक्त पुष्प तथा रक्तावर धारण करके शरीरमें रक्तचन्दन लगाया ॥ १६८ ॥ लाल फूल, अक्षत, गुजा, सरसों, चन्दन, ईख, वेर, आम, पलाश तथा भेलावेकी लकड़ियें, समिधा, उर्द, मास, भल्लातककी गुठली, आक, नीम, बीजपूर, कुण्ड घतूरा, नीवू, चिचिड़ा, वेर, चित्रक, दालक, बंधूक, नरमुण्ड, चरबी, विभीतकफल, सर्पखण्ड, मण्डूक, चमं, दात, स्नायु, आंत, माम तथा नाना वनचरोंके मास आदिसे उसने मन्त्रोच्चारपूर्वक एकान्तमें हृवन प्रारम्भ कर दिया । सहसा विभाषणने होमके भयानक धुएंको उठाते देखा ॥ १६९-१७३ ॥ तब उन्होंने रामसे कहा-देखिये, उस दुरात्माने होम आरम्भ कर दिया है । यदि उस दुर्बुद्धि मेघनादका होम निविष्ट समाप्त हो गया तो फिर ह राम ! वह दैत्यों तथा देवताओंसे भी अजेय हो जायगा । इसलिए श्रीघ लक्ष्मणके द्वारा मैं उसको मरवा दूँगा ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ जो मनुष्य वारह वर्षतक निद्रा तथा आहारसे रहित रहा हो, उसीसे बहुगाने मेघनादकी मृत्यु कही है ॥ १७६ ॥ लक्ष्मण जब अयोध्यासे निकले हैं, तबसे निद्रा तथा आहार त्यागकर इन्होंने आपका सबा की है । यह मैं भली भाँति जानता हूँ । पश्चात् रामकी आज्ञासे लक्ष्मण तथा हनुमान आद और सेनापतियोंको साथ लेकर विभाषण वहाँ गये और लक्ष्मणको निकुम्भिला-का होमस्थान बताया ॥ १७७-१७९ ॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने अङ्गदके कन्धेपर सवार होकर अग्निवाणसे कौटींको जलाकर राक्षसोंको मार डाला ॥ १८० ॥ उन्होंने गारुडास्त्रसे सर्पों तथा पवर्तास्त्रसे दाँतवाले सिंह जादि जन्तुओंको समाप्त कर दिया । उन्होंने मेघास्त्रसे अग्निका शान्त किया । हनुमानने क्षणभरमें

परिघेष्वपि नष्टेषु तत्राद्यथा रिपोः स्थलम् । ययावृत्पाटितुं क्रोधाद्वनुमान्योगिनीवटम् ॥१८३॥  
 तदा तां दर्शयामास वटस्थां योगिनीगुहाम् । गुहापिधानपापाणं हनुमान्पादवट्टनैः ॥१८४॥  
 चूणीकृत्य गुहासंस्थं मेघनादं व्यतर्जयत् । तदा स मेघनादोऽपि त्यक्त्वा होमं त्वरान्वितः ॥१८५॥  
 क्रोधाविष्टो रथे स्थित्वा ययौ लक्ष्मणमसुखम् । शस्त्रेरस्त्रः पर्वतार्थं मर्मभिद्विर्निजोक्तिभिः ॥१८६॥  
 चकार लक्ष्मणेनैव युद्धं तत्तारकामयम् । सौमित्रिरपि वाणीघै रथमश्वान्धनुर्ध्वजम् ॥१८७॥  
 तदृढृदं कवचं सृतं विभेद शृणमात्रतः । ततः सोऽन्येन धनुषा मुक्त्वा वाणान्सहस्रशः ॥१८८॥  
 पद्मथामेवास्थितो भूम्या चिच्छेद कवचं रिपोः । तदा क्रुद्धः स सौमित्रिर्वाणेनेद्रजितश्च हि ॥१८९॥  
 सशरं दक्षिणभुजं पातयामास तदृगृहे । तदा स वामहस्तेन मेघनादोऽतिविहूलः ॥१९०॥  
 दुद्राव लक्ष्मणं हन्तुं धृत्वा शूलमनुच्चमम् । तं चापि मार्गणेनैव सशूलं वामसत्करम् ॥१९१॥  
 मेघनादस्य सौमित्रिशिछत्वा रावणसन्निधौ । पातयामास लंकायां तदद्वृतमिवाभवत् ॥१९२॥  
 तदा व्यादाय स्वमुखं रावणिलक्ष्मणं ययौ । लक्ष्मणोऽपि शरं दिव्यं रामनामाकिंशुभम् ॥१९३॥  
 मुमोच रघुवीरस्य कृत्वा चिंतनमादरात् । स शरः मशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ॥१९४॥  
 प्रमथ्येद्रजितः कायात्पातयामास तच्छिरः ततः प्रमुदिता देवाः सौमित्रिं परितुष्ट्वुः १०५ ।  
 पुष्पाणि विकिरंतो वै चक्रुनीरजनं सुहुः । गतश्रमः स मौमित्रिः शंखमापूरयदणे ॥१९६॥  
 श्रुत्वा सीता शंखनादं त्रिजटां प्रेष्य सादरम् । शुश्राव सकलं वृत्तं तद्वाक्यात्प्रतुतोष सा ॥१९७॥  
 ततस्तन्मेघनादस्य शिरः संगृह्य मारुतिः । राघवाय दर्शयितुं त्वरयामास लक्ष्मणम् ॥१९८॥  
 तदा स वानरैर्युक्तोऽङ्गदस्थः सविभीषणः । नानावाद्यनिनादेश्च मौमित्री राघवं ययौ ॥१९९॥  
 नत्वा तं दर्शयामास मेघनादस्य तच्छिरः । तदृद्युष्टलिंग्य सौमित्रिं रामस्तुष्टोऽभवत्तदा ॥२००॥

बायु पीलिया और लक्ष्मणने बायव्यास्त्रसे जलको सुखा दिया ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ उन सब घेरोंके नष्ट हो जानेपर भी जब शत्रुका स्थान नहीं दिखायी दिया तो हनुमान् क्रुद्ध होकर योगिनीवटकी ओर गये । वहाँ उन्हें योगिनीवटवाली गुफा दीख पड़ी, तुरन्त गुफाके द्वारपर लगे हुए पत्थरको हनुमानने लात मारकर चूर्ण कर डाला और भीतर जाकर मेघनादको ललकारा । तब मेघनादने भी तुरन्त होम छोड़ दिया ॥ १८३-१८५ ॥ तदनन्तर क्रोधके साथ रथपर सवार होकर वह लक्ष्मणके समक्ष गया और अस्त्र शस्त्र, पर्वत तथा मर्मभेदी वाक्योंसे उनको जीतनेकी इच्छासे भयानक युद्ध करने लगा । लक्ष्मणने भी अनवरत वाण छोड़कर उसके अश्व, रथ, घनुप, श्वजा, हड़ कवच तथा सारथीको शृणभरमें छिन्न-भिन्न कर दिया । तब मेघनाद भी दूसरा घनुप ले तथा नीचे ही खड़े हो हजारों वाण छोड़कर शत्रुके कवचको काटने लगा । उस समय लक्ष्मणने क्रुद्ध होकर अपने वाणसे इन्द्रजितका वाणके सहित दाहिना हाथ काटकर उसीके घरमें गिराया । तब विहूल होकर मेघनादने वायें हाथमें त्रिशूल सम्हाला ॥ १८६-१८० ॥ वह उत्तम त्रिशूल लेकर लक्ष्मणको मारनेके लिए दीड़ा । तब मेघनादके त्रिशूल सहित वायें हाथको भी सुमित्रापुत्र लक्ष्मणने वाणसे ही काटकर रावणके पास गिराया । यह देखकर लंकामें सबको वड़ा आश्राम हुआ ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ तब मेघनाद मुँह फाड़कर लक्ष्मणकी ओर झपटा । तब लक्ष्मणने भी रामका ध्यान करके रामनामसे अंकित दिव्य वाण छोड़ा । उस वाणने जाकर पगड़ी सहित, शोभायुक्त तथा प्रदीप्त कुण्डलवाले मेघनादके सिरको घड़से अलग करके धरतीपर गिरा दिया । यह देखकर देवतागण अतीव प्रसन्न हुए और लक्ष्मणकी स्तुति करने लगे ॥ १८३-१८५ ॥ वे उनपर कुसुमोंकी वृष्टि करके आरती उतारने लगे । तब लक्ष्मणने शान्त होकर विजयशंख बजाया ॥ १८६ ॥ वह शंखनाद सूनकर सीताने त्रिजटाको भेजा और उसके मुँहसे युद्धका समाज समाचार सूनकर वे बहुत ही प्रसन्न हुईं ॥ १८७ ॥ इधर हनुमान् जीने मेघनादका सिर लेकर रामको दिखलानेके लिये लक्ष्मणसे शीघ्र चलनेको कहा ॥ १८८ ॥ तब लक्ष्मण विभीषण और वानरोंको साथ ले तथा अङ्गदके कंधेपर सवार होकर अनेक बाजेनगाजेके साथ रामके पास गये ॥ १८९ ॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामको प्रणाम किया और

रावणोऽपि भुजं दृष्टा श्रुत्वा पुत्रवधं तथा । पपात पुत्रदुःखेन सभायां मूर्छितो भुवि ॥२०१॥  
 क्रोधात्स खड्गमुद्यम्य ययौ हंतु विदेहजाम् । सुपाश्चो नाम मेधावी मंत्री तं संन्यवारयत् ॥२०२॥  
 सखड्जं तत्करं धृत्वा स्वहस्ते स त्वरान्वितः । उचाच नीतिसंयुक्तं बचनं रावणं तदा ॥२०३॥  
 कथं नाम दशग्रीव कोपात्स्त्रीवधमिच्छसि । अस्माभिः सहितो युद्धे हृत्वा रामं सलक्षणम् ॥२०४॥  
 प्राप्त्यसे जानकीं शीघ्रमित्युक्तः स न्यवर्तत । सुलोचनाऽपि कांतस्य भुजं केदूरभूषितम् ॥२०५॥  
 दृष्टा समार्गणं स्वीयपुरतः पतितं भुवि । तदा विलापमकरोत्समृत्वा तत्पौरुषाणि सा ॥२०६॥  
 भुजोऽपि सांत्वयन् तां स लेख्य भूम्यां शरेण हि । स्वलोहिताक्षरैः प्राह मा खेदं भज भामिनि ॥२०७॥  
 साक्षात्त्वेष्यशराधातैर्हतोऽहं भुक्तिमागतः । त्वं चापि गत्वा श्रीरामं नत्वा याचस्व मच्छुरः ॥२०८॥  
 तत्त्वां दास्यति रामोपि तेनार्थं विश्य याहि माम् । सुलोचना पठित्वा सा लिखितान्यक्षराणि हि ॥२०९॥  
 तुष्टा एष्टु रावणाय मंदोदयैः विभूषिता । ययौ रामं शिविक्या तां दृष्टा वानरोत्तमाः ॥२१०॥  
 सीतेयं रावणेनाद्य भयाद्रामं विसर्जिता । इति मत्वा दुदुवुस्ते सीताया दर्शनेच्छया ॥२११॥  
 शिविकां वेष्यामासु ज्ञात्वा तां तु सुलोचनाम् । शिविकावाहकास्येनाययुः श्रीराघवं पुनः ॥२१२॥  
 सुलोचनाऽपि श्रीरामं ननाम शिरसा मुहुः । भर्तुः शिरः कांक्षमाणां वां रामो वाक्पमन्त्रवीत् ॥२१३॥  
 कृपया तब भर्तारं करोम्यद्य सजीवितम् । मा विश्वस्त्राद्य वह्निं त्वं रोचते चेद्वदस्व माम् ॥२१४॥  
 तदा सा प्राह श्रीरामं पुनः सौमित्रिहस्ततः । कुतो भवेत्तन्मरणं मोक्षदं जीवयस्व मा ॥२१५॥  
 इत्युक्त्वा राघवं दत्त्वा सस्मितं कपिवाक्यतः । कृत्वा शिरः पतेस्तत्र लब्ध्वा सा भर्तुसच्छुरः ॥२१६॥  
 लक्ष्मायास्तौ समानीय भुजौ गत्वा निकुम्मिलाम् । भर्तुदेहेन संयोज्य विवेशामिं यथाविधि ॥२१७॥

मेघनादका कटा सिर दिखाया । उसे देखकर रामने लक्षणको छातीसे लगा लिया और बहुत आनन्दित हुए ॥ २०० ॥ रावणने पहले पुत्रका कटा हुआ हाथ देखा । पश्चात् उसकी मृत्यु सुनी तो मूर्छित होकर सभामें ही जमीनपर गिर पड़ा ॥ २०१ ॥ बादमें वह क्रोधपूर्वक खड्ग लेकर सीताको मारनेके लिए चला । उस समय सुपार्श्व नामके दुद्धिमान् मंत्रीने उसको रोका और उसका तलबारबाला हाथ अपने हाथसे पकड़कर नीतियुक्त उपदेश देते हुए कहा—॥ २०२ ॥ २०३ ॥ हे दशग्रीव ! क्रोधावेषमें आकर स्त्रीहत्या करना पाप है । हमारे साथ चलकर युद्ध करो । रणमें राम-लक्षणको मारकर जानकीको अपनी स्त्री बनाओ । इस तरह समझानेपर रावण शान्त हो गया । उधर सुलोचना अपने पति मेघनादका केषवविभूषित तथा बाणयुक्त हाथ अपने सामने पृथ्वीपर पड़ा देखकर उसके पुरुषार्थका हमरण करके विलाप करने लगी ॥ २०४ ॥ २०५ ॥ तब उस कटी भुजाने वाण द्वारा अपने खूनसे जमीनपर ही भामिनी ! तुम दुःखिनी मत होओ' ऐसा लिखकर सुलोचनाको आश्वासन दिया ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ उसने यह भी लिखा कि 'मैं साक्षात् शेषावतार लक्षणके बाणसे मरकर मुत्तिको प्राप्त हुआ हूँ । अब तुम रामके पास जाकर मेरा सिर माँगो । वे तुमको अवश्य मेरा सिर दे देंगे । उस सिरको ले तथा अग्निमें प्रवेश करके मेरी अनुगामिनी बनो' । सूलोचना उन रक्तलिखित अक्षरोंको पढ़कर प्रसन्न हुई । तदनन्तर रावण और मन्दोदरीसे आज्ञा ले तथा आभूषण धारण करके वह पालकीमें बैठकर श्रीरामके पास चली । वानरगणने उसको देखकर वह समझा कि रावणने डरकर सीता रामके पास भेज दी है । ऐसा समझकर वे उनके दर्शनकी इच्छासे दौड़ पड़े ॥ २०८-२११ ॥ पास जाकर पालकीको धेर लिया, पर जब पालकी होनेवालोंसे पता लगा कि यह सुलोचना है तो वे सब वानर रामके पास दौड़ गये ॥ २१२ ॥ सूलोचना श्रीरामके पास पहुँची तो सिर नवाकर प्रणाम किया और पतिके सिरकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना की । तब रामने कहा—॥ २१३ ॥ मैं तुमपर कृपा करके तुम्हारे पतिको जीवित कर देता हूँ । तुम अग्निमें प्रवेश करनेका विचार छोड़ दो । बोलो, यह पसन्द है ? ॥ २१४ ॥ उसने कहा—हे महाराज ! फिर ऐसे मोक्षप्रद लक्षणके हाथसे मृत्यु इन्हें कहीं प्राप्त होगी ? इसलिये अब आप इन्हें न जिलाएँ ॥ २१५ ॥ इतना कहकर उसने फिर रामको प्रणाम किया और कपिराज सुग्रीवके आज्ञानुसार पतिके सिरको पाकर हँसती हुई वह भत्तके

सुलोचना दिव्यदेहा वैकुण्ठं पतिना ययौ । रावणोऽपि सुहन्मित्रैः पुनर्योदिं ययौ रणम् ॥२१८॥  
 ततो रामेण निहताः सर्वे ते राक्षसा युधि । लङ्घायां रावणः क्षिप्तः शरेण राघवेण सः ॥२१९॥  
 ततः कृत्वा रामशिरः कृत्रिमं मयहस्ततः । ययौ सीतां दर्शयितुं रावणोऽशोककाननम् ॥२२०॥  
 एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा वोधयामास जानकीम् । कृतमस्ति रावणेन कृत्रिमं रामसच्छिरः ॥२२१॥  
 तदृदृष्टा मा भजस्वाद्य खेदं त्वमधुनाऽवले । इति सबोध्य तां सीतां ब्रह्माऽन्तर्धानमाययौ ॥२२२॥  
 रावणोऽपि समागत्य दर्शयामास तच्छिरः । सीतां प्राह हतो रामस्त्वधुना त्वं भजस्व माम् ॥२२३॥  
 तदा साऽधोमुखी प्राह तवैवाहं शिरांसि हि । रामवाणेश्च पश्यामि पतितानि रणांगणे ॥२२४॥  
 इति तद्वाक्शराघातताडितः स दशाननः । ययौ तूष्णीं स्वयं गेहं लज्याऽवनतस्तदा ॥२२५॥  
 अथ रामाञ्जया सर्वे लङ्घां प्रासादमंडिताम् । ईपिकाचूडहस्तास्ते वानराः कोटिशः क्षणात् ॥२२६॥  
 ज्वालयामासुः सर्वत्र दक्ष्वा वह्नि मुहुर्मुहुः । तदा कोलाहलश्चासीलङ्घादाहे पुरा यथा ॥२२७॥  
 दरधां स्वनगर्णीं दृष्टा स्वगृहाण्यपि रावणः । दृष्टा दरधानि कपिभिर्भास्त्रं ससृजे जवात् ॥२२८॥  
 तेनासीदनलः शांतस्तदृष्टा कपयो ययुः । ततः स रावणः शुक्रवचनाद्रहसि स्थिताम् ॥२२९॥  
 गुहां प्रविश्य चैकांते मौनी होमं ग्रन्तक्रमे । लङ्घादारकपाटादि वदुध्वा सर्वत्र यत्नतः ॥२३०॥  
 होमद्रव्याणि संगृह्य यान्युक्तानि मया पुरा । रक्तावगाहितो मुण्डमालो प्रेतासनस्थितः ॥२३१॥  
 परिस्तीर्याथ शस्त्राणि होमकुण्डसमंततः । आदशाहवालकानां शिरोभिर्मासिलोहितैः ॥१३२॥  
 एवं स रिपृष्ठातार्थं चकार हवनं रहः । उत्थितं धूम्रमालोक्य रामं प्राह विभीषणः ॥२३३॥  
 यदि होमसमाप्तिः स्यात्तदाऽजेयो भवेदयम् । ततो रामो हरीन्सर्वान्प्रेषयामास सादरम् ॥२३४॥

गलेपर रखकर जोड़ दिया ॥ २१६ ॥ पश्चात् लंकामें पतिकी देहसे उसे मिलाकर यथाविधि पतिके शरीरके साथ अग्निमें जलकर सती हो गयी ॥ २१७ ॥ तदनन्तर सुलोचना दिव्य देह धारण करके पतिके साथ दंकुण्ठ चली गयी । उघर रावण पुनः बन्धुओं तथा मित्रोंको साथ लेकर रणभूमिमें युद्ध करने गया ॥ २१८ ॥ वहाँ रामने सब राक्षसोंको मारकर रावणको बाणसे उठाकर लंकामें फेंक दिया ॥ २१९ ॥ तदनन्तर रावण मयदानवके हाथसे रामका नकली मस्तक बनवाकर सीताको दिखलानेके लिए अशोकवनमें गया ॥ २२० ॥ वहाँ इसी बीच ब्रह्माने सीताको पहले ही बता दिया था कि रावण रामका नकली सिर तुम्हें दिखायेगा । यह कहकर वे अन्तर्धान हो गये । इसके बाद रावण उनके पास पहुँचा और रामका मस्तक दिखलाते हुए कहा—हे सीते ! देखो, मैंने रामको पार ढाला है । अब तुम मेरी सेवा करनेके लिये तैयार हो जाओ ॥ २२१-२२३ ॥ यह सुनकर सीताने नीचे मुख करके कहा—मैं तो रामके बाणसे कटकर रणस्थलीमें गिरे हुए तेरा ही सिरोंको देखना चाहती हूँ ॥ २२४ ॥ सीताके इस वाक्यरूपी बाणसे ताडित होकर दशानन लज्जित हो और मुँह नीचा करके चुपचाप अपने महलमें चला गया ॥ २२५ ॥ तभी रामकी आज्ञासे करोड़ों वानर हाथमें धासके पूले ले-लेकर प्रासादों ( हवेलियों ) से भूषित लंका नगरीमें घुस पड़े ॥ २२६ ॥ उन्होंने क्षणभरमें चारों ओरसे आग लगा दी । उस समय लंकामें प्रथम लंकादहनकी ही तरह महान् कोलाहल तथा हाहाकार मचने लगा ॥ २२७ ॥ रावणने नगर तथा अपने मकानोंको जलते देखकर मेघास्त्र छोड़ा ॥ २२८ ॥ उससे आगको शान्त देखकर कपिसमूह भाग गया । पश्चात् रावण देव्यगुह शुक्राचार्यके कथनानुसार एकान्तकी एक गुफामें गया और मौन धारण करके होम करने लगा । उसने चौतरफासे लंकाके दरवाजे अच्छी तरह बंद कर लिये ॥ २२९ ॥ २३० ॥ पहले मैंने जो-जो हवनके द्रव्य कहे हैं, वे सब इकट्ठे कर लिये । उसने अपने सब शरीरमें लोहू लपेट लिया । गलेमें मुण्डोंकी माला पहिन ली । मृत पुरुषके शरीरको आसन बनाया ॥२३१॥ होमकुण्डके चारों ओर शस्त्र रख लिये और दस दिनसे प्रथम उत्पन्न वालकोंके सिर तथा मांस और श्विर से एकान्तमें शत्रुओंके नाशके लिये हवन आरम्भ कर दिया । ऊपर उठाते होमके धुएंको देखकर विभीषणने यससे कहा—॥ २३२ ॥ २३३ ॥ हे राम ! यदि होम निर्विघ्न समाप्त हो गया तो रावण सर्वथा अवेय हो

प्राकारं लङ्घयित्वा ते गत्वा रावणमंदिरम् । हत्वा राक्षसवृन्दं तदगुहारक्षणतत्परम् ॥२३६॥  
 न ददशुर्गुहाद्वारं यत्र होमं चकार सः । ततश्च सरमानाम प्रभाते करसंजया ॥२३७॥  
 विभीषणस्य भार्या तान् होमस्थानमसूचयत् । गुहापिधानपाषाणानंगदः पदघड्नैः ॥२३८॥  
 चूर्णयित्वा रावणञ्च ताड्यामास मुष्टिना । वानरास्तेऽपि तं वृक्षस्ताड्याभासुरादरात् ॥२३९॥  
 तद्वत्ते वानरा दृष्टा तूष्णीमेव स्थितं रिषुम् । समानयन्केशपाशे घृत्वा मंदोदरीं शुभाम् ॥२४०॥  
 विलपतीं मुक्तनीवीं विहूलां हृतकंचुकीम् । दृष्टा त्यक्त्वा तदा होममुदतिष्ठृत्वरान्वितः ॥२४१॥  
 ततस्ते वानराः सर्वे ययुः श्रीराघवांतिकम् । ततो मंदोदरी प्राह कुरु त्वं वचनं मम ॥२४२॥  
 दत्त्वा सीतां राघवाय राज्ये कृत्वा विभीषणम् । तपश्चर्या मयारङ्ग्ये कर्तुमर्हसि वै सुखम् ॥२४३॥  
 तत्तस्या वचनं श्रुत्वा तां स प्राह दशाननः । रामो विष्णुश्च मा सीता जानामि प्राणवल्लभे ॥२४४॥  
 रामहस्ताद्वधं लब्धुं हता सीता पुरा मया । रामहस्तात्यक्तदेहो गच्छामि परमं पदम् ॥२४५॥  
 त्वया कार्या क्रिया मे हि प्रविशस्वानलं ततः । ततः सुखं मया मुक्ता गमिष्यसि परं पदम् ॥२४६॥  
 इत्युक्त्वा प्रययो योद्दुं रथे स्थित्वा त्वरान्वितः । राजद्वारादिनिर्गच्छब्रये मुण्डी विलोकितः ॥२४७॥  
 मुकुटः पतितवित्रः संविश्रो रावणो हृदि । ततो ययौ रणभूवं ववषे निश्चितैः शरैः ॥२४८॥  
 विधाय कृत्रिमां सीतां मयेन स दशाननः । पश्यतां वानराणां च स्वरथे तां जघान वै ॥२४९॥  
 दिव्येन शितखड्नेन दृष्टा ते तु प्लवंगमाः । हाहेत्युक्त्वा दुःखितास्ते ययू रामं निवेदितुम् ॥२५०॥  
 तावद्वेधाः समागत्य रामादीन् प्राह सादरम् । कृत्रिमेयं हता सीता मा खेदं भजताद्य हि ॥२५१॥  
 ततोऽन्तर्धानमगमद्विधिस्तेऽपि प्लवंगमाः । रामाद्या ब्रह्मवाक्येन तुष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥२५२॥

जायगा । तब रामने सब वानरोंको सादर बुलाकर युद्धके लिये भेजा ॥ २३४ ॥ वे सब परकोटेको लाघिकर रावणके मन्दिरमें घुस गये । उन्होंने वहाँ उस गुफाकी रक्षा करनेवाले राक्षसोंको मार डाला ॥ २३५ ॥ परन्तु जहाँ रावण हवन करता था, उस गुफाका दरवाजा किसीको नहीं मालूम था । तब प्रातःकालके समय विभीषणकी स्त्री सरमाने हाथके संकेतसे उन सबको होमस्थानका दरवाजा बता दिया । द्वारपर लगे हुए पाषाणको लात मारकर अंगदने तोड़ दिया और भीतर जाकर रावणको मुक्कोंसे भारते लगे । अन्यान्य वानर भी उसे वृक्षोंसे पीटने लगे ॥ २३६-२३८ ॥ फिर भी रावणको चुपचाप बैठा देखकर वानर उसकी स्त्री मन्दोदरीको केश पकड़कर वहाँ स्थान लाये ॥ २३९ ॥ अपनी सुन्दरी स्त्रीको रोतो हुई, मुक्तकच्छ, चोलीरहित तथा विहूल देखकर रावण होमको अधूरा छोड़कर उठ खड़ा हुआ ॥ २४० ॥ इस प्रकार उसके होमको भङ्ग करके सब वानर रामके पास आग गये । तब मन्दोदरीने कहा-हे नाथ ! तुम अब भी मेरी बात मान लो ॥ २४१ ॥ सीता रामको देकर विभीषणको लंकाका राज्य दे दो और मेरे साथ चलकर बनमें तप करो । तुमको इसीमें सुख प्राप्त होगा । स्त्रीकी बात सुनकर दशाननने कहा-हे प्राणवल्लभे ! मैं जानता हूँ कि राम साक्षात् विष्णु तथा सीता साक्षात् लक्ष्मी है ॥ २४२ ॥ २४३ ॥ यह जानकर ही मैं रामके हाथसे मरनेके लिए सीताको यहाँ ले आया हूँ । रामके हाथसे मरकर मैं परम पद प्राप्त करूँगा ॥ २४४ ॥ बादमें तुम भी मेरी क्रिया करके तथा अग्निमें सती होकर सुखपूर्वक मेरे साथ परम घाम प्राप्त करोगी ॥ २४५ ॥ इतना कह तथा रथपर सवार होकर वह लड़ाइके लिए चल पड़ा । राजमहलसे निकलते ही उसको सिर मुड़ाये हुए एक मुण्डी दिखायी दिया ॥ २४६ ॥ उसका चित्र-विचित्र मुकुट भी गिर पड़ा । यह देखकर रावण मनमें ध्वराया । फिर भी उसने समरभूमिमें जाकर बहुत तेजीसे बाणोंकी वर्षा की ॥ २४७ ॥ तदनन्तर मयदानवसे एक नकली सीता बनवाकर उसने वहाँ वानरोंके सामने अपने रथपर रखकर काट डाला ॥ २४८ ॥ तेज धारवाली तलवारसे सीताको कटती देख हाहाकार करते हुए सब वानर यह समाचार रामके पास निवेदन करने गये ॥ २४९ ॥ इतनेमें ब्रह्माने आकर राम आदिको बड़े आदरसे समझाकर कहा कि यह कृत्रिम सीता मारी गयी है । तुम लोग दुखी मत होओ ॥ २५० ॥ इतना कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और वे सब वानर और राम आदि वीर ब्रह्मवाक्य-

तदा स मातलिः शीघ्रं देवेन्द्रवचनाद्रथम् । शत्रुघ्नवाजिसहितमशनिध्वजशोभितम् ॥२५२॥  
वरच्छत्रसमायुक्तं राघवाये न्यवेदयत् । तमारुद्धा तदा रामश्चकार कदनं महत् ॥२५३॥  
आग्रेयेन तदाग्रेयं देवं देवेन राघवः । अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमाञ्चवित् ॥२५४॥  
ततस्तु ससृजे घोरं राक्षसः सार्पमस्त्रवित् । रामः सप्तस्तितो दृष्ट्वा सौषण्यस्त्रं मुमोच सः ॥२५५॥  
अस्त्रैः प्रतिहते युद्धे रामेण दशकंधरः । पार्जन्यं ससृजे घोरं वायव्यास्त्रेण राघवः ॥२५६॥  
तदस्त्रं विनिवार्यसो वह्न्यस्त्रं ससृजे पुनः । पर्जन्यास्त्रेण पौलस्त्यश्चकार विफलं तदा ॥२५७॥

नागानामयुतं तुरंगनियतुं सादृशथानां शतं पत्तीनां शतकोटिनाशसमये त्वेका कवधा नृतिः ।  
एवं कोटिकवंधनर्तनविधावेका ध्वनिः किंकिणेविंशत्ताः प्रहरार्थतो रघुपतेः कोदंडघटारणे ॥२५८॥  
तदाऽशनिध्वजं रथं वाणीश्चिच्छेद रावणः । तं दृष्ट्वा रामचन्द्रोऽपि ध्वजर्हानं रथं निजम् ॥२५९॥  
मारुतिं प्राह वेगेन क्षणं तिष्ठ ध्वजोपरि । तथेत्युक्त्वा मारुतिः स तालमुत्पाद्य वेगतः ॥२६०॥  
गत्वा रामरथे दिव्ये तस्मिस्तस्थौ स्वयं मुदा । तं मारुतिध्वजं दृष्ट्वा रावणः समरांगणे ॥२६१॥  
तालं छत्रं मातलिन तुरगान्वायुनंदनम् । ऐन्द्रं धनुस्तचिच्छेद नववाणीस्त्वरान्वितः ॥२६२॥  
वातात्मजमातलिनौ मूर्छितौ पतितौ भुवि । क्षणमात्रेण स्वस्थोऽभूत्तदा स वायुनन्दनः ॥२६३॥  
तदा रामो वायुपुत्रस्कन्धे स्थित्वा रणाजिरे । चकार तुमुलं युद्ध रावणेन भयावहम् ॥२६४॥  
रावणः परिधेणव संताद्य मारुतिं हृदि । चकार मूर्छित वगात्पपात स पुनभुवि ॥२६५॥  
तदा सस्मार रामोऽपि स्वरथं समरांगणे । तावद्रथः क्षणादेवाययो खादग्रतः स्थितः ॥२६६॥

से संतुष्ट होकर युद्ध करनेका निकल पड़े ॥ २५१ ॥ इसी समय इन्द्रके आज्ञानुसार उनका सारथी मातृ अस्त्र-शस्त्रोंसे भर तथा घोड़ोंसे जुते हुए रथको लेकर रामके पास आया और उनसे रथपर सवार होकर करनेके लिए कहा । तब रामने उस रथपर सवार होकर महान् युद्ध किया ॥ २५२ ॥ २५३ ॥ अस्त्रोंका जारी वालोंमें परमश्रेष्ठ रामने राक्षसोंके राजा रावणका आग्नेय अस्त्र अपने आग्नेय अस्त्रसे तथा देवास्त्र देवास्त्र शान्त किया ॥ २५४ ॥ तब अस्त्रवित् रावणने घोर सप्तस्त्र छोड़ा । रामने सप्तीको देखकर गारुडास्त्र छ ॥ २५५ ॥ इस प्रकार जब रामन युद्धको अपने अस्त्रोंसे प्रतिहत कर दिया, तब रावणने एक दूसरा भयानक मेधास्त्र फेंका । रामने उनका उत्तर वायुअस्त्रसे कर दिया ॥ २५६ ॥ उस अस्त्रका निवारण करके रामने उसपर आग्नेयास्त्र चलाया । तब रावणन उस वर्षा-अस्त्रसे विफल कर दिया ॥ २५७ ॥ दस हजार हाथी, दस लाख घोड़, ढेह सौ रथ तथा एक करोड़ पंदल संनिकोके नष्ट होनेपर एक कवन्धका नृत्य होता है । इस प्रकारके करोड़ कवन्धनृत्य होनेपर एक किकिणियों (घोटियों) की ध्वनि होती है, परन्तु रघुपति रामके केवल आधे प्रहरतक घनुषका घंटारव करनेसे ही वासों किकिणियोंकी ध्वनि हुई ॥ २५८ ॥ उस समय इस कौतुकको देखनेके लिए आकाशमें संकड़ा विमानापर आरुह देवता, गन्धवं, किन्नर तथा यक्षलाग इकट्ठे हो गये ॥ २५९ ॥ तभा रावणने अपने वाणोंसे रामके वज्र तथा ध्वजाका काट दिया । रामचन्द्र अपने रथको ध्वजासे हीन देखकर मारुतिसे बाले कि तुम क्षणभरके लिय जल्दीसे मेर रथका ध्वजाके पास बैठ जाओ । ‘तथास्तु’ कहकर मारुति झट एक ताढ़का वृक्ष उखाड़कर रामके दिव्य रथपर रख दिया और आनन्दसे उसीपर जा बैठे । मारुतिकी ध्वजाको देखकर रावणने रणांगणमें बड़ी फुरतीके साथ तालवृक्षको, छत्रको, मातलि सारथीको, अश्वोंको, वायुनन्दन हनुमान्दको तथा ऐन्द्र घनुषको नी वाणोंसे काट डाला ॥ २६०-२६३ ॥ तब वातात्मज हनुमान् तथा मातलि मूर्छित होकर जमीनपर गर पड़े । परन्तु क्षण ही भरमें वायुनन्दन सचेत हो गये ॥ २६४ ॥ तब राम हनुमान्दके कन्धेपर सवार होकर रावणके साथ रणांगणमें भयानक युद्ध करने लगे ॥ २६५ ॥ एकाएक रावणने मारुतिको छातापर गदा मारकर मूर्छित कर दिया और हनुमान् उसी समय फिर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ २६६ ॥ तब श्रीरामने अपने रथका स्मरण किया । क्षणभरमें आकाशसे आकर वह रथ युद्धभूमिमें उनके सामने

दारुकः सारथिर्वत्र यत्र शत्र्याण्यनेकशः । गदा पद्मं तु यत्रास्ति मर्वदा गरुडो ध्वजे ॥२६८॥  
 यस्मिन्नल्लेख्यश्च सुग्रीवस्तथा चैत्र बलाहकः । मेघपुष्पश्च चत्वारो वायुवेगा हयोत्तमाः ॥२६९॥  
 यत्र छत्रं वरं दिव्यं हेमदण्डं विराजते । चामरे द्वे शुभे यत्र शाङ्कं स्वं धनुराददे ॥२७०॥  
 ततो रामः शरैस्तीक्ष्णैर्दशास्यस्य रथं क्षणात् । चक्कार चूर्णं साश्वं तं रावणं चाप्यतर्जयत् ॥२७१॥  
 तदाऽन्यरथमारुडो रावणो राघवं यथौ । ततो रामः शरैस्तीक्ष्णैर्दशाननशिरांसि सः ॥२७२॥  
 चिच्छेद तानि गगने गत्वा तोषयुतानि हि । रामहस्तान्मृतिर्जाताऽस्माकं चेति विचित्य च ॥२७३॥  
 वन्दनं कर्तुकामानि गगनाच रणाजिरे । सस्मितानि पतन्ति स्म राघवस्य पदोपरि ॥२७४॥  
 रामःशिरांसि दृष्ट्वाऽथ विदीर्णास्यानि खात्पुनः । मां हन्तुं प्रदवंतीति मत्वा भीत्याव्यताढयत् ॥२७५॥  
 शराईः शतशः शीघ्रं तदङ्गुतमिवाभवत् । शतमेकोत्तरं छिन्नं शिरसां चैकवर्चसाम् ॥२७६॥  
 दृष्ट्वा तु रावणस्यान्तं विभीषणमतेन सः । नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम् ॥२७७॥  
 पावकास्त्रेण तच्छीघ्रं शोषयामास राघवः । ततः शिरांसि बाहूश्चिच्छेद रावणस्य सः ॥२७८॥  
 एकेन मुख्यशिरसा चाहुभ्यां रावणो बभौ । तयोर्युद्धमभूदोरं तुमुलं रोमर्हणम् ॥२८०॥  
 ततो दारुकवाक्येन मर्मदेशे व्यताढयत् । ब्रह्मास्त्रेण रघुश्रेष्ठः समरे दशकन्धरम् ॥२८१॥  
 स शरो हृदयं भित्वा हत्वा तं तु दशाननम् । रामतूषीरमाविश्य भेने स कुतकुत्यताम् ॥२८२॥  
 रावणस्य च देहोत्थं ज्योतिरादित्यवत्स्फुरत् । ग्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम् ॥२८३॥  
 तदा देवास्तुष्टवुस्तं वर्वर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । नेदुः खे देववाद्यानि ननृतुशाप्तरोगणाः ॥२८४॥  
 तदा मंदोदरी भर्त्रा सह देहं विसृज्य सा । यथौ वैकृष्णठभवनं रावणेन मुदान्विता ॥२८५॥

खड़ा हो गया ॥२६७॥ जिस रथका दारुक सारथी था, जिसपर अनेक शस्त्र थे, जिसपर गदा-पथ तथा ध्वजापर गरुड़ विराजमान थे ॥२६८॥ जिस रथमें उत्तम वायुवेगवाले शैव्य, सुग्रीव, बलाहक तथा मेघपुष्प ये चार घोड़े जुते थे ॥२६९॥ जिसमें दिव्य तथा सुन्दर सुवर्णदण्डवाला छत्र विराजमान था । जिसमें दो मनोहर चमर तथा रमणीय शाङ्कं नामका धनुष रखला हुआ था । तब रघुनन्दन राम उस रथको देख तथा परिक्रमा करके सानन्द उसपर सवार हो गये और अपने शाङ्कं धनुषको हाथमें ले लिया । अब राम अपने तीक्ष्ण बाणोंसे क्षणभरमें शत्रुके अश्व सहित रथको चूर्ण करके रावणको ललकारने लगे । तब रावण दूसरे रथपर सवार होकर रामके सामने गया । रामने पुनः तीक्ष्ण बाणोंसे रावणके दसों सिरोंको काट दिया । वे सिर गगनमंडलमें जाकर 'हमारी मृत्यु रामके हाथोंसे हुई है' यह सोचकर हँसते हुए आकाशसे रणक्षेत्रमें रामके पाँवोंपर आ गिरे ॥२७०-२७४॥ रामने आकाशसं मुख फाड़े हुए उन सिरोंको अपनी ओर आते देखकर यह समझा कि ये मुझे खा जानेको आ रहे हैं । इस प्रकार रामने डरकर झट संकड़ों बाण उनपर चला दिये । यह हृश्य बड़ा ही अद्भुत या । इस प्रकार एक सौ एक बार उसके सिरको रामने काटा ॥२७५॥२७६॥ कोई कोई विद्वान् कल्पभेदसे यह भी कहते हैं कि सी सिरवाले रावणके सिर रामने एक हजार एक बार काटे थे ॥२७७॥ परन्तु लिसपर भी जब रावणकी मृत्यु नहीं हुई, तब विभीषणके कहनेके अनुसार रामने उसके नाभिदेशमें स्थित अमृतकुण्डको अपने अग्निअस्त्रसे सुखा डाला और बादमें उन्होंने रावणके सिरों तथा बाहुओंको काटा ॥२७८॥२७९॥ इस प्रकार जब रावणके एक सिर तथा दो हाथ बाकी रह गये, तब पुनः राम-रावणका रोमांचकारी तुमुल युद्ध हुआ ॥२८०॥ तदनन्तरं रामने दारुक सारथीके कहनेपर ब्रह्मास्त्रसे समरमें दशकंघरको नाभिर्मं मारा ॥२८१॥ उस बाणने उसके हृदयको छेद तथा रामके तरकसमें आकार अपने आपको कुतकुत्य समझा ॥२८२॥ उस समय रावणके मृत शरीरसे सूर्यके समान प्रदीप्त तेज निकलकर देवताओंके सामने ही रघुनन्दन रामके देहमें प्रवेश कर गया ॥२८३॥ तब देवताओंने स्तुति करके

ततो विभीषणेनैव रामो रावणसात्क्रियाम् । कारयित्वा लक्ष्मणेन लङ्घायां तं विभीषणम् ॥२८६॥  
नीत्साऽभिषेचयित्वाऽथ न्यासभूतां तदंतिके । वायुपुत्रकृतां लङ्घां मोचयामाय राक्षपात् ॥२८७॥  
विभीषणादिभिः शीत्रमशोकं प्रेष्य मारुतिम् । सीतायै सकलं वृत्तं श्रावयामास राघवः ॥२८८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितात्मांते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकांडे  
युद्धचरित्रे रावणवधो नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

## द्वादशः सर्गः

( रामका राज्याभिषेक )

श्रीशिव उवाच

अथ तां दिव्यवस्त्रैश्च भूषयित्वा विदेहजाम् । सुन्नातां शिविकासंस्थां वेष्टितां वेत्रपाणिभिः ॥ १ ॥  
निन्युः श्रीरामसान्निध्यं सुग्रीवाद्यास्त्वरान्विताः । नानावाद्यसमुत्साहैर्नेतर्नेवारयोपिताम् ॥ २ ॥  
ततोऽवरुद्ध यानात्सा पद्मयां गत्वा शर्नैः पतिम् । ननाम सीता श्रारामं लज्जिताऽऽसात्पतेः पुरः ॥ ३ ॥  
रामोऽपि दृष्ट्वा तां सीतां शुद्धां ज्ञात्वापि तां पुनः । सर्वपां प्रत्ययार्थं हि तदा वचनमत्रवात् ॥ ४ ॥  
यथेच्छं गच्छ वैदेहि रिपुगेहनिवासिना । न त्वामगोकरोम्यद्ब्रह्मणा प्रार्थितोऽप्यहम् ॥ ५ ॥  
तद्रामवचनं श्रुत्वा कारयित्वा चितां शुभाम् । लक्ष्मणनाथ सुस्नाता साता वचनमत्रवात् ॥ ६ ॥  
रामादन्यं चेतसाऽपि नाहं जानामि पावक । यादद मे वचः सत्य ताहं त्वं शातला भव ॥ ७ ॥  
इति सा शपथं कुत्वा विवशानलमुत्तमम् । ततः स देववाक्येश्च तथा दशरथस्य च ॥ ८ ॥  
वचनाज्ञानकां शुद्धां ज्ञात्वा तामग्रहात्प्रभुः । सुभूषितां पावकन स्वाके संस्थापता शुभाम् ॥ ९ ॥  
पञ्चवट्यां स्वयं तत्र पुरा न्यस्तां च पावके । आलिङ्ग्य जानका रामा नजाक सन्यवश्वत् ॥ १० ॥

पुष्प बरसाये, गगनमण्डलमें दिव्य बाजे बजने लगे तथा अप्सराएं नृत्य करने लगा ॥ २८४ ॥ उबर मन्दादरा ब्रानन्दसे पातके साथ अपना पाञ्चभौतिक देह छाड़कर बंकुण्ठबामका प्रस्थान कर गया ॥ २८५ ॥ १४ वात् रामने लक्ष्मणको भेजा और विभीषणस रावणका क्रिया करवाया और लङ्घाम विभीषणका बोभषक करवाकर उसके पास वायुपुत्रकी न्यास ( वरोहर ) रखता हुई लङ्घाम का राक्षसास छुड़वा दिया ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ उदनन्तर रामने विभीषणादिके साथ हनुमानको साताक पास भजकर सब समाचार कहलाया ॥ २८८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितात्मांते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकांडे युद्धचरित्र 'ज्यात्स्ना' भाषाटाकायां चरणवधो नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! तदनन्तर नुग्रीव आदि वानर सुमनोहर वस्त्रों तथा भूषणोंसे भूषित, स्नान करके पालकीपर सवार, बैत हाथमें लिये हुए सपाहियोंसे घिरा हुई बैदहाका अनेक बाजाक सुन्दर शब्दोंके छहित तथा वेश्याओंके नृत्यके साथ शोभ रामके पास ले आय ॥ १ ॥ २ ॥ साता कुछ दूर हा सवारापरसे ढठरकर धारें-धीरे अपने पति रामके पास गयी तथा उन्हें प्रणाम करके कुछ लज्जित होता हुई उनके सामने बढ़ा हो गयी ॥ ३ ॥ राम सीताको शुद्ध चरित्रवाली समझकर भा सवंसाधारणका विश्वास दिलानेके लिए बढ़ने लगे ॥ ४ ॥ हे शत्रुके धरमें निवास करनेवाली बैदही ! तुम जहाँ चाहो, वहाँ चलो जाओ । साक्षात् ब्रह्मा हे तो भी मैं तुम्हें अपने पास नहीं रख सकता ॥ ५ ॥ रामका ऐसा वाक्य सुनकर साताने स्नान किया और लक्ष्मणसे सुन्दर चिता रचवाकर अग्निदेवकी प्रार्थना करता हुई बोली ॥ ६ ॥ हे पावक ! यदि मैंने रामके लियाम अन्य पुरुषका चित्तसे भी चित्तन न किया हो तो शातल हो जा ॥ ७ ॥ सीता ऐसा कहकर अग्निमें जलें और गयी । तब प्रभु रामने अग्निदेव तथा राजा दशरथके कहनेसे जानकीको परिव्रत तथा पतिव्रता करकर स्वीकार कर लिया । यह बात सीता जानती थीं, जिनको कि रामने पञ्चवटीमें स्वयं अग्निको सींप

तामसी राजसी चैव सात्त्विकी या त्रिधा पुरा । जाता रावणघातार्थं सा जातैकत्र वै तदा ॥११॥  
 ततो दैवैः स्तुतो रामश्वेन्द्रेण समरे मृतान् । वानरादीन् सुधावृष्ट्या जीवयामास सादरम् ॥१२॥  
 तत्रैकं वानरं रामोऽदृष्ट्वा प्रच्छ मारुतिम् । राघवं मारुतिः प्राह कुम्भकर्णेन भक्षितः ॥१३॥  
 यदि किंचित्स्य कपेर्नखकेशास्थिलोहितम् । रणेऽभविष्यत्पतितं तर्ह्यद्यामृतवृष्टितः ॥१४॥  
 अभविष्यज्ञीवितः स सत्यं विद्धि रघूतम् । सुधावृष्ट्या राक्षसास्ते जीवयिष्यन्ति वै पुनः ॥१५॥  
 इति भीत्या पुराऽस्माभिः सर्वे त्यक्ता महादधौ । तन्मारुतेर्वचः श्रुत्वा यमराजं व्यलोक्यत् ॥१६॥  
 यमोऽपि भीत्या रामाग्रेऽर्पयत्तं प्लवगात्तमम् । तं दृष्ट्वा राघवस्तुष्टदाऽऽज्ञा नाकमुत्तमम् ॥१७॥  
 गंतुं ददौ मातलिने सोऽपि नत्वा रघूतमम् । रथेन वाजियुक्तेन ययौ मधवतः पुरीम् ॥१८॥  
 रामस्तु मंगलस्नानं कर्तुं संप्रार्थितोऽपि हि । विभीषणेन भरतं स्मृत्वा नांगीचकार सः ॥१९॥  
 ततः सर्वेन्वानरैश्च पुष्पकं चारुरोह सः । रथेन दारुकश्चापि गरुडो मकरध्वजः ॥२०॥  
 विभीषणश्चारुरोह पुष्पकं राघवाङ्गया । ततस्ते निर्जराः सर्वे राममामंत्य ख ययुः ॥२१॥  
 दृष्ट्वा रामं दशरथो विमानेन ययौ दिवम् । अथ तं राघवं प्राह पुष्पकस्य विभीषणः ॥२२॥  
 राम ते प्रष्टुभिर्च्छामि तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि । ऐरावणगृहे राम यदा पातालमुत्तमम् ॥२३॥  
 पुरा गतस्तदा तूर्णां किमर्थं त्वं स्थितः प्रभो । कथं तौ न हतौ दुष्टौ तदैव क्षणमात्रतः ॥२४॥  
 तत्स्य वचनं श्रुत्वा विहस्य राघवोऽव्रवीत् । भ्रमराणां वधः पूर्वं विधिना मारुतेः करात् ॥२५॥  
 प्रोक्तस्तस्मान्मया तूर्णां प्रताक्षा मारुतेः कृता । अन्यच्चापि जगत्या हि मारुतेः पौरुषं जनाः ॥२६॥

दिया था । इस समय भगवान रामचन्द्रने उन्हीं जानकीको आलिगन करके अपनी गोदमें बैठा लिया ॥८-१०॥ जिस सीताने पूर्वकालमें रावणवधके लिए तामसों, राजसी तथा सात्त्विकी ये तीन मूर्तियें चारण का थीं, वह उस समय पुनः एक हो गयी ॥११॥ पश्चात् सब देवताओंने मिलकर रामकी स्तुति की । रामने इन्द्रसे कहकर समरमें मरे हुए वानरोंका सुधावृष्टिसे जीवित करवाया ॥१२॥ उनमें एक वानरको न देखकर रामने मारुतिसे पूछा । मारुतिने उत्तर दिया कि मालूम होता है, उसे कुम्भकणं खा गया ॥१३॥ हे रघूतम् ! यदि उस वानरका नख, केश अथवा लोहित आदि कुछ भी रणभूमिमें शेष होता तो वह अवश्य इस अमृतवर्षासि जीवित हो जाता । यदि कहें कि अमृतवर्षासि राक्षस क्यों नहीं जा गये तो इसका उत्तर यह है कि उनका तो जीवित हा जानेक डरसे हम लोगोंने पहले ही समुद्रमें फेंक दिया था । मारुतके इस वचनको सुनकर रामने यमराजका ओर देखा । उनके देखनेसे ही यमराज डर गय और उस बन्दरका रामक आगे लाकर खड़ा कर दिया । यह देखकर राम प्रसन्न हो गये । बादमें रामने मातालका स्वर्ग जानेका आशा दे दी । वह भा रामको प्रणामकर तथा अश्वयुक्त रथ लेकर इन्द्रपुरीको छला गया ॥१४-१८॥ तदनन्तर विभीषणने रामका विघ्नशान्तकारक मङ्गलस्नान करनेके लिये कहा । जो किसी विघ्न, आपत्ति तथा राग आदिके बाद किया जाता है । पर रामने भरतका स्मरण करके उसे अंगीकार नहीं किया ॥१९॥ बादमें समस्त बन्दरोंके साथ रामजों पुष्पक विमानपर सवार हो गये । रथसहित दारुक, गरुड़ और मकरध्वज भी उसपर चढ़ गये ॥२०॥ रामका आशा पाकर विभाषण भी विमानारुद्ध हो गये । तभी सब देवता रामका आदेश पाकर स्वर्गको चले गये ॥२१॥ राजा दशरथ [ जो कि जनकनन्दिनीके अग्निप्रवेशके समय विमानपर बैठकर आये थे ] भा रामसे पूछकर स्वर्गको चल दिये । इसके उपरान्त पुष्पक विमानपर स्थित विभाषणने रामसे कहा—॥२२॥ हे राम ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ । कृपा करके आप उसका उत्तर दे । हे राम ! जब आप पातालमें ऐरावणके यहाँ गये थे ॥२३॥ उस समय हे प्रभो ! आप चुप क्यों हो गय थे । उसी क्षण आपने उन दुष्टोंको मार क्यों नहीं डाला ? ॥२४॥ यह प्रश्न सुना तो राम कुछ मुस्करा-कर बोले कि पूर्वकालमें किसी समय ब्रह्माने 'उन भैरवोंका वध हनुमानके हाथसे होगा' ऐसा कह दिया था ॥२५॥ इसी कारण मैंने चुप होकर वह काम मारुतिपर ही छोड़ दिया था और इसीलिये मैंने मारुतिकी

वदंतु येन श्रीरामलक्ष्मणौ मोचितौ पुरा । असुराभ्यां हि पाताले सोऽयं श्रीगमसेवकः ॥२७॥  
हति पौरुषबृद्धयर्थं मारुतेर्जगतीतले । मम दामस्य बलिनस्तथा तृणीं स्थितं मया ॥२८॥  
नोचेवृद्धकारमात्रेण पथि हंतुं न किं क्षमः । ईपिकास्त्रेण काकस्य येन नेत्रं विदारिनम् ॥२९॥  
शतयोजनपर्यन्तं मारीचोऽङ्गां पतत्रिणा । पुरा येन मया त्यक्तः सोऽहं किं कुण्ठितस्तदा ॥३०॥  
सयोर्वधे तु पाताले न शस्त्रार्थं प्रतीक्षितम् । मारुतेः पौरुषार्थं हि सत्यं वेद विभीषण ॥३१॥  
इति रामवचः श्रुत्वा मारुतिः स विभीषणम् । तदा प्राह विहस्याथ किं त्वं तद्विस्मृतोऽसि हि ॥३२॥  
सेतुकाले राघवेण गवे दृष्ट्वा मयि स्थितम् । लांगूलं खंडितं पूर्वं लिंगोत्पाटनहेतुना ॥३३॥  
तस्य मे राघवाग्रे हि किं वलं मन्यसेऽत्र हि । किं विलम्बो राघवाय तयोरमुख्योर्वधे ॥३४॥  
वधिता निजदासस्य कीर्तिरत्र विभीषण । इति तन्मारुतेर्वाक्यं श्रुत्वा रामं विभीषणः ॥३५॥  
ननाम परया भक्त्या ततः सम्यगपूजयत । अथ रामः पुष्पकस्थः सीतया प्रार्थितो मुहुः ॥३६॥  
तद्वाक्यगौरवात्तुष्टस्त्रिजटायै चरान्ददी । चस्त्रालङ्कारभृपाभिः पूर्वं तुष्टां विधाय च ॥३७॥  
त्रिजटे वचनं मेऽय शृणु मंगलदायकम् । कार्तिके माधवे माधे चैत्रे मासचतुष्टये ॥३८॥  
स्नात्वाऽग्रे त्रिदिनं स्नानं त्वत्प्रीत्यर्थं नरोत्तमाः । करिष्यन्ति हि तेनैव कृतकृत्या भविष्यसि ॥३९॥  
यैर्नस्त्रिदिनं स्नानं न कृतं पूर्णिमोर्ध्वतः । तेषां मासकृतं पूण्यं हर त्वं वचनान्मम ॥४०॥  
अन्यच्चापि शृणुष्व त्वं दीयते यो वरो मया । अशुचीनि गृहाण्येव तथा श्राद्धहर्वांषि च ॥४१॥  
क्रोधाविष्टेन दत्तानि विषिवत्तकृतान्यपि । त्रिजटे तानि तुभ्यं हि शृण्वन्यत्वं मयोच्यते ॥४२॥  
पादशौचमनस्यंगं तिलहीनं च तर्पणम् । सर्वं तत्त्विजटे तुभ्यं तथा श्राद्धमदक्षिणम् ॥४३॥

यहाँ प्रतीक्षा की । दूसरी इच्छा यह थी कि संसारमें लोग मारुतिके बलको भी जान जायें कि मारुतिने पातालमें राक्षसोंके हाथसे राम-लक्ष्मणको छुड़ाया था, वही यह रामका सेवक हनुमान् है ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस प्रकार जगत्‌में अपने बलवान् सेवक हनुमान्‌के पुरुषार्थकी प्रसिद्धि करनेके लिए ही मैं वहाँ चुप हो गया था ॥ २८ ॥ नहीं तो क्या मैं उनको रास्तेमें ही हुंकारमात्रसे नष्ट नहीं कर सकता था ? जिसने सीकके अस्त्रसे ही काक जयन्तका नेत्र फोड़ डाला ॥ २९ ॥ जिसने बाणसे मारीचको सौ योजनकी दूरीपर समुद्रमें फेंक दिया । वह मैं तब क्या कुण्ठितशक्ति हो गया था, कभी नहीं । मैंने पातालमें उनको मारनेके लिये किसी शस्त्रकी राह नहीं देखी थी । हे विभीषण ! तुम सच मानो कि मैं उस समय केवल हनुमान्‌के बलकी रक्षाति करनेके लिए ही चुप हो गया था ॥ ३० ॥ ३१ ॥ रामका यह कथन सुनकर हैसते हुए मारुतिने विभीषणसे कहा-क्या तुम उस बातको भूल गये, जब सेतु बाँधनेके समय रामने मुझको कुछ गवंयुक्त देखकर स्थापित शिवलिम उखाड़नेके बहाने मेरी पूँछ तोड़वा डाली थी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐसे मुझ निर्बलका बल रामचन्द्रके समुख किसी गिनतीमें नहीं है । रामचन्द्रको उन दोनों असुरोंको मारनेमें क्या देर लगती ? कदापि नहीं । हे विभीषण ! रामने केवल अपने दासकी ( मेरी ) कीर्ति बढ़ानेके लिए ही बैसा किया था । मारुतिकी बात सुनकर विभीषणने रामकी परम भक्तिसे प्रणाम करके प्रेमसे अच्छी तरह पूजन किया । पश्चात् रामने विमान-पर बैठी हुई सीताके कहनेसे उनके बाक्यका आदर करते हुए प्रसन्न होकर त्रिजटाको वरदान दिया । पहले उसको वस्त्र-अलंकार आदिसे संलग्न करके कहा-हे त्रिजटे ! तुम मेरी मञ्जलमयी बाणी सुनो । कार्तिक, बैशाख, माघ और चैत्र इन चार महीनोंमें पहलेके तीन दिन सभी नरथ्रेष्ठ तुमको प्रसन्न करनेके लिए ही स्नान करेंगे । इससे तुम कृतकृत्य हो जाओगी ॥ ३४-३५ ॥ जो मनुष्य इन चार महीनोंमें पूर्णिमासे लेकर तीन दिन स्नान न करे, उसका सारे महीनेका किया हुआ पुण्य मेरे कहनेसे तुम हरण कर लेना ॥ ४० ॥ और यह भी वर देता हूँ कि अपवित्र स्थानमें विविपूर्वक किये हुए श्राद्ध तथा इन अदि भी यदि क्रोधसे किये गये हों तो वे भी तुम्हारे ही होंगे । और भी सुनो, बिना तेल में पांव घेने तथा बिना विलक्षणे तर्पण करनेके पुण्य भी तुम्हारे होंगे । हे त्रिजटे ! दक्षिणासे

इति दत्त्वा वरान् रामस्त्रिजटासरमान्वितः । स विभीषणसुद्रीवमकरञ्चजवानरैः ॥४४॥  
यथौ विहायसा सीतां दर्शयन् कौतुकानि सः । पश्य सीते पुरीं लङ्कां तथा रणभूवं शुभाम् ॥४५॥  
पश्य सेतुं भया बद्धं शिलाभिर्लवणार्णवे । एतच्च दृश्यते तीर्थं सेतुबंधमिति स्मृतम् ॥४६॥  
इन्द्रुक्त्वा ऋघुवीरस्तु राक्षसेन्द्रस्य वाक्यतः । पुष्पकाढ्विं चोचीर्य धृत्वा कोदंडमुत्तमम् ॥४७॥  
वर्भज सेतुं तत्कोद्या धनुकोटिरितीर्थते । अतएव हि तत्तीर्थं स्नानान्तकैवल्यदायकम् ॥४८॥  
कोदंडपाणिनर्माड्जसीद्राममूर्तिश्च तत्र हि । एतस्मिन्नंतरे तत्र संपातिः स यथौ तदा ॥४९॥  
तमालिंग्य रामचंद्रस्तं प्राह स्मितपूर्वकम् । वंधोर्नाम्नाऽत्र तीर्थं त्वं कुरु सेतौ महत्तमम् ॥५०॥  
तथेति रामवचनाङ्गातुः संतोषकाम्यया । तीर्थं चकार सम्पातिर्जटायुमिति विश्रुतम् ॥५१॥  
ततो रामाज्ञया यानं संपातिशारुगोह सः । ततो यानेन तां सीतां दर्शयन् कौतुकानि हि ॥५२॥  
यथौ गमेश्वरं पूज्य तथा श्रीरघुनन्दनः । सीतेऽत्र पश्य मंत्रार्थमेकांते संस्थितं पुरा ॥५३॥  
अत्र दर्भेषु शयनं कृतं पश्य विदेहजे । नवग्रहार्थं प्रक्षिप्तान्पायाणान्पश्य सागरे ॥५४॥  
तृष्णीमेव स्थितं पश्य सागरं भम वाक्यतः । एवं तां दर्शयन् रामः किञ्चिधां प्रययौ भणात् ॥५५॥  
वानराणां त्रियः सर्वा विमाने स्थाप्य राघवः । यथौ तां दर्शयन् सीतां कौतुकानि समन्ततः ॥५६॥  
प्रवर्षणगिरिं पश्य ऋग्यमूर्काचलं तथा । पंपासरोवरं पश्य कृष्णां भीमरथीं शुभाम् ॥५७॥  
पश्य पंचवटीं रम्यां गोदातीरविराजिताम् । अगस्तेराश्रमं पश्य सुतीक्ष्णस्याश्रमं तथा ॥५८॥  
पश्यात्रेराश्रमं सीते चित्रकूटं समीक्षये । कालिंदीं जाह्नवीं पश्य भारद्वाजाश्रमं तथा ॥५९॥  
इत्युक्त्वा जानकीं रामो भारद्वाजार्थितस्तदा । तस्थौ तस्याश्रमे यानादवरुण्य यथासुखम् ॥६०॥

शून्य सब आढ़ भी तुम्हींको प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इस तरह बहुतेरे वर देकर राम त्रिजटा, सरमा, विभीषण, सुग्रीव, मकरञ्चज तथा वानरोंके साथ आकाशमार्गसे सीतामांसे मार्गके कौतुक दिखाते हुए चल दिये । राहमें राम बोले—हे सीते । इस लंका नगरीको तथा इस सुन्दर रणभूमिको देखो ॥ ४३-४५ ॥ यह क्षारसमुद्रमें मेरा बाँधा हुआ शिलाओंका विशाल सेतु है । यह सामने सेतुबन्ध नामका प्रसिद्ध तीर्थ दिखाई दे रहा है ॥ ४६ ॥ इतना कहनेके बाद रामचन्द्रजी राक्षसेन्द्र विभीषणके कथनानुसार विमानसे नीचे उतरे और अपना उत्तम धनुष लेकर उसकी नीकसे सेतुको तोड़ दिया । वहाँपर स्नान करनेसे मोक्षपद देनेवाला धनुषकोटि नामका तीर्थ बन गया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ दण्डपाणि नामकी रामकी मूर्ति भी वहाँ स्थापित हो गयी । इतनेमें वहाँ संपाती आ पहुँचा ॥ ४९ ॥ रामने उसका आलिंगन करके प्रसन्न मनसे कहा कि तुम यहाँ सेतुपर अपने भाईके नामका एक महान् तीर्थ स्थापित करो ॥ ५० ॥ 'तथास्तु' कहकर रामकी आज्ञाके अनुसार संपातीने अपने भाईकी आत्माको संतुष्ट करनेकी हच्छासे वहाँ 'जटायु' नामका प्रसिद्ध तीर्थ बनाया ॥ ५१ ॥ बादमें रामकी आज्ञासे संपातीको भी पुष्पक विमानपर चढ़ा लिया गया । श्रीरघुनन्दन राम सीताके साथ रामेश्वरकी पूजा करके विमानपर सवार होकर सीताको सब दृश्य दिखाते हुए बोले—देखो सीते ! इस एकान्त जगहपर मैं मंत्रणा करनेके लिए बैठता था ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे विदेहजे । इन कुशाओंपर मैं सोता था । देखो, ये नो पाण्डा मैंने समुद्रमें नवग्रहोंकी पूजाके लिए डाले थे ॥ ५४ ॥ देखो, मेरे कहनेसे यह समुद्र अब भी चुप है । इस प्रकार वर्णन करते हुए रघुनन्दन राम क्षणभरमें किञ्चिक्वा आ पहुँचे ॥ ५५ ॥ वहाँसे सुग्रीव आदि वानरोंकी स्त्रियोंको विमानपर बैठाकर पुनः सब स्थल सीताको दिखाते हुए बै आगे बढ़े ॥ ५६ ॥ रामने सीतासे कहा—देखो यह प्रवर्षण गिरि है, यह ऋग्यमूर्क पर्वत है, यह पंपासरोवर है, यह पवित्र कृष्णा तथा भीमरथी नहीं है ॥ ५७ ॥ गोदावरीके तटपर विराजमान यह रमणीक पंचवटी है । उधर अगस्त्य तथा सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमको देखो ॥ ५८ ॥ हे सीते ! अत्रि मुनिके इस आश्रमको तथा चित्रकूट पर्वतकी शोभाको देखो । यमुना, गंगा तथा भारद्वाज ऋषिके आश्रमको देखो ॥ ५९ ॥ जानकीसे यह कहकर राम विमानसे नीचे उतरे और भारद्वाज ऋषिके प्रार्थना करनेपर उनके आश्रममें सुखसे

माघशुक्लचतुर्थ्या हि पूर्णे वर्षे चतुर्दशे । भारद्वाजोऽपि तपसा स्वर्गं निर्माय भूतले ॥६१॥  
 पूजयामास श्रीरामं सीतावानरसंयुतम् । रामोऽपि हृदि संमन्त्र्य मारुतिं वाक्यमब्रवीत् ॥६२॥  
 अयोध्यां गच्छ भरतं मदृतं कथयस्व तम् । सखायं शृङ्गवेरे मे वृत्तं कथय केवटम् ॥६३॥  
 तथेति गुहकं गत्वा कपिवृत्तं न्यवेदयत् । गुहकोऽपि मुदा युक्तस्तदा रामांतिकं ययौ ॥६४॥  
 ततोऽयोध्यां ययौ वेगान्मारुतिः स विहायसा नंदिग्रामेऽपि भरतः पूर्णे वर्षे चतुर्दशे ॥६५॥  
 नागते राघवे वह्नि सम्भ्रदोऽभूतप्रवेशितुम् । शत्रुघ्नं भरतः प्राह रावणेन रणांगणे ॥६६॥  
 श्रीरामलक्ष्मणौ वीरौ हतौ मन्येऽद्य नागतौ । आकारिता मया सर्वं नृपा एते घलैर्युताः ॥६७॥  
 लंकां गत्वा राघवस्य साहाय्यं कर्तुमिच्छता । सोऽहमग्निं विशास्यद्य रवावस्ताचलं गते ॥६८॥  
 त्वं गच्छ पार्थिवैलंकां हत्वा युद्धे दशाननम् । मोचयित्वा जनकजां ततो नः पारलौकिकम् ॥६९॥  
 रामादीनां त्रिवृत्तानां कर्तुमर्हसि सादरम् । हति तद्वाक्यमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृपाः ॥७०॥  
 शत्रुघ्नो मातरः सर्वा उर्मिलाद्याः स्त्रियश्च ताः । सुमंत्राद्या मंत्रिणश्च पौरनार्यश्च सेवकाः ॥७१॥  
 भरतं वेष्टयामासुः खेदाद्विहृलमानमाः । भरतः सात्वयन् सर्वान्ययौ तां सरयूं नदीम् ॥७२॥  
 चितां कृत्वा ततः स्नात्वा ददौ दानान्यनेकशः । सप्त प्रदक्षिणाः कृत्वा वह्नि ध्यात्वा रघूत्तमम् ॥७३॥  
 सीतां तां लक्ष्मणं वीरं नत्वा मातृगुरुं मुनीन् । आराध्यदेवतां ध्यात्वा ह्यत्तराभिमुखः स्थितः ॥७४॥  
 त्र्यो न्यस्तेक्षणः सायं प्रतीक्षन् संस्थितः क्षणम् । महान्कोलाहलश्रामीन्ददा स्त्रीपुरुषैः कृतः ॥७५॥  
 एतस्मिन्नंतरे खस्थस्तं दृष्ट्वा वायुनंदनः । प्रवेष्टुमुद्यतं वेगाद्वरं गद्वदस्वनः ॥७६॥  
 अत्र वीन्मधुरं वाक्यं सुधया सेचयन्निव । मा विशस्तानलं वीर राघवोऽद्य समागतः ॥७७॥

उहर गये ॥ ६० ॥ उस रोज चौदहवें वर्षको माघ शुक्ल चतुर्दशी थी । भारद्वाजने अपने तपोबलसे पृथ्वीपर ही स्वर्गकी रचना कर दी ॥ ६१ ॥ समस्त स्वर्गीपि पदार्थोंसे उन्होंने सीता तथा वानरों समेत श्रीरामका भली भाँति पूजन तथा सत्कार किया । तदनन्तर रामने विचार करके मारुतिसे कहा—॥ ६२ ॥ अयोध्या ज कर भरतको तथा अंगवेरपुर जाकर मेरे प्रिय मित्र निषादराजको मेरा सब समाचार सुना दो ॥ ६३ ॥ ‘बहुत अच्छा’ कहकर हनुमानन् निषादराजके पास जाकर सब वृत्तान्त निवेदन कर दिया । वह प्रसन्न होकर रामके पास गया ॥ ६४ ॥ वहाँसे मारुति आकाशमार्गसे शोध अयोध्या गये । वहाँ जाकर देखा कि नंदीगाँव-में भरत चौदह वर्ष बोत जानेपर भी रामके न लीटनेके कारण अग्नि जलाकर उसमें प्रवेश करनेकी तयारी करके शत्रुघ्नसे कह रहे थे—मेरो समझमें तो ऐसा आ रहा है कि रावणने युद्धमें राम-लक्ष्मणको मार डाला है । इसी कारण वे अद्यतक नहीं लौटे । इसीलिए मैंने सब राजाओंको अपनी-अपनी सेनाके सहित बुलवा भेजा है कि वे सब लंका जाकर रामकी सहायता करें । मैं तो आज सूर्यास्तके समय अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा ॥ ६५-६६ ॥ परन्तु तुम राजाओंके साथ लंका जा तथा युद्धमें रावणको मारकर जनकनन्दिनीको सुडा लाना । पश्चात् राम आदि हम तीनों भाइयोंका तुम आदरपूर्वक पारलौकिकी किया करना । भरतकी वह बात सुनकर देशके और नगरके लोग, राजालोग, शत्रुघ्न, सब माताएँ, उर्मिला आदि समस्त स्त्रियाँ, सूमत्र आदि मंत्रिगण, पुरकी स्त्रियें तथा सेवकवर्गने आकर चारों ओरसे भरतको घेर लिया और दुःखी होकर लूटन करने लगे । तब भरत सबको समझा-बुझाकर सरयू नदीके किनारे गये ॥ ६६-७२ ॥ वहाँ जा तथा हनान करके चिता रचवायी और अनेक दान दिये । पश्चात् अग्निकी सात प्रदक्षिणा करके उन्होंने रघूतम रामका ध्यान किया ॥ ७३ ॥ तदनन्तर सीता तथा वीर लक्ष्मणको नमस्कार करके माताओं, गुरुजनों तथा दुनियोंको प्रणाम किया और आराध्य देवताका स्मरण करके उत्तराभिमुख होकर खड़े हो गये ॥ ७४ ॥ भरत कुर्वन्द दृष्टि गढ़ाये हुए सूर्यास्तकी प्रतीक्षा करने लगे । उस समय सभी स्त्री-पुरुषोंमें महान् हाहाकार भव कमा ॥ ७५ ॥ तभी वायुनन्दन हनुमानने आकर अग्निप्रवेश करनेकी उद्युक्त भरतसे शांतिपूर्ण गद्वदस्वर होकर कम्भुनके तुल्य यह मधुर वचन कहा—हे वीर ! अग्निमें प्रवेश मत करिए । श्रीराम सीता तथा लक्ष्मणके साथ

सीतया लक्ष्मणेनापि भारद्वाजाश्रमं प्रति । बानरैः सहितं रामं श्वस्त्वं पश्यसि निश्चयात् । ७८॥  
 रामोऽप्युत्कंठितस्त्वां हि द्रष्टुमस्ति जटाधर । इति तद्वाक्सुधावृष्टिसेचितो भरतो मुदा ॥७९॥  
 वहाँ नत्वा परावृत्य ननाम वायुनंदनम् । भरतं मारुतिश्चापि नत्वा ऽलिङ्ग्य सविस्तरम् ॥८०॥  
 श्रावयामास श्रीरामवृत्तं संतोषकारकम् । तच्छ्रुत्वा भरतस्तुष्टः शोभयामास तां पुरीम् ॥८१॥  
 अयोध्यां तोरणाद्यैश्च पौरैः प्रत्युज्ञगाम तम् । मस्तके पादुके वद्धवा पुरस्कृत्याथ वारणम् ॥८२॥  
 माघस्य सितपञ्चम्यां प्राप्ते पञ्चदशेऽब्दके । प्रभाते भरतो याम्ये ददर्श पुष्पकं खगम् ॥८३॥  
 ननाम राघवं दृष्ट्वा साईंगं भरतस्तदा । रामोऽप्यालिङ्ग्य भरतं कृत्वा रूपाण्यनेकशः ॥८४॥  
 एककाले जनान् सर्वान्पृथक् स परिप्रस्वजे । आदौ पश्चात्र रामेण कृतमालिङ्गन तदा ॥८५॥  
 रामान् दृष्ट्वा ह्यसंख्यानान् जनाश्चासन्सुविस्मिताः । समाश्चास्याथ भरतं राघवः साश्रलोचनः ॥८६॥  
 ननाम गिरसा मातृभिष्टुं चाप्यरुचतीम् । ततो वाद्यनर्तनाद्यैर्नन्दिग्रामं ययौ शूनैः ॥८७॥  
 श्मश्रुकर्मोद्वितं च तैलभ्यंगं तु वंभुभिः । नन्दिग्रामेऽकरोद्रामो नानामांगल्यवस्तुभिः ॥८८॥  
 नववाद्यसुधोपाश्च नेदुः सर्वत्र सुस्वराः । नायों नीराजयामास्त् रत्नदीपै रघृत्तमम् ॥८९॥  
 ततः सीता नमस्कृत्य कौसल्याद्याश्च मातरः । वसिष्ठं ब्राह्मणान्वद्वान्वंदनीयान्यथाक्रमम् ॥९०॥  
 ततः सीतां समालिङ्ग्य कौसल्याद्याश्च मातरः । स्नापयामासुर्मांगल्यद्रव्यवर्णिपुरःसरम् ॥९१॥  
 वस्त्रालंकारभूपाभिः शुशुभे जानकी तदा । भरतः पादुके ते तु राघवस्य सुपूजिते ॥९२॥  
 योजयामास रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः । ततोऽतिविनश्यात्प्राह भरतो रघुनंदनम् ॥९३॥  
 राज्यमेतन्न्यासभूतं मया निर्यापितं तत्र । कोष्ठागारं चलं कोशं कृतं दशगुणं मया ॥९४॥

आज आ गये हैं । आप बानरों समेत उन्हें कल अवश्य देखेंगे ॥ ७८-७९ ॥ हे जटाधर ! राम भी आपको देखनेके लिए बड़े ही उत्कंठित हो रहे हैं । इस प्रकार हनुमानकी वाक्यरूपिणी सुधावृष्टिसे सिचित होकर भरत सहृदय अग्निके पाससे लौट आये और वायुनन्दनको प्रणाम किया । मारुतिने भी भरतको नमस्कार तथा आलिङ्गन करके श्रीरामका संतोषकारक तथा सविस्तार सब समाचार सुना दिया । यह सुना तो भरतने प्रसन्न होकर अयोध्या नगरीको तोरण-पताका आदिसे सुसज्जितकर तथा पुरवासियोंको साथ ले और हाथीको आगे करके रामकी खड़ाऊँको मस्तकपर बाँधकर रामकी अगवानी करने गये ॥ ७९-८० ॥ पन्द्रहवें वर्षकी माघ शुक्ल पञ्चमीको प्रातःकाल चाह्य मुहूर्तमें भरतने पुष्पकविमानको आकाशमें देखा ॥ ८१ ॥ भरतने रामके दर्शन करनेके साथ ही उनको साईंग प्रणाम किया । रामने भरतको अलिङ्गन करनेके बाद एक साथ अनेक रूप धारण करके एक ही समय सब लोगोंके साथ अलग-अलग मिले । किसीके साथ आलिङ्गन आगे या पीछे नहीं होने पाया ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ वहुतसे रामोंको देखकर लोगोंको बड़ा भारी विस्मय हुआ । रामने भरतको ढाढ़स बैधाया और उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ८४ ॥ पश्चात् उन्होंने माताओंको मस्तक झुकाकर प्रणाम करके गुरुपत्नो अरुचतीको प्रणाम किया । बादमें नाच-गाना तथा बाजोंके साथ धीरे-धीरे राम नन्दीग्राममें पधारे ॥ ८५ ॥ वहाँ जाकर रामने क्षौर कराया और शरीरमें चन्दनादि सुगन्धित द्रव्य मल तथा तेल लगाकर अनेक मंगलकारी वस्तुओंमें सब बन्धुओंके साथ मंगलस्नान किया ॥ ८६ ॥ चारों तरफ नये-नये बाजोंके सुन्दर घोष होने लगे । स्त्रियें रत्नमय दीपकोंसे कौसल्यानन्दन रामकी आरती उतारने लगीं ॥ ८७ ॥ सीताने भी अपनी सासोंको, अरुचतीको, वसिष्ठको, ब्राह्मणोंको तथा और-और बन्दनीय जनोंको यथाक्रम प्रणाम किया ॥ ८८ ॥ इसके अनन्तर कौसल्या आदिने सीताको छातीसे लगाकर मांगलिक द्रव्योंसे स्तान कराया ॥ ८९ ॥ उस समय जनकनन्दिनों नये-नये अलङ्कारोंसे सजकर बड़ी सुन्दर लगने लगीं । भरतने रामको पादुकाका पूजन करके रामके पांवोंमें भक्तिपूर्वक पहिना दी । तदनन्तर अति विनीत भावसे भरत रघुनाथजीसे कहने लगे-॥ ९० ॥ ९१ ॥ हे प्रभो ! आपका धरोहरस्वरूप राज्य मैंने आजतक चलाया । हे जगन्नाय ! आपके पुण्य-प्रतापसे मैंने यहाँके कोठार, कोश तथा सेनाको बड़ाकर दसगुना कर दिया है । अब आप अपने इस नगरका, देशका तथा

त्वत्तेजसा जगन्नाथ पालयस्व पुरं स्वकम् । तथेति राघवश्चोक्त्वा भरतं सन्नयवेशयत् ॥१५॥  
 ततः स दिव्यवस्त्राणि परिधाय रघूत्तमः । सीतया रथमारुद्ध वाद्यशोषेर्जनस्वनैः ॥१६॥  
 वारांगनानृत्यगीतर्ययौ निजपुरीं प्रति । पौरनार्यश्च सौधस्था ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥१७॥  
 चकुनींराजनं मार्गे नानावलिपुरःसरम् । रामो रथात्तदोक्तीर्य सीतां संप्रेक्ष्य वै गृहम् ॥१८॥  
 पुष्पकं प्राह गच्छ त्वं कुवेरं वह सर्वदा । तथेति रामवचनाज्जगाम पुष्पकं तु तत् ॥१९॥  
 अथ रामः समामध्ये विवेश कपिभिः सह । ददौ कपिभ्यो गेहानि वस्तुं रम्याणि सादरम् ॥२०॥  
 अथ रामस्य राज्यार्थमभिषेकं गुरुस्तदा । चकार सुमुहूर्ते वै महामंगलपूर्वकम् ॥२१॥  
 हनुमत्रमुखाद्यैश्च चतुःसिंधुजलं शुभम् । समानीय नृपैः सर्वैर्महावाद्यपुरःसरम् ॥२२॥  
 छत्रं च तस्य जग्राह पृष्ठसंस्थः स लक्ष्मणः । दधार सव्यपाश्वस्थश्चामरं भरतस्तदा ॥२३॥  
 शत्रुघ्नो वामपाश्वस्थो दधार व्यजनं शुभम् । हनुमान्पादुके दिव्ये दधार पुरतः स्थितः ॥२४॥  
 वायवादिचतुष्कोणसंस्थितास्ते महौजसः । सुग्रीवाद्यास्तदा चासंश्वत्वारो राघवेक्षणाः ॥२५॥  
 सुग्रीवो जलपात्रं च वरादशं विभीषणः । दधार हस्ते तांबूलपात्रं स वालिनन्दनः ॥२६॥  
 वस्त्रकोशं जांवत्राश्च दधार वेगवत्तरः । तस्यौ सिंहासने रामः सपृष्टांकोपवर्हणः ॥२७॥  
 सौमित्रिवामपाश्वेऽथ संपातिः संस्थितोऽभवत् । वामपाश्वेऽभवत् । शत्रुघ्नवामपाश्वेऽथ संस्थितो मकरध्वजः । हनुमद्वामपाश्वेऽच गरुडः संस्थितोऽभवत् ॥२८॥  
 सुग्रावादिचतुर्णीं ते वामपाश्वेषु संस्थिताः । श्रीचित्ररथविजयसुमंत्रदारुकास्तथा ॥२९॥  
 नानाराजोपकरणधृतहस्ता महौजसः । यवुर्द्वासुराः सर्वे यक्षगंधर्वकिन्नराः ॥३०॥  
 ओषध्यः पर्वता वृक्षाः सागराश्चाथ निम्नगाः । मालाश्च कांचनीं वायुर्ददौ वासवचोदितः ॥३१॥

राज्यका पालन स्वयं करें । यह सुन और 'तथास्तु' कहकर रामने भरतको अपने पास बैठा लिया ॥६४॥ ६५॥ तदनन्तर राम और सीता दिव्य वस्त्र धारण करके रथपर सवार होकर जय-जयकार तथा वाजे गानेके साथ वारांगनाओंका नाच-गान देखते-सुनते हुए अपनी प्रिय अयोध्यापुरीको चले । नगरमें प्रवेश करनेपर नगरकी नारियोंने छतों तथा कोठोंपर चढ़कर अनेक प्रकारके पुष्पोंकी वर्षा की ॥६६॥ ६७॥ वे रास्तेमें विविध पूजाकी सामग्रीसे रामकी आरती उतारने लगीं । रामने विमानसे उतरकर सीताको महलमें भेज दिया और पुष्पक विमानसे कहा कि 'तुम कुवेरके पास जाकर सदा उन्हींकी सेवा करो ।' रामको आज्ञाको स्वीकार करके पुष्पक विमान कुवेरके पास चला गया ॥६८॥ ६९॥ अब राम सब कपियोंको साथ लेकर सभाभवनमें गये । पश्चात् कपियोंको निवास करनेके लिए उत्तम-उत्तम मकान दिये गये ॥७०॥ तदनन्तर गुह वसिष्ठने शुभ मुहूर्तमें बड़े धूम-धामसे रामका राज्याभिषेक ठाना ॥७१॥ हनुमान् आदिको भेजकर चारों समुद्रोंका शुभ जल मेंगवाया । देश-देशान्तरके राजे-महाराजे बुलाये गये । नाना प्रकारके वाजे बजे । लक्ष्मणने पीछे खड़े होकर रामके ऊपर छत्र लगाया । रामकी पादुका हाथमें लेकर हनुमान् उनके सामने खड़ हो गये । बायीं और सुन्दर पंखा लेकर शत्रुघ्न खड़े हुए और रामकी दाहिनी ओर चमर लेकर भरत खड़े हो गये ॥७२-७४॥ रामके नेत्रसद्वा प्रिय तथा ओजस्वी सुग्रीव आदि मित्र वायव्य आदि चार कोनोंमें विराजमान हो गये ॥७५॥ सुग्रीवने जलपात्र, विभीषणने सुन्दर दर्पण, वालिनन्दन अंगदने पानदान तथा वेगवान् जांववान्ने अपने हाथमें श्रीरामके वस्त्रोंकी पिटारी ले ली । तब श्रीराम आकर गद्दी-तकिया लगे हुए बहुमूल्य सिंहासनपर विराजमान हो गये । लक्ष्मणके वामभागमें संपाती, भरतके वामभागमें निषादराज, शत्रुघ्नके वामभागमें मकरध्वज तथा हनुमान्के वामभागमें गरुड़ खड़े हुए । नुग्राव आदि चारों मित्रोंके बायें चित्ररथ, विजय, सुमन्त्र तथा दारुक खड़े हुए ॥७६-७८॥ बड़े-बड़े तेजस्वी राजे हाथोंमें अनेक प्रकारकी भेटें लेकर आये । सब देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व तथा किन्नरगण वहाँ आकर उपस्थित हो

सर्वरत्नसमायुक्तं  
प्रजगुर्देवगंधवा

मणिकांचनभूषितम् । दर्दी हारं नरेन्द्राय स्वयं शक्रस्तु भक्तिः ॥११३॥  
ननृतुर्वारियोषितः । देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात खात ॥११४॥  
ततोऽकस्वं स्तुतिमहं भरतेनाभिपूजितः ॥११५॥

श्रीशिव उवाच

सुग्रीवमित्रं परमं पवित्रं सीताकलत्रं नवमेघगात्रम् ।  
कारुण्यपात्रं शतपत्रनेत्रं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११६॥  
संसारसारं निगमप्रचारं धर्मावितारं हृतभूमिभारम् ।  
सदाऽविकारं सुखसिंधुसारं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११७॥  
लक्ष्मीविलासं जगतां निवासं लंकाविनाशं भुवनप्रकाशम् ।  
भूदेववासं शरदिन्दुहासं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११८॥  
मंदारमालं वचने रसालं गुणविंशालं हृतसप्ततालम् ।  
क्रव्यादकालं सुरलोकपालं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११९॥  
वेदांतगानं सकलैः समानं हृतारिमानं त्रिदशप्रधानम् ।  
गजेन्द्रयानं विगतावसानं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२०॥  
श्यामाभिरामं नयनाभिरामं गुणाभिरामं वचनाभिरामम् ।  
विश्वप्रणामं कृतभक्तकामं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२१॥  
लीलाशरीरं रणरङ्गधीरं विश्वैकसारं रघुवंशहारम् ।  
गंभीरनादं जितसर्ववादं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२२॥  
खले कृतांतं स्वजने विनीतं सामोपगीतं मनसा ग्रतीतम् ।

गये । औषधि, पर्वत, वृक्ष, समुद्र तथा नदियाँ भी आ पहुँची । इन्द्रके द्वारा भेजे हुए वायुने आकर रामको एक सुन्दर कंचनकी माला पहनायी ॥ १११ ॥ ११२ ॥ पश्चात् स्वयं इन्द्रने भी आकर सब रत्नोंसे युक्त तथा सोनेसे सुशोभित हार राजा रामको समर्पण किया ॥ ११३ ॥ देवता और गन्धवं उनके गुण गाने लगे । सब अप्सरायें और वारीगिनायें नाचने लगीं । देवताओंके नगाड़े वजने लगे और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ११४ ॥ बादमें भरतके द्वारा पूजित होकर मैं ( शिव ) रामकी स्तुति करने लगा ॥ ११५ ॥ श्रीशिवजी बोले— सुग्रीवके मित्र, परमपादन, सीताके पति, मेघके समान श्याम शरीरवाले, करुणाके सिधु और कमलके सट्टा नेत्रोंवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ ११६ ॥ संसारसागरसे भक्तोंको पार करनेवाले, वेदोंका प्रचार करनेवाले, धर्मके साक्षात् अवतार, भूभारको हरण करनेवाले, अदिकृत स्वरूपवाले और सुखके सर्वोत्तम सागर श्रीरामचन्द्रको मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥ ११७ ॥ लक्ष्मीके साथ विलास करनेवाले, जगत्के निवासस्थान, लङ्घुका विनाश करनेवाले, भुवनोंको त्रकाणित करनेवाले, द्वाहृणोंको शरण देनेवाले और शारदीय चन्द्रमाके समान शुभ्र हास्य करनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमस्कार करता हूँ ॥ ११८ ॥ मन्दारकी माला धारण करनेवाले, रसीले वचन बोलनेवाले, गुणोंमें महान्, सात ताल वृक्षोंका भेदन करनेवाले, राक्षसोंके काल तथा देवलोकके पालक रामचन्द्रको मैं सदा नमस्कार करता हूँ । वेदान्तके गेय, सबके साथ समान बताव करनेवाले, शत्रुके मानका मर्दन करनेवाले, गजेन्द्रकी सवारी करनेवाले तथा अन्तरहित श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमस्कार करता हूँ ॥ ११९ ॥ १२० ॥ श्यामरूपसे मनोहर, नयनोंसे मनोहर, गुणोंसे मनोहर, हृदयग्राही वचन बोलनेवाले, विश्ववन्दनोंय और भक्तजनोंकी कामनाओंको पूरी करनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ ॥ १२१ ॥ लीलामात्रके लिए शरीर धारण करनेवाले, रणस्थली-में धीर, विश्वभरके एकमात्र सारभूत, रघुवंशमें श्रेष्ठ, गंभीर वाणी बोलनेवाले और समस्त वादोंको जीतनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं प्रतिक्षण प्रणाम करता हूँ ॥ १२२ ॥ दुष्टजनोंके लिए कठोर हृदयवाले, अपने भक्तोंके प्रति

रामेण गीतं वचनादतीतं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२३॥

श्रीरामचन्द्रस्य वगष्टकं त्वा मयेरितं देवि मनोहर वे ।

पठन्ति भृण्वन्ति गृणति भक्त्या ते स्वायकामान्प्रलभन्ति नित्यम् ॥१२४॥

इति स्तुत्वा रामचन्द्रं सभायां संस्थितस्त्वद्दम् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र राजा दशरथो महान् ॥१२५॥

दृष्टा रामं समीतं च विमानस्थोऽर्कसन्निभः । स्तुत्वा रामं परात्मान राज्यस्थं वंधुवेष्टितम् ॥१२६॥

उवाच रामं संतुष्टः सुरानीकविराजितः ।

दशरथ उवाच

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं धन्यौ तौ पितरौ मम ॥१२७॥

धन्यो देशः कुलं धन्यं यस्त्वां राज्याभियेचितम् । पश्याम्यद्य महावाहो धन्या सा जननी तत्र ॥१२८॥

या कौसल्या समुत्साहं नेत्राभ्यां तेऽय पद्यति । इत्युक्तवन्तं राजानं नमाम स रघूत्तमः ॥१२९॥

कौसल्याद्या राजदाराः सर्वे ते पौरवासिनः । लक्ष्मणो भरतश्च शत्रुघ्नस्तेऽय मंत्रिणः ॥१३०॥

नमस्कारान्वृपं चक्रुर्विमानस्थं मुदान्विताः । तान् राजाऽपि पृथक् पृष्ठा सर्वेऽदेवगण्युर्युतः ॥१३१॥

पूजितो रामचन्द्रेण मया सह न्यवर्तत । ययुः स्वं स्वं पदं सर्वे मया राजा सुरास्तदा ॥१३२॥

रामेऽभियिक्ते राजेन्द्र सर्वलोकसुखावहे । वसुधा सस्यसंपन्ना फलवंतो महीरुहाः ॥१३३॥

गधहीनानि पुष्पाणि गंधवन्ति चकाशिरे । सहस्रं शतमश्चानां धेनूनां रघुनंदनः ॥१३४॥

ददौ शतं वृषाणां च द्विजेभ्यो वसु कोटिशः । सूर्यकांतिसमप्रख्यां सर्वरत्नमर्यां स्त्रजम् ॥१३५॥

सुग्रीवाय ददौ प्रीत्या राघवो हर्षसयुतः । अवतंसं ददौ श्रेष्ठ राक्षसेन्द्राय राघवः ॥१३६॥

अंगदाय ददौ दिव्ये राघवो वाहुभूपणे । चंद्रकोटिप्रतीकाशं मणिरत्नविभृपितम् ॥१३७॥

सीताये प्रददौ हारं प्रीत्या रघुकुलोत्तमः । सा तं हारं ददौ वायुपुत्राय सा मनस्विनी ॥१३८॥

विनम्रभाववाले, सामवेद जिनका गुण-गान करता है, मनमात्रके विषय, प्रेमसे गान करने योग्य तथा वचनोंसे ग्रहण करने लायक श्रीरामचन्द्रको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ ॥१२३॥ हे देवि ! तुम्हारे प्रति कहे हुए श्रीरामके इस सुन्दर अष्टकभा जो मनुष्य भक्तिसे पढ़ेगा अथवा सुने-सुनायेगा, वह अपनी अभिलाषित कामनाओंको नित्य प्राप्त करेगा ॥१२४॥ रामचन्द्रकी इतनी स्तुति करके ज्यों ही मैं उस सभामें बैठा, ज्यों ही सूर्यके समान तेजस्वी राजा दशरथ विमानपर सवार होकर सुरसमुदायके साथ वहाँ आकर संताके सहित बन्धुओंसे बेष्टित तथा राजगदीपर स्थित पुत्रस्वरूप राम परमात्माको देखकर स्तुति करने लगे ॥१२५॥१२६॥ देवताओंके समूहसे परिवेष्टित राजा दशरथ प्रसन्न होकर बोले । उन्होंने कहा—मैं धन्य हूँ, मैं कृतकृत्य हूँ, मेरे माता-पिता धन्य हैं ॥१२७॥ मेरा देश तथा कुल भी धन्य है कि जो मैं आज तुम्हें राजगदीपर अभियित्वित देख रहा हूँ । हे महावाहो ! तुम्हारी माता कौसल्या भी धन्य हैं, जो तुम्हें उत्साहपूर्वक अपने नेत्रोंसे देख रही हैं । तदनन्तर रामने उन राजा दशरथको प्रणाम किया ॥१२८॥१२९॥ तब कौसल्या आदि राजाकी स्त्रियोंने, पुरवासियोंने, भरत-शत्रुघ्नने तथा मन्त्रियोंने प्रमुदित होकर विमनमें स्थित राजा दशरथको प्रणाम किया । राजाने भी एक-एक करके उन सबसे कुशल पूछा । फिर देवताओं तथा मुझे साथ ले और रामचन्द्रसे पूजित होकर उन्होंने वहाँसे प्रस्थान कर दिया । मेरे तथा राजाके सहित वे सब देवता अपने-अपने वाम सिधारे ॥१३०-१३२॥ सब लोगोंको सुख देनेवाले राजाओंमें श्रेष्ठ राजा रामका अभिषेक हो जानेपर पृथक् धन-धान्यपूर्ण हो गयी और नहीं फलनेवाले भी वृक्ष फलने लगे ॥१३३॥ सुगन्धरहित पुष्प भी सुगंधित होकर सुगोभित होने लगे । रघुनन्दन रामने संकड़ों बैल, हजारों घोड़े तथा करोड़ों रत्न ब्राह्मणोंको दान दिये । उन रामने प्रसन्न होकर सूर्यके समान चमकनेवाली तथा अनेक प्रकारके रत्नोंसे निर्मित एक माला प्रतिपूर्वक सुग्रीवको दी और एक सिरपेंच राक्षसेन्द्र विभीषणको दिया ॥१३४-१३६॥ उन्होंने अंगदको दिव्य बाजूबन्द दिये । रघुकुलमणि रामने सीताको करोड़ों चन्द्रमाके समान चमकीले मणियों तथा

तेन हारेण शुशुभे मारुतिगौरवेण च । तदा दृष्टा हनूमन्तं रामो वचनमब्रवीत् ॥१३९॥  
 मारुते त्वां प्रसन्नोऽस्मि वर वरय कांक्षितम् । हनूमानपि तं प्राह नत्वा रामं प्रहृष्टधीः ॥१४०॥  
 त्वन्नाम स्मरतो राम मनस्तुप्यति नो मम । अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन्स्थास्यामि भूतले ॥१४१॥  
 यत्र यत्र कथा लोके प्रचरिष्यति ते शुभा । तत्र तत्र गतिमेऽस्तु अवणाथं सदैव हि ॥१४२॥  
 देवालयान्नदीतीरातीर्थाद्वापि जलाशयात् । विनाऽन्यत्र स्थले तेस्तु कथा पड़घटिकोर्ध्वतः ॥१४३॥  
 रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम् । कल्पांते मम सायुज्यं प्राप्त्यसे नात्र संशयः ॥१४५॥  
 तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते । स्थितं त्वामनुयास्यंति भोगाः सर्वे ममाज्ञया ॥१४६॥  
 ग्रामारामपत्तनेषु व्रजखेटकसञ्चासु । वनदुर्गपर्वतेषु सर्वदेवालयेषु च ॥१४७॥  
 नदीषु क्षेत्रतीर्थेषु जलाशयपुरेषु च । वाटिकोपवनाश्वस्थवटबृंदावनादिषु ॥१४८॥  
 त्वन्मूर्तिं पूजयिष्यन्ति मायया विघ्नशान्तये । भूतप्रेतपिशाचाद्या नश्यन्ति स्मरणात्तव ॥१४९॥  
 ये चान्ये वानराद्याश्च ह्ययोध्यां समुपागताः । अमूल्याभरणैर्वस्त्रैः पूजिता राघवेण ते ॥१५०॥  
 सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे वानराः सविभीषणाः ।

मकरध्वजसंपातिगुहकाः पायिवादयः । यथाहैं पूजितास्तेन रामेण वसनादिभिः ॥१५१॥  
 ततः सर्वेभोजनाथं राघवः संस्थितोऽभवत् । रामेण प्राणाहुतयो गृहीताश्वेति मारुतिः ॥१५२॥  
 निरीक्ष्योहीय वेगेन रामाग्रे भोजनस्य च । त्रिपदायां स्थितं पात्रं हैमं पक्वान्नपूरितम् ॥१५३॥  
 निनाय वामहस्तेन धृत्वा च विहसन्मुदा । स्वयं भुक्त्वा रामशेषं प्राक्षिपद्वानरानपि ॥१५४॥

रत्नोंसे विभूषित हार सप्रेम समर्पण किया । मनस्त्वनी सीताने भी रामका दिवा हुआ वह हार वायुपुत्र हनुमानको दे दिया ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ उस हारके गीरवसे हनुमान् बड़े ही सुशोभित होने लगे । यह देखकर रामने हनुमानसे कहा - ॥ १३९ ॥ हे मारुते ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ । जो चाहो सो वर माँगो । तब प्रसन्न हनुमानने रामको नमस्कार करके कहा - ॥ १४० ॥ हे प्रभो ! आपके नामस्मरणसे मेरा मन अब भी तृप्त नहीं हुआ है । अतएव जबतक आपका नाम भूतलमें विद्यमान रहे, तबतक मैं आपके नामका स्मरण करता हुआ इस लोकमें जोवित रहूँ । हे राजेन्द्र ! यही मेरा अभिलिष्ट वर आप मुझे दे दें ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ लोकमें जहाँ कहीं भी आपकी पवित्र कथा होती हो, वही वह कथा सुननेके लिये जानेमें मेरी अप्रतिहत गति हो ॥ १४३ ॥ देवालय, नदीतीर, तीर्थस्थान तथा वावली आदि जलाशयको छोड़कर अन्य स्थानोंमें छः घड़ीके बाद नित्य आपकी कथा हुआ करे ॥ १४४ ॥ रामने कहा—अच्छा, तुम मुक्त होकर सुखसे भूमण्डलपर निवास करो । कल्पान्तके समय तुम मेरी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होओगे, इसमें संदेह नहीं है ॥ १४५ ॥ इसके पश्चात् जानकीजी प्रसन्न होकर बोली—हे मारुते ! तुम जहाँ कहीं रहोगे, वहींपर मेरे आशीर्वादसे तुमको सब भोग्य पदार्थं प्राप्त हो जाया करेंगे ॥ १४६ ॥ ग्राम, बाग, नगर, गोशाला, रास्ता, छोटा गाँव, घर, बन, जिला, पर्वत, सब देवालय, नदी, तीर्थक्षेत्र, जलाशय, पुर, वाटिका, उपवन, पीपल, वट तथा वृन्दावन आदि स्थानोंमें मनुष्य अपने विघ्नोंको शान्त करनेके लिये तुम्हारी मूर्तिकी पूजा करेंगे । तुम्हारा नाम स्मरण करनेसे ही भूत-प्रेत तथा पिशाच आदि दूर भाग जायेंगे ॥ १४७-१४९ ॥ इसके बाद रामने अयोध्यामें जो अन्य वानर आये थे, उन सबका भी बहुमूल्य भूषण तथा वस्त्रोंसे सत्कार किया ॥ १५० ॥ श्रीरामने दस्त्रादिसे सुग्रीव आदि वानरों, विभीषण, मकरध्वज, संपाती तथा निषादराज आदि राजाओंकी भी यथायोग्य पूजा की ॥ १५१ ॥ उसके पश्चात् सबको साथ लेकर रामचन्द्रजी भोजन करने वैठे । रामके पाँच ग्रास ग्रहण करके तृप्त हो जानेके साथ ही हनुमान् झटउठकर रामके पास आ पहुँचे और उनके सामने पीड़ेपर रखखा हुआ पक्वानोंसे परिपूर्ण सुवर्णका थाल बाएँ हाथसे उठाकर आकाशमें चले गये और रामके उस भोजनशेषका स्वयं आनन्दसे

तदा विभीषणाद्याश्च स्वीयपात्राणि वेगतः । विसृज्य मारुतिं स्तुत्वा त्वया मम्यकृतं त्विति ॥१५६॥  
 तत्क्षसं राघवोच्छिष्टं बुभुजुः संभ्रमान्विताः । महान् कोलाहलश्चामीद्रामोच्छिष्टार्थमादगत ॥१५७॥  
 सीतारामौ तन्निरीक्ष्य मुदा जहसतुस्तदा । एवं नानाकौतुकानि कुर्वन्तौ राघवांतिके ॥१५८॥  
 सुग्रीवाद्याः सुखं तस्युस्तोषयंतः कियहिनम् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पुष्पकं चागमन्पुनः ॥१५९॥  
 प्राह देव कुवेरेण प्रेषितं त्वामहं पुनः । मामाह यत्कुवेरस्तच्छृणुष्व त्वं रघूतम् ॥१६०॥  
 जितस्त्वं राघणेनादौ पश्चाद्रामेण निजितः । अतस्त्वं राघवं नित्यं वह यावद्वसेऽद्भुवि ॥१६१॥  
 यदा गच्छेदधुशेषो वैकुण्ठं याहि मा तदा । तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह सुग्रीवादीन्यथास्थले ॥१६२॥  
 स्थाप्य शीघ्रमयोध्यायां राजद्वाराद्विर्वस । तथेति रामवचनाद्वानराद्यान्यथास्थले ॥१६३॥  
 स्थाप्य शीघ्रमयोध्यायां राजद्वाराद्विः स्थितम् । चकार राज्यं धर्मेण लङ्घायां स विभीषणः ॥१६४॥  
 शशास राज्यं पाताले धर्मेण मकरध्वजः । चकार तार्क्ष्यः संपातिं यौवराज्यपदे निजे ॥१६५॥  
 शशास राज्यं कपिभिः किञ्जिन्धायां कर्पीश्वरः । शृङ्खवेरपुरे राज्यं गुहकश्चाकरोन्मुदा ॥१६५॥  
 नत्वा रामं वायुपुत्रो ययौ तप्तुं द्विमालयम् । सर्वे विभीषणाद्याश्च पंचमे सप्तमेऽद्वन्नि ॥१६६॥  
 दर्शनार्थं राघवस्य साकेतं प्रययुः सदा । पञ्च सप्त दिनान्यत्र स्थित्वा श्रीराघवांतिकम् ॥१६७॥  
 यातायातं सदा चक्रः स्वस्वराज्याद्रघूतम् । रामोऽपि राज्यमखिल शशासाखिलवत्सलः ॥१६८॥  
 अनिच्छत्वं हि सौमित्रिं यौवराज्येऽभ्ययेचपत । लक्ष्मणः परया भक्त्या रामसेवापरोऽभवत् ॥१६९॥  
 विश्वामित्राध्वरे पूर्वं रणयागस्य पूर्णता ।

न कृता या राघवेण सा कृता स्वपदे तदा । रणयागः सविस्ताराद्वृण्यते शृणु पार्वति ॥१७०॥

खाने तथा नीचे बानरोंके आगे फेंकने लगे ॥ १५२-१५४ ॥ यह देखकर विभीषण आदि भक्त भी शीघ्र अपने-अपने थालोंको छोड़कर हनुमानकी प्रशंसा करके कहने लगे कि तुमने बहुत उत्तम काम किया ॥ १५५ ॥ यह कहकर वे स्वयं भी बड़े आदरसे मारुतिका फेंका हुआ रामका उच्छिष्ट प्रसाद पाने लगे । उस समय रामकी जूठनके लिये बड़ा भारी कोलाहल मच गया ॥ १५६ ॥ राम और सीताने यह देखा तो प्रसन्न होकर हँसने लगे । इस प्रकार विविध क्रीडायें करके सीता और रामको प्रसन्न करते हुए सुग्रीव आदि मित्र कुछ दिन वहाँ रहे । इतनेमें पुष्पक विमान पुनः वहाँ आया ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ वह रामसे कहने लगा—हे देव ! कुबेरने मुझको आपके पास वापस भेज दिया है । हे रघुनन्दन ! कुबेरने जो कुछ मुझसे कहा है, वह सुनिये ॥ १५९ ॥ उन्होंने कहा है कि पहले तो रावणने तुमको मुझसे जीता था और बादमें रामने तुमको रावणसे जीता है । इस कारण तुम जाकर तबतक राम ही को सवारी देनेका काम करो, जबतक कि भूमण्डलमें रहें ॥ १६० ॥ जब रघुश्चेष्ट राम वैकुण्ठ धाम चले जायें, तब तुम मेरे पास चले आना । यह सुनकर रामने विमानको आज्ञा दी कि सुग्रीव आदि मेरे मित्रोंको उनके स्थानपर पहुँचाकर शीघ्र ही अयोध्या लौट आओ और राजमहलके दरवाजेके बाहर खड़े रहो । तदनन्तर विभीषण जाकर लङ्घामें धर्मपूर्वक राज्य करने लगे ॥ १६१-१६३ ॥ मकरध्वज पातालमें धर्मपूर्वक राज्य-शासन करने लगे । गरुडने युवराजपदपर संपातीका अभियेक किया ॥ १६४ ॥ किञ्जिन्धामें कपीश्वर सुग्रीव राज्य करने लगे । शृङ्खवेरपुरमें निषादराज आनन्दसे राज्य करने लगा ॥ १६५ ॥ वायुपुत्र हनुमान् रामको नमस्कार करके तप करनेको हिमालय चले गये । फिर भी विभीषण-सुग्रीव आदि मित्र पाँचवें अथवा सातवें दिन अयोध्यामें श्रीरामका दर्शन करनेके लिए आया करते थे और वे श्रीरामके पास पाँच-सात दिन निवास करके चले जाते थे । इस प्रकार उन लोगोंका अपने-अपने राज्यसे श्रीरामके पास आना-जाना लगा रहता था । सभी लोगोंके प्रिय राम भी सम्पूर्ण राज्यका पालन करने लगे ॥ १६६-१६८ ॥ न चाहनेपर भी रामने लक्ष्मणका युवराजके पदपर अभियेक कर दिया और वे भी रामको सेवामें तत्पर हो गये ॥ १६९ ॥ रामने पूर्वं समयमें विश्वामित्रके यज्ञके समय जिस युद्धल्पी यज्ञकी समाप्ति नहीं की थी, उस रणयज्ञकी इस समय अपने राज्यपदपर स्थित हो जानेपर पूर्णहृति की । हे पार्वती !

रणांगणं यज्ञकुण्डं तत्र वै ह्यपलायनम् । तत्त्वं येदविधानं हि ब्रह्मस्त्रं प्रकीर्तिंतम् ॥१७१॥  
 कर्मणश्च घटाटोपो ज्ञेयः शस्त्रखणस्वनः । संमार्जनं स्वक्षुबयोर्जेयं पापाणवर्णणम् ॥१७२॥  
 शस्त्राणां मलशोधार्थं क्रियते यद्रणांगणे । भूमौ शराणां विस्तारः परिस्तरणमुत्तमम् ॥१७३॥  
 परिसमूहनं धैर्यं वहिकालानलो महान् । सुवेण वाणरूपेण मांसाहुतिसमर्पणम् ॥१७४॥  
 रक्तधारा वसोधारा हाहाकारो भयानकः । स अङ्गकारवपट्कारघोपो ज्ञेयो रणाध्वरे ॥१७५॥  
 अग्रेज्वाला शस्त्रतेजोधूम्रः स्वेदस्त्रुत्रो रणे । ज्वालानिचयशांत्यर्थं पृष्ठदाज्यस्य सेचनम् ॥१७६॥  
 यत्तदत्र तु वीराणामस्त्रपोचनमुत्तमम् । ज्ञानेन सह जीवस्य बलिदीपबलिः स्मृतः ॥१७७॥  
 ये देहलोभिनो जीवा बलिदीपहराः स्मृताः रामहस्तान्मृतिं त्यक्त्वा ये कुर्वन्ति पलायनम् ॥१७८॥  
 देहवन्धानं मुक्तास्ते बलिभक्षणदोषतः । पूर्णाहुतिः शिरोभिर्हिं ज्ञेयास्त्र प्रदक्षिणाः ॥१७९॥  
 उच्चाटनं हि सव्येन वीराणां जयहेतवे । नैजं पदप्रदानं च ज्ञेया सा दक्षिणाऽध्वरे ॥१८०॥  
 सुरैर्या पुष्पवृष्टिस्तज्जेयं विप्राभिषेचनम् । जयसम्पादनं युद्धे श्रेयः संपादनं हि तत् ॥१८१॥  
 चराचराणामानन्दो ज्ञेयः स निजगोत्रिणाम् । भूतानां तर्पणं विप्रभोजनं सम्प्रकीर्तिंतम् ॥१८२॥  
 एवं सुवाहुना युद्धे राघवस्य रणाध्वरः । तथा गाधिजयज्ञेऽपि द्वौ तौ ज्ञेयौ सहैव हि ॥१८३॥  
 कृताऽध्वरसमाप्तिस्तु विश्वामित्रेण वै पुरा । विसर्जितो न रामेण दृष्टाऽत्रुम् रणाध्वरे ॥१८४॥  
 कालानलं पुनस्तम्य तृप्त्यर्थं वाऽकरोन्मतिम् । कृत्वा भूमेर्महत्पात्रं विराघरुधिरेण हि ॥१८५॥  
 पात्रस्य प्रोक्षणं कृत्वा चित्राहुत्यर्थमादरात् । रामः शूर्पणखायाश्च द्वाणं कर्णीं विभेद यत् ॥१८६॥  
 ग्राणाहुतिभ्यो रामेण त्रिशिराः खरदूषणी । मारीचश्च कवन्धश्च पंचते निहताः क्षणात् ॥१८७॥

उस रणरूपी यज्ञका मैं विस्तारसे वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ १७० ॥ उस रणयामें युद्ध कुण्ड था । उसमें से न भागना ही वेदविहित ब्रह्मसत्त्व था ॥ १७१ ॥ शस्त्रोंकी खनकार ही कर्मकी सामग्री थी । रणांगणमें शस्त्रोंका मैल छुड़ानेके लिये उनपर जो पत्वर घिसे जाते थे, वही सुक-सुवाका माजिना था । भूमिमें बाणोंको फैला-फैलाकर रखना ही उत्तम कुश आदिका आस्तरण था । वीरता ही उनका परिसमूहन ( बटोरना ) था । महान् कालरूपी अग्नि ही यज्ञकुण्डकी आग थी । उसमें वाणरूपों सुवासे मांसकी आहुतियें समर्पण की जाती थीं ॥ १७२-१७४ ॥ रुधिरकी धारा ही वसुधारा थी । भयानक हाहाकार ही ओंकार तथा वषट्कारका नाद था ॥ १७५ ॥ शस्त्रोंकी चमक ही आगकी लपटें थीं । पसीनेका बहना ही धुआँ था । वीर पुरुषोंका उत्तम अस्त्रमोचन ही अधिक ज्वालाकी शांतिका पृष्ठदाज्य सीचनारूपी उपाय था । ज्ञानपूर्वक जीवोंका शरीर-त्याग ही दीपदान था ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ जो शरीरमें ममता रखनेवाले थे, वे ही पूजाकी सामग्री तथा दीपको ले भागनेवाले माने जाते थे । जो रामके हाथसे न मरकर बहासे भाग जाते थे, वे बलिभक्षण करनेके दोषसे देहरूपी बन्धनमें ही पड़े रह जाते थे-मुक्त नहीं होते थे । उस युद्धरूपी यज्ञमें सिरोंका कट कटकर गिरना ही नारियलके द्वारा दी जानेवाली पूर्णाहुति थी । विजयलाभके लिये अपनी दाहिनी ओरसे वीरोंको दूर करना हो प्रदक्षिणा थी । उस यज्ञमें मृत पुरुषोंका विजयपद ( ब्रह्मपदकी प्राप्ति ) ही दक्षिणा थी ॥१७८-१८०॥ देवता-ओंके द्वारा जो पुष्पवृष्टि की जाती थी, वह ज्ञाहृणोंका अभिषेचन था । युद्धमें विजय प्राप्त करना ही यज्ञका कल था ॥ १८१ ॥ चर-अचरका आनन्दलाभ ही अपने गोत्रवालोंका आनन्द समझा जाता था । पशु-पक्षी आदि जावोंकी तृप्ति ही विप्रभोजन कहा जाता था ॥ १८२ ॥ इस प्रकार रामका जो सुवाहुसे युद्धरूप यज्ञ राक्ष-सोंके साथ बारम्प हुआ, वह और गाधित्रु विश्वामित्रका यज्ञ दोनों साथ ही प्रारम्भ हुए ॥ १८३ ॥ उनमें से विश्वामित्रजीने तो अपना यज्ञ समाप्त कर लिया था, परन्तु रामने अपने यज्ञमें कालानलको अतृप्त देखकर अपना युद्धयज्ञ समाप्त नहीं किया था । अतएव उसको तृप्त करनेकी इच्छा करके रामने विराघके रुधिर-से पृथ्वीरूपी पात्रका प्रोक्षण ( शुद्धि ) करके सूर्पणखाके नाक-कान काटकर प्रेमसे चित्र-विचित्र आहुतियें दीं ॥ १८४-१८६ ॥ रामने त्रिशिरा, खर, दूषण, मारीच तथा कवन्धको क्षणभरमें मारकर पंचप्राणा-

शिखाबंधविमोक्षार्थं शबरी भववंधनात् । कृता मुक्ता तु रामेण जलस्पर्शनहेतवे ॥१८८॥  
 नेत्रयोनिहतो बाली दत्तं तदुधिरं तदा । काथिलंकापुरी दग्धा कुंभकर्णस्तथौदनः । १८९॥  
 पक्कान्नमिदजिद्ज्ञेयः शाकार्थं राक्षसा हताः । वरान्नं सारणो ज्ञेयः प्रहस्तो वटकः स्मृतः ॥१९०॥  
 निकुंभः पर्षटो ज्ञेयः कुंभस्तु लवणं स्मृतः । पायसार्थं कालनेमिस्त्वतिकायः स शर्करः ॥१९१॥  
 क्षीरमैरावणो ज्ञेयो धृतं मैरावणः स्मृतः । दध्योदनः समाप्तौ तु आहवे च स रावणः ॥१९२॥  
 हत्वा निवेदितः पात्रे तस्य कालानलस्य च । उच्छिष्टवलिसंत्यागः केशत्वकीकसादिनाम् ॥१९३॥  
 संत्यागोऽत्र रणे ज्ञेयस्तदा त्रृपो बभूव सः । ततो रणाध्वरस्यात्र राघवेण विसर्जनम् ॥१९४॥  
 अयोध्यायां प्रवेशो हि कृतस्तत्त्वे वदाम्यहम् । अध्वरावभृथस्नानं ज्ञेयं राज्याभिषेचनम् ॥१९५॥  
 मंगलानि समस्तानि यज्ञांगविहितानि हि । ज्ञातव्यानीति रामेण रणयागो विसर्जितः ॥१९६॥  
 एवं प्रोक्तो मया देवि रणयागः सविस्तरः । रामोऽथ परमात्मापि कार्याद्यक्षोऽतिनिर्मलः ॥१९७॥  
 कर्तृत्वादिविहीनोऽपि निविंकारोऽपि सर्वदा । स्वानन्देनापि संतुष्टो लोकानामुपदेशकृत् ॥१९८॥  
 चकार विविधान् धर्मान् गार्हस्थ्यमनुलंब्य च । न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ॥१९९॥  
 न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति । औरसानिव रामोऽपि जुगोप पितृवत् प्रजाः ॥२००॥  
 सीतया बन्धुभिः सादृं साकेते सुखमाप सः । इदं युद्धचरित्रं ते प्रोक्तं देवि मया तव ॥२०१॥

इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे  
 युद्धचरिते रामराज्याभिषेकवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥



हुतियें दी ॥ १८७॥ शिखाको गाँठ खोलनेको जगह रामने शबरीको संसारबन्धनसे छुड़ाकर मुक्त कर दिया । रामने बालीको मारकर उसके रुधिररूपी जलसे नेत्रोंमें स्पर्श किया । लंकाको जलाकर कालानलके लिये दाल तथा कढी बनायी । अर्थात् लंका दाल-कढीके स्थानमें गिनी गयी । कुम्भकर्णरूपी भात, मैघनादरूपी पक्कावान और सब राक्षसोंका शाक बना । अन्य उत्तम पदार्थोंके स्थानपर सारण मारा गया । प्रहस्त बड़ा, निकुंभ पापड़, कुम्भ नमक, कालनेमि खीर, अतिकाय शबकर, ऐरावणरूपी दूधमें मैरावणरूपी धी तथा दधिभक्तके स्थानपर रावणको मारकर रामने कालानलके यालमें परोस दिया । कालानलने इन सबका भोजन करके केश, चर्म तथा अस्तियोंका जूठन रणमें छोड़ दिया । तब वह तृप्त हुआ । उसके पश्चात् रामका अयोध्यामें प्रवेश करना ही रणरूपी यज्ञकी समाप्ति अर्थात् रणयज्ञका विसर्जन हुआ । वही रामका राज्याभिषेक ही यज्ञके अन्तका अवभृतस्थान था ॥ १८८-१९५॥ अन्यान्य मांगलिक कार्य उस यज्ञके अंग थे । इस प्रकार रामने सांगोपांग रणयज्ञ पूरा किया ॥ १९६॥ हे देवि ! मैंने तुमको उपयुक्त प्रकारसे समस्त रणयाग कह सुनाया । तदनंतर साक्षात् परमात्मा, कार्यसमुदायके अविष्टाता, कर्तृत्वादि अभिमानसे रहित, सदा निर्विकार स्वरूप, निज आनन्दसे ही संतुष्ट तथा सब प्राणियोंको सदुपदेश देनेवाले गम भी गृहस्थर्थमका पालन करते हुए अनेक घर्मोंका आचरण करने लगे । उनके राज्यकालमें कोई भी स्त्री विधवा होकर रोती नहीं थी । किसीको साँप तथा व्याघ्र आदिका भय नहीं था और न किसीको रोगका ही भय था । रामने भी समस्त प्रजाको, पिता जिस प्रकार अपने सगे लड़कोंका पालन करता है, उसी प्रकार पालन किया । हे देवि ! यह मैंने तुमको रामका युद्धचरित्र कह सुनाया ॥ १९७-२०१॥ इति श्रीशत-कोटि रामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे युद्धचरित्रे रामतेजपांडेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटोकाम्या रामराज्याभिषेकवर्णनं लाभ द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

## त्रयोदशः सर्गः

( अगस्त्य-रामसंवाद )

श्रीशिव उवाच

एकदा राघवं द्रष्टुं मुनिभिः कुंभसंभवः । ययौ रामेण संमानमानितः स उपाविशत् ॥ १ ॥  
 उपविष्टाः प्रहृष्टाश्च मुनयो रामपूजिताः । संपृष्टकुशलाः सर्वे रामं कुशलमब्रवन् ॥ २ ॥  
 कुशलं ते महावाहो सर्वत्र रघुनन्दन । दिष्टथेदानीं प्रपश्यामो हतशत्रुमरिदम् ॥ ३ ॥  
 दिष्टथा त्वया हताः सर्वे मेघनादादयोऽसुराः । हत्वा रक्षोगणान्सर्वान् कृतकृत्योऽद्य जीवसि ॥ ४ ॥  
 इति तेषां वचः श्रुत्वा रामस्तान्प्राह सुस्मितः । किमर्थमादौ युध्माभिर्मेघनादोऽद्य कीर्तिः ॥ ५ ॥  
 इति रामवचः श्रुत्वाऽगस्तिस्तैरवलोकितः । कुंभयोनिस्तदा रामं प्रीत्या वचनमववीत् ॥ ६ ॥  
 शृणु राम यथा वृत्तं मेघनादस्य चेष्टितम् । जन्मकर्पवरप्राप्तिं संक्षेपाद्वदतो मम ॥ ७ ॥  
 पुरा कृतयुगे राम पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः । दृणविंदुसुतायां स पुत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ८ ॥  
 निर्ममे विश्रवा नामधेयं वेदनिधिं शुभम् । भरद्वाजसुतायां च विश्रवा निर्ममे सुतम् ॥ ९ ॥  
 श्रेष्ठं वैश्रवणं तस्मै प्रसन्नोऽभृद्विधिश्चिरात् । विधिवैश्रवणायाथ तुष्टस्तत्पसा ददौ ॥ १० ॥  
 मनोऽभिलिपितं यानं धनेशत्वमखंडितम् । पुष्पकं चाप्येकदाऽसौ द्रष्टुं विश्रवसं ययौ ॥ ११ ॥  
 पुष्पकेण धनाध्यक्षो ब्रह्मदत्तेन भास्वता । नत्वा तातं तदा प्राह न स्थानं ब्रह्मणा मम ॥ १२ ॥  
 दत्तं स्थेयं मया कुत्र तद्विचार्य वदस्व माम् । विश्रवा द्यपि तं प्राह विश्वकर्मविनिर्मिता ॥ १३ ॥  
 लंकानाम्नी पुरी श्रेष्ठा सागरेऽस्ति सुमंडिता । त्यक्त्वा विष्णुभयादैत्या विविशुस्तं रसातलम् ॥ १४ ॥  
 सुखं त्वं वस तस्यां हि तथेत्युक्त्वा धनेश्वरः । गत्वा तस्यां चिरं कालमुवास पितृसंमतः ॥ १५ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! एकदिन बहुतसे मुनियोंके साथ अगस्त्यमुनि श्रीरामका दर्शन करने आये । रामसे सम्मानित होकर वे सब बैठे ॥ १ ॥ अन्यान्य मुनि भी रामसे पूजित होकर प्रसन्नतापूर्वक बैठ गये । रामके पूछनेपर सबने अपना कुशलक्षण सुनाया ॥ २ ॥ और कहा—हे रघुनन्दन ! वडे हृषकी बात है कि शत्रुको मारकर सकुशल आपको हम लोग राज्यसिंहासनपर विराजमान देख रहे हैं । हे अरिन्दम ( शत्रुओं-को नीचा दिखलानेवाले ) ! आपने वडे भाग्यसे मेघनाद आदि सब असुरोंको मार गिराया है । उन्हें मार तथा कृतकार्य होकर आप विराजमान हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनका ऐसा वचन सुनकर राम कुछ मुसकराते हुए बोले—आप लोगोंने सब राक्षसोंमें से मेघनादका नाम पहले क्यों लिया ? रामका यह प्रश्न सुनकर वे सब मुनि अगस्त्य मुनिका मुख देखने लगे । यह देखकर अगस्त्य बहुत प्रेमपूर्वक रामसे बोले—॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राम ! मैं आपसे मेघनादका चरित्र, जन्म, कर्म तथा वरप्राप्तिका वृत्तान्त संक्षेपमें कहता हूँ, आप सुनें ॥ ७ ॥ हे राम ! सत्ययुगमें पुलस्त्य नामके ब्रह्मपुत्रने दृणविन्दुकी पुत्रीसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध वेदवेत्ता विश्रवा नामका पुत्र उत्पन्न किया । विश्रवाने भारद्वाजको पुत्रीसे वैश्रवण नामक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किया । कुछ दिनोंके बाद वैश्रवणकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माने उसको उसका मनोवान्धित पुष्पक विमान, अखंड धनेशत्व तथा कुबेरकी पदवी प्रदान की । एक दिन ब्रह्माके दिये हुए उस सुन्दर पुष्पक विमानपर सबार होकर धनाधिप कुबेर अपने पिता विश्रवाका दर्शन करने गये । वहाँ जाकर कुबेरने पिताको नमस्कार करके कहा—हे पिताजी ! ब्रह्माने मुझे निवासके लिये कोई स्थान नहीं दिया है । अतः आप विचार करके कोई भेरे रहने योग्य स्थान बताइए । विश्रवाने कहा—विश्वकर्मकी बनायी हुई एक सुन्दर और श्रेष्ठ लंका नामकी नगरी समुद्रके बीचमें विद्यमान है । विष्णुके दूरसे दैत्य लोग उसे छोड़कर पातालमें चले गये हैं ॥ ८-१४ ॥ तुम जाकर उसमें सुखपूर्वक निवास करो । ‘तथास्तु’ कहकर कुबेर पिताके कथनानुसार जाकर बहुत काल

कस्मिंश्चित्त्वथ काले हि सुमालीनाम राक्षसः । दुहित्रा व्यवचरद्धूमौ पुष्पकेतुं ददर्श सः ॥१६॥  
 हिताय चितयामास राक्षसानां महामताः । कैकसीं तनयामाह गच्छ विश्रवसं मुनिम् ॥१७॥  
 वरयस्व मुनेस्तेजःप्रतापात्ते सुताः शुभाः । भविष्यन्ति धनाध्यक्षतुल्या नो हितकारिणः ॥१८॥  
 सा संध्यायां ययौ शीघ्रं मुनेत्रे व्यवस्थिता । लिखन्ती भुवि पादांगुष्ठेन चाधोमुखी स्थिता ॥१९॥  
 तामपृच्छन्मुनिः का त्वं साऽऽह त्वं वेत्तुमर्हसि । ततो ध्यात्वा मुनिः सर्वं ज्ञात्वा तां प्रत्यभाषत ॥२०॥  
 ज्ञातं तवाभिलिपिं मत्तः पुत्रानभीष्मसि । दारुणायां तु वेलायामागताऽसि सुमध्यमे ॥२१॥  
 अतस्ते दारुणौ पुत्रौ गक्षसौ संभविष्यतः । साऽब्रवीन्मुनिशार्दूलं त्वत्तोऽप्येवंविधौ सुतौ ॥२२॥  
 तामाहान्तिमजो यस्ते भविष्यति महामतिः । ततः सा सुषुवे पुत्रान् यथाकाले सुमध्यमा ॥२३॥  
 रावणं कुम्भकर्णं च क्रौंचीं शूर्पणखां शुभाम् । कुम्भीनसीं कनीयांसं तृतीयं तं विभीषणम् ॥२४॥  
 रावणः कुम्भकर्णश्च त्रयो दुहितरस्तथा । दूर्वृत्ताः प्राणिमक्षाश्च चभृतुमुनिहिंसकाः ॥२५॥  
 एकदा रावणो मात्रा लिंगार्थं प्रेपितः शिवम् । कतुं प्रसन्नमकरोत् केलासे कर्म दुष्करम् ॥२६॥  
 किंचित्स्वीयं शिरश्चित्त्वा वीणां पड़जस्वरैमुद्दुः । कृत्वा पीठं हि देहस्य तन्मूलं शिरसस्तथा ॥२७॥  
 तदग्रं पादयोः कृत्वा शंकूनंगुलिभिस्तथा । तंत्रीः कृत्वाऽन्त्रमालाभिः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२८॥  
 एवं कृत्वा स्वदेहस्य वीणां पड़जस्वरैमुद्दुः । चकार स्वमुखेनैव गांधर्वं गायनं शुभम् ॥२९॥  
 तदा नन्दीश्वरं प्राह शंकरो लोकशंकरः । शिरः संधाय हस्तेन त्वया वाच्योऽय रावणः ॥३०॥  
 आत्मलिंगं राक्षसं त्वां शंकरो न प्रदास्यति । हृद्रतं हि मया ज्ञातं शंभोस्त्वं याहि स्वस्थलम् ॥३१॥  
 इत्युक्त्वा प्रेपणीयः स रावणः स्वस्थलं त्वया । इति शंभोर्वचः श्रुत्वा ययौ नंदी स रावणम् ॥३२॥

तक वहाँ रहे ॥ १५ ॥ पश्चात् किसी समय सुमाली राक्षसने अपनी पुत्रीको साथ लेकर पृथ्वीपर अमण करते समय पुष्पकेतुको देखा ॥ १६ ॥ तब महात्मा सुमालीने राक्षसोंका हित सोचकर अपनी लड़की केकसीसे कहा कि तुम विश्रवा मुनिके पास जाकर मुनिके तेज-प्रतापसे सुन्दर पुत्रोंको प्राप्तिके लिये वर माँगो । वे पुत्र कुवेरके समान प्रतापी तथा हमलोगोंके हितकारी होंगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदनुसार सायंकालके समय मुनिके पास जाकर पाँवके अंगूठेसे धरतीको कुरेदत्तो हुई वह नीचा मुख करके खड़ी हो गयी ॥ १९ ॥ मुनिने उससे पूछा—तुम कौन हो ? उसने कहा कि आप स्वयं इस बातको समझ सकते हैं । तब मुनिने ज्ञान करके सब कुछ जान लिया और उससे बोले—॥ २० ॥ मुझे मालूम हो गया कि मुझसे तू पुत्र पाना चाहती है, परन्तु है सुमध्यमे । तू इस भयानक समयमें यहाँ आयी है । इसलिये तुझसे दो भयानक राक्षस पुत्र उत्पन्न होंगे । तब वह मुनिशार्दूलसे बोली—हे महाराज ! क्या आपसे भी मुझे ऐसे ही पुत्र प्राप्त होंगे ? ॥ २१ ॥ २२ ॥ तब मुनि बोले—अच्छा जा, तेरा आखिरी पुत्र बड़ा बुद्धिमान् होगा । पश्चात् उस सुन्दर कमरवाली कैकसीने यायासमय तोन पुत्र उत्पन्न किये ॥ २३ ॥ रावण, कुम्भकर्ण, क्रौंची, सूर्पणखा, कुम्भीनसी और सबसे छोटा तीसरा पुत्र विभाषण उससे उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ उनमेंसे रावण, कुम्भकर्ण और तीन लड़कियें बड़ी दुराचारिणी, जावभक्षिणी तथा मुनिहिंसक हुईं ॥ २५ ॥ एक दिन रावणकी माता कैकसीने रावणको शिवजीके पास लिंग लेने भेजा । केलासपर जाकर रावणने शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये बड़ा दुष्कर काम किया ॥ २६ ॥ उसने अपने सिरका कुछ भाग काटकर बीणा बनायी । सिरसे बीणाका मूलभाग बनाकर अपनी देहसे उसका पृष्ठभाग तैयार किया । पाँवोंसे उस बीणाका अग्रभाग बनाया और अङ्गुलियोंसे बीणाकी खूँटिये तैयार कीं । अपने पेटके भीतरकी आँतोंसे संकड़ों एवं हजारों तार बनाकर अपने शरीरसे ही बीणा रची । पश्चात् षड्ध आदि स्वरोंसे रावणने अपने मुखसे ही गंधर्वके समान सुन्दर गायत आरम्भ किया ॥ २७-२९ ॥ तब लोगोंका कल्पाण करनेवाले भगवान् शंकर नन्दीश्वरसे बोले कि तुम अपने हाथसे रावणका सिर संबान करके उससे कहो कि शंकरजी तुम जैसे राक्षसको आत्मलिंग कभी न देंगे । मैं शिवजीके हृदयकी बात जानता हूँ ।

शिरः संयोज्य हस्तेन शिवोक्तं तं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा रावणश्चापि समतिकम्य तां निशाम् ॥३३॥  
 चकार पूर्ववद्ग्रानं द्वितीयदिवसे पुनः । नन्दिना शंकरश्चापि पूर्ववत्तं न्यवेदयत् ॥३४॥  
 इत्थं दश दिनान्येव गतानि रावणस्य च । अथ तत्कर्मणा तुष्टः शंकरो गायत्रेन च ॥३५॥  
 भूत्वा प्रसबस्तं प्राह वरं वरय चेति वै । दृष्टा शंभुं गायणोऽपि शिरसा तेन संधितः ॥३६॥  
 वरयामास मन्मात्रे ह्यात्मलिंगं तथा मम । पत्न्यर्थं पार्वतीं देहि तथेत्युक्त्वा ददौ शिवः ॥३७॥  
 गृहीत्वा गंतुकामं तं पुनः प्राह हरस्तदा । मत्तोषार्थं त्वया वीर दशवारं निजं शिरः ॥३८॥  
 खञ्जेन छेदितं यस्मात्स्मात्तेऽद्य शिरांसि हि । दश विंशद्ग्रुजाश्चापि भविष्यन्ति गिरा मम ॥३९॥  
 ततः स रावणस्तुष्टो गिरिजालिंगमंयुतः । विंशद्ग्रुजो दशग्रीवः स्वस्थलं गन्तुमुद्यतः ॥४०॥  
 कल्पभेदाच्छतशिराः शतवारं प्रखंडितैः । स प्रोक्तः स्वशिरोभिहिं शतद्रव्यभुजः क्वचित् ॥४१॥  
 तस्माद्द्वि हृतवान् विष्णुस्त्वं तं मार्गं प्रतार्य च । तथैवाध्येस्तटे लिंगं गोक्रणं रावणात्वया ॥४२॥  
 गृहीत्वा स्थापितं पूर्वं रावणोऽपि गृहं ययौ । मन्दोदरीं हरेवाक्याल्लुच्छ्वा मयसुतां शुभाम् ॥४३॥  
 मातुः कार्यमसंपाद्य तृष्णीभेवातिलज्जितः । मन्दोदर्योऽकरोत्स्वीयं विवाह तोषपूरितः ॥४४॥  
 दद्युकदा धनाद्यक्षं पुष्पकस्थं तु कैकसी । पुत्रान् धिकारयामास यूर्यं पढा मृतोपपाः ॥४५॥  
 मापत्न्यवेधु ये दृष्टा जायते नात्र लज्जिताः । ते मातृवचनं श्रुन्वा ययुग्मेष्ठिण्मृतम् ॥४६॥  
 दशग्रीवसहस्राणि कुंभकणोऽकरोक्तपः । विभीषणोऽपि धर्मात्मा सत्यधर्मेपरायणः ॥४७॥

इसलिए तुम अपने स्थानेको वापस चले जाओ' ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ऐसा कहकर उसको उसके स्थानपर भेज दो । नन्दीश्वर शिवका यह वचन सुनकर रावणके पास गये ॥ ३२ ॥ उन्होने अपने हाथसे उसका सिर धड़से जोड़कर शिवका वचन उसको कह सुनाया । रावण यह सुनकर भी उस रातको वहीं रहा और दूसरे दिन फिर उसी विचिसे शिवजीका गुणगान करने लगा । शिवजीने उस दिन भी अपना संदेश नन्दीके द्वारा रावण को कहला भेजा । परन्तु रावणने फिर भी अपना गायत्र उसी प्रकार दस दिनतक जारी रखता । तब शंकरजी उसके उस भवानक कर्म तथा मनोहर गायत्रसे प्रसन्न हो गये और उससे कहा-वर माँगो । ऐसा कहकर शिवजीने उसका वह सिर भी धड़से जोड़ दिया । तब उसने शंभुसे वर माँगा कि आप मेरी माताके लिए आत्मलिंग तथा पली बनानेके लिए मुझे पार्वतीजीको दे दीजिये । 'तथाऽस्तु' कहकर शिवजीने उसको वे दोनों चीजे दे दीं ॥ ३३-३७ ॥ जब उनको लेकर रावण चलने लगा, उस समय शिवजी कहने लगे-हे वीर ! तुमने मुझको प्रसन्न करनेके लिये अपना सिर दस बार तलबारसे काटा है । इसलिये मेरे कथनानुसार तुम्हारे दस सिर तथा बीस भुजायें हो जायेंगी ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तब रावण प्रसन्नतापूर्वक दस सिर और बीस हाथवाला बनकर पार्वती तथा शिवलिंग लेकर अपने स्थानकी ओर चला ॥ ४० ॥ कहीं-कहीं कल्पभेदसे रावण सौ बार मस्तक काटनेसे सौ सिर तथा दो सौ हाथोंवाला भी कहा गया है ॥ ४१ ॥ बादमें रास्तेसे ही विष्णुभगवान् रावणके हाथसे तुमको ( पार्वतीको ) छीन ले गये । तब तुम (पार्वती ) भी श्रीहरिको बोखा देकर उनसे अलग हो गयी । विष्णुकी तरह तुमने रावणके हाथसे शिवलिंग भी छीन लिया और उस लिंगको समुद्रके किनारेपर ही गोकर्ण नामसे स्थापित कर दिया । तब रावण खाली हाथ लौट गया और विष्णुके कथनानुसार मय राक्षसकी सुन्दरी पुत्री मन्दोदरी उसको प्राप्त हुई ॥४२॥४३॥ माताके कार्यका सम्पादन न कर सकनेके कारण वह बहुत लज्जित हुआ और कुछ भी नहीं कह सका । पश्चात् मन्दोदरीके साथ विवाह करके वह मन्तुष्ट हुआ ॥ ४४ ॥ एक समय उसकी माता कैकसी घनपति कुबेरको पुष्पक विमानपर वैठा देखकर अपने पुत्रोंको विकार-कर कहने लगी कि तुम लोग नपुंसक तथा मृतक सरीखे हो ॥ ४५ ॥ अपने सौतेले भाईका उत्कर्ष देखकर तुम लोगोंको लज्जा नहीं आती ? माताके इस कहु वचनको सुनकर वे तोनो आईं पूजतीय गोकर्ण महादेवके प्राप्त गये ॥ ४६ ॥ वहीं कुम्भकणने दस हजार वर्ष तपस्या की । अमौत्सा विशीषणने अर्थ सत्यवक्तुंपरामुण हेतु

पंचवर्षमहस्ताणि पादांगुप्तेन तस्थिवान् । दिव्यवर्षमहस्तं तु ध्रुमाहरो दशाननः ॥४८॥  
 पूर्णे वर्षसहस्रे स्वं शीर्षमग्नौ जुहाव सः । एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रम् ॥४९॥  
 अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः । छेत्तुकामस्य धर्मात्मा प्रसन्नोऽभूतप्रजापतिः ॥५०॥  
 उद्बाच वचनं ब्रह्मा वरं वरय कांक्षितम् । तदोवाच दशास्यस्तमवध्यत्वं बृणोम्यहम् ॥५१॥  
 सुपणनागयक्षेभ्यो देवेभ्यश्वासुरैरपि । त्वत्तः शभोर्महाविष्णोर्मातुषा मे तुणोपमाः ॥५२॥  
 तथेत्युक्त्वा विधिस्तस्मै दश शीर्षाणि संददौ । विभीषणाय सद्वुद्धिप्रमरत्वं ददौ मुदा ॥५३॥  
 विमोहितं सरस्वत्या देवेन्द्रपदकांक्षिणम् । कुम्भकर्ण विधिः प्राह वरं वरय वांछितम् ॥५४॥  
 सोऽपि तं वरयामास निद्रांमपाणसिकीं शुभाम् । पाणमासीये चैक्फदिनेऽशनं ब्रह्माऽपि दत्तशान् ॥५५॥  
 ततोऽन्तद्रूनिमग्निधिस्तेऽपि गृहं ययुः । सुमालीवरलब्धांस्तान् ज्ञात्वा दीहित्रयत्तमान् ॥५६॥  
 पातालान्निर्भयः प्रायात्प्रहस्ताद्यैर्भुवं सुखम् । मत्रिवाक्यादशास्योऽपि निष्कास्य धनद वलान् ॥५७॥  
 लंकापुर्या राक्षसैस्तु लंकाराज्यं चकार सः । धनदः पितरं पृष्ठा त्यक्त्वा लङ्कां महायशाः ॥५८॥  
 गन्धा कैलासशिखरं तपमाऽप्यच्छिंडवम् । तेन सख्यमनुप्राप्य तेनैव परिनदितः ॥५९॥  
 अलका नगीं तत्र निर्ममे विश्वरूपम् । दिक्पालत्वमनुप्राप्य शिवस्य वरदानतः ॥६०॥  
 रावणो विद्युजिज्ञाय ददौ शूर्पणखां तदा । पारिवर्हं ददौ तस्मै दंडकारण्यमुत्तमम् ॥६१॥  
 मारुत्वसुः सुतान् वंशं स्त्रिशिरःखरदूषणान् । साहाय्यार्थं ददौ तस्मै तत्कांते तु मृतेऽचिरात् ॥६२॥  
 कुम्भीनसीं ददौ हर्षान्मधुदेत्याय रावणः । ददौ मधुवनं तस्मै पारिवर्हमनुत्तमम् ॥६३॥  
 खङ्गजिज्ञाय तां क्रौचीं ददौ प्रेम्णा दशाननः । परलङ्कां पारिवर्हं ददौ तस्यै मनोरमम् ॥६४॥

पावेंके अंगूठेपर पाँच हजार वर्षतक खड़ा रहकर तप किया और दस हजार वर्षतक केवल धूम्र पंकर दशाननने तपस्या की ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ हजार वर्ष पूरे हो जानेपर वह अपना एक सिर काटकर अग्निमें होम देता था, ऐसा करते-करते नी हजार वर्ष बोत गये ॥ ४९ ॥ जब दस हजार वर्ष पूरे हुए और रावण अपना दसवीं सिर काटकर आगमें हृत्वा करनेके लिए तैयार हुआ, तब प्रजापति ब्रह्मा उसपर प्रसन्न हुए ॥ ५० ॥ ब्रह्माने कहा—हे बत्स ! तू अपना इच्छित वर माँग । तब रावणने कहा कि मैं गहड़से, सर्पोंसे, यक्षोंसे, देवताओंसे, असुरोंसे, आप ( ब्रह्मा ) से, शंभुसे तथा विष्णुसे भी अवध्यत्वका वर माँगता हूँ और मनुष्य तो मेरे लिए तिनकेके बराबर है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ 'तयास्तु' कहकर ब्रह्माने रावणको दस सिर दिये और विभीषणको सुबुद्धि तथा अमरत्व दिया ॥ ५३ ॥ इन्द्रपदकी इच्छा रखनेवाले कुम्भकर्णसे ब्रह्माने कहा कि अपना अभिलिखित वर माँगो ॥ ५४ ॥ तब सरस्वतीके द्वारा मोहमें पड़कर कुम्भकर्णने छः महोने तककी नंद माँगा । तदनन्तर ब्रह्माने उसको छः महोनेतक सोना और फिर भोजन करना तथा छः महोनेतक फिर शयन वा वर दिया ॥ ५५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और वे लोग भी अपने घर चले गये । सुमाली अपने दीहियोंको वर प्राप्त किये हुए जानकर प्रस्तु आदिके साथ पतालमें निकलकर निर्भर भावसे पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ मन्त्रीके कथनानुसार रावणने लंकार्ते कुवेरको निकलवा दिया और वहाँ स्वयं राक्षसोंको लेकर लंकाका राज्य करने लगा । तब महान् यशस्वी कुवेरने अपने पितामे पूछकर लङ्काको छोड़ दिया और कैलासके शिखरपर जाकर तपश्चर्यासे शिवको प्रसन्न किया । उन्होने उनसे मित्रता जोड़ी और उन्हींके कहनेसे वहाँ विश्वकर्मा द्वारा अलका पुरी बनवायी और शिवजीके वरदानसे दिवपालकी पदवी प्राप्त की ॥ ५६-५० ॥ बादमें रावणने अपनी सूर्पणखा नामकी बहिन विद्युजिज्ञाको ध्याह दी और उत्तम दंडकारण्य उसको दहेजमें दे दिया ॥ ५१ ॥ योड़े ही दिनों बाद जब उसका पति मर गया । तब रावणने अपनी मौसीके लड़के त्रिशिरा-खरदूषण आदिको उसकी सहायताके लिए भेजा ॥ ५२ ॥ रावणने कुम्भीनसी नामकी बहिन मधु देत्यको ध्याही तथा श्रेष्ठ मधुवन उसको दहेजमें दिया ॥ ५३ ॥ दशाननने अपनी क्रौची नामकी बहिन खङ्गजिज्ञ राक्षसको

वैरोचनस्य दौहित्रीं वृत्रज्वालेति विश्रुताम् । स्वयंदत्तां मुदोवाह कुम्भकण्ठ्य रावणः ॥६५॥  
 गन्धर्वगजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः । विभीषणस्य भार्यार्थे सरमां स मुदाऽवहत् ॥६६॥  
 ततो मन्दीदरी पुत्रं मेघनादमज्जीजनत् । जातमात्रस्तु यो नादं मेघवत्प्रचकार ह ॥६७॥  
 ततः सर्वेऽब्रुवन्मेघनादोऽयमिति वै जनाः । गुहायां कुमर्णोऽपि निद्राव्यासो विनिद्रितः ॥६८॥  
 ततः स रावणश्चापि देवगन्धर्वकिन्नरान् । हत्वा ऋषोश्चरात्नागान् स्त्रियस्तेषामपाहरत् ॥६९॥  
 धनदोऽपि च तच्छ्रुत्वा रावणस्याक्रमं तदा । अधर्मं मा कुरुष्वेति दूतवाक्यैन्यवारयत् ॥७०॥  
 ततः कुद्धो दशग्रीवो जगाम धनदालयम् । विनिर्जित्य धनाध्यक्षं जहार तस्य पुष्पकम् ॥७१॥  
 अलकायां यदाऽसीत्स सेनया रावणस्तदा । निशायामेकदा भ्रातुः कुवैस्य सुतेन हि ॥७२॥  
 प्रार्थिता सा पुरा रम्भा चकार नियतं दिनम् । अज्ञातवृत्ता वेगेन ययौ खान्दूपुरस्वना ॥७३॥  
 रावणोऽपि च तां दृष्ट्वा वलादेव प्रभुक्तवान् । चिरान्मुक्ताऽय वृत्तं सा कौवेरं संन्यवेदयत् ॥७४॥  
 कुद्धः सोऽपि ददौ शापं रावणाय महात्मने । अद्यारभ्य दशास्यश्चेद्विरक्तां स्त्रियमुच्चमाम् ॥७५॥  
 हठाङ्गोऽस्यति चेत्तहि क्षणमात्रान्मर्त्यपति । इति शापं रावणोऽपि शुश्राव चरवाक्यतः ॥७६॥  
 तदारभ्य स्त्रियं काममनिच्छन्तीं न धर्षयन् । ततो यमं च वरुणं निर्जित्य समरेऽसुरः ॥७७॥  
 स्वर्गलोकमगात्मृणं देवराजजिधांसया । ततो रावणमभ्येत्य चवंध त्रिदशेश्वरः ॥७८॥  
 तच्छ्रुत्वा सहस्राऽगत्य मेघनादः प्रतापवान् । कृत्वा युद्र महाशोर जित्वा त्रिदशपूज्ञवम् ॥७९॥  
 इन्द्रं धृत्वा दृढं वदृष्ट्वा मेघनादो महावलः । मोचयित्वा स्वपिनरं गृहीत्वेन्द्रं ययौ पुरीम् ॥८०॥  
 ब्रह्मा तं मोचयामास देवेन्द्रं मेघनादतः । दत्त्वा वरात्राश्वसाय ब्रह्मा स्वभवनं ययौ ॥८१॥

दी तथा उसको दहेजमें अतिशय मनोहर परलंका पुरी दे दी ॥ ६४ ॥ वैरोचनकी दौहित्री ( नतिनी ) प्रसिद्ध वृत्रज्वालाको उसके पिताने कुम्भकण्ठके लिये रावणको दी ॥ ६५ ॥ महात्मा गन्धर्वराज शैलूषकी सुता सरमाको रावण विभीषणके लिये ले आया ॥ ६६ ॥ तदनन्तर मन्दीदरीसे मेघनाद पुत्र उत्पन्न हुआ । जो कि पंदा होनेके साथ ही मेघकी तरह गर्जन करने लगा था ॥ ६७ ॥ इसीलिए सब लोग उसको मेघनाद कहने लगे । कुंभकण्ठ गुफामें जाकर सो गया ॥ ६८ ॥ उधर रावण देव, गन्धर्व, किन्नर, ऋषीश्वर और नागोंको मार-मारकर उनकी स्त्रियोंका अपहरण करने लगा ॥ ६९ ॥ जब कुवेरने रावणका इस प्रकार दुराचार सुना, तब उन्होंने अपने दूतों द्वारा कहला भेजा कि हे रावण ! तू ऐसा अधर्मं करना छड़ दे ॥ ७० ॥ यह सुना तो रावण और भी कुद्ध होकर कुवेरके यहाँ गया तथा उनको जीतकर पुष्पक विमान छूत लाया ॥ ७१ ॥ जब रावण अपनी सेनाके साथ अलकापुरीमें था । उसी समय रावणके भाई कुवेरके पुत्र नलकूबरकी प्रार्थना स्वीकार करके रम्भा अप्सरा युद्धके वातावरणको न जाननेके कारण एकाएक नियत दिनपर आकाशसे वहाँ आ पहुँचो । उसके पाँदोंमें सुन्दर एवं मनोहर नूपुरकी छ्वनि हो रही था ॥ ७२ ॥ रावणने उसको सहसा देखकर उसके साथ हठात् भोग किया । बहुत देरके बाद उससे मुक्त हो रम्भाने जाकर वह सब हाल कुवेरके पुत्रको कह सुनाया ॥ ७३ ॥ तब कुद्ध नलकूबरने रावणको शाप देते हुए कहा--“हे दशास्य ! आजसे यदि तुम किसी भी तुमको न चाहनेवाली भली स्त्रीसे हठात् भोग करोगे तो उसी क्षण मर जाओगे ।” इस शापको दूतके मुखसे रावणने भी सुन लिया ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ तबसे रावणने अपनेसे विमुख स्त्रीका अपमान करना छोड़ दिया । तदनन्तर युद्धमें यमराज तथा वरुणको जीतकर वह देवराज इन्द्रको मारनेकी इच्छासे शीघ्र ही स्वर्ग गया । त्रिदशेश्वर इन्द्रने रावणके सामने जाकर उसको कंद कर लिया ॥ ७६-७८ ॥ पिताको कंद किया हुआ सुनकर प्रतापी मेघनाद शीघ्र वहाँ जा पहुँचा तथा भयानक युद्ध करके इन्द्रको जीत लिया ॥ ७९ ॥ तब महावलवान् मेघनादने अपने पिता-को छुड़ा लिया और इन्द्रको पकड़ तथा बांधकर अपने नगरमें ले लाया ॥ ८० ॥ पश्चात् झह्नाने इन्द्रको

इन्द्रजित्नाम तस्याभूत्तदारभ्य रघृतम् । रावणादपि यशामीद्रलिष्टः समरप्रियः ॥८२॥  
 मेघनादादयश्चेति तस्मात्प्रोक्तं तवाग्रतः । एतेषुनीश्वरैः पूर्वं तन्निमित्तं मयेरितम् ॥८३॥  
 रावणो विजयी लोकान्सर्वान् जित्वा क्रमेण तु । जित्वा वहिं निर्कृतिं च वायुमीशं यथौ मुदा ॥८४॥  
 कैलामं तोलयामास वाहुभिः परिघोपमैः । तदा भीता शिवं देवी दोभ्यर्था सा परिप्रस्वजे ॥८५॥  
 शिवोऽपि वामपादाङ्गुष्ठेन कैलाममूर्द्धनि । भारं दत्ता गिरि खंडं चकाराथ शर्नः शर्नः ॥८६॥  
 तदा तद्रिसम्भूतबल्लिसंधिषु दोर्लताः । विंशत्वापि रावणस्य ता आपन्पर्दिता क्षणात् ॥८७॥  
 स तेनाकन्दयामास स्तम्भसम्बद्धचोरवत् । तदा नन्दीश्वरेणापि शसोऽयं रावणेश्वरः ॥८८॥  
 चञ्चलं कर्म यस्मात्ते कपितुन्यमतोऽसुर । वानर्मानुपैश्चैव नाशं गच्छसि कोपितैः ॥८९॥  
 ततः कालान्तरेणायं शम्भुर्नेत्र विमोचितः । शसोऽप्यगणयन्वाक्यं ययौ हैहयपत्तनम् ॥९०॥  
 बहिर्गतं नृपं श्रुत्वा सहस्रार्जुननामकम् । मध्याह्वे रावणश्चके रेवायां शिवरूपनम् ॥९१॥  
 अधस्तस्मान्नर्मदायां भुजपाशैश्च सेतुवत् । स्तम्भयामाप नीरोध जलकीडां गतोऽर्जुनः ॥९२॥  
 वेष्टितोऽयुतनारीभिस्तत्तोयं रावणं तदा । प्लावयामास ध्यानस्यं ज्ञातस्तकर्षणाऽर्जुनः ॥९३॥  
 मुक्त्वा ध्यानादिकं सर्वं युद्धं चक्रोऽर्जुनेन सः । तेन बद्धो दशग्रीवः कण्ठे रन्तुं सुनाय तम् ॥९४॥  
 ददौ दशाननं प्रीत्या काष्टनिर्मितहस्तिवत् । कियत्कालान्तरेणैव पुलस्तयेन स मोचितः ॥९५॥  
 ततोऽतिवलमासाद्य जिधांसुहरिपुङ्गवम् सागरे ध्यानमासीन पश्चाद्वागे शर्नैर्ययौ ॥९६॥  
 धृतस्तेनैव कक्षेण वालिना दशकन्धरः । आपयित्वा तु चतुरः समुद्रान् रावणं हरिः ॥९७॥

मेघनादसे छुड़ाया और राक्षसोंको बर देकर ब्रह्मा अपने भवनको चले गये ॥ ८१ ॥ हे रघृतम् ! तवसे मेघनाद-का इद्रजित् नाम पड़ा । जो कि रावणसे भी अधिक बलवान् तथा युद्धलंगुप था ॥ ८२ ॥ इसीलिए मैंने शापके सामने मेघनादका पहले नाम लिया । इन ऋषियोंने इसका कारण पहले ही बता दिया था ॥ ८३ ॥ विजयशील रावणने क्रमशः सब लोकोंको जीतकर वहिं, निर्कृति, वायु तथा ईशानको जीत लिया और वादमें अपनी अंगूष्ठाके समान भुजाओंसे कैलात पर्वतको उठाने गया । उस समय डरकर पर्वती देवी शिवजीसे लिपट गयीं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ पश्चात् शिवने अपने वायें पाँवके अंगूठेसे उस पर्वतको दबा दिया । जिससे कैलास धीरे-धीरे नीचे धैसने लगा ॥ ८६ ॥ उस समय पर्वतके नीचे आ जानेसे रावणको बीसों भुजायें दब गयीं और वह खम्भेसे बँधे हुए चोरकी तरह चिल्लाने लगा । उस समय नन्दीश्वरने भी रावणको शाप देते हुए कहा—॥ ८७ ॥ ८८ ॥ हे असुर ! तुम्हारेमें वानरके समान चंचलता होनेके कारण कुद्धवानरों तथा मनुष्योंसे ही तुम्हारी मृत्यु होगी ॥ ८९ ॥ बहुत कालके बाद शिवजीने उसे छुड़ा दिया । छूटनेके साथ ही वह शापको भूल गया और शिवजीके वचनका तिरस्कार करके युद्ध करनेके लिए हैहयराजके नगर-को गया ॥ ९० ॥ वहाँ जाकर पूछा तो ज्ञात हुआ कि सहस्रार्जुन नामवाला वहाँका राजा वहाँ उपस्थित नहीं हैं । तब रावण नर्मदा नदीके किनारे जाकर उसके दीचमें एक टापूपर बैठकर मध्याह्वे समयमें शिवजी-का पूजन करने लगा ॥ ९१ ॥ उससे नीचेकी ओर राजा सहस्रार्जुन जलकीडा कर रहा था । उसने अपनी भुजाखण्डोंसे खेल-खेलमें उस नदीके जलप्रवाहको रोक दिया । उस समय हजारों स्त्रियों उसे घेरकर जलकीडा कर रही थीं । परन्तु उस जलप्रवाहके रुक जानेसे शिवके ध्यानमें स्थित रावण जलमें बहने लगा । इस घटनाको देखकर उसने जान लिया कि यह काम सहस्रार्जुनका है । यह जानते ही वह तुरन्त ध्यान छोड़कर सहस्रार्जुनके पास गया और उसको युद्धके लिए ललकारने लगा । तब उसने रावणके गलेमें रस्सी डालकर बाँध लिया और अपने पुत्रको खेलनेके लिए लकड़ीके बने हुए हाथीकी तरह दे दिया । कुछ दिनोंके बाद पुलस्त्य मुनिने जाकर उसको वहाँसे छुड़ाया ॥ ९२-९५ ॥ बादमें रावण बल संचय करके बानरश्रेष्ठ बालीको मारनेकी इच्छासे समुद्रके किनारे ध्यान घरकर बैठे हुए बानरराजके पास जाकर धीरेसे पीछे-

किञ्चिथां स्वां ययौ वेगादग्रे दृष्टांगदं शिशुम् । प्रीत्या तं चुंबनं दातुं दोभ्यां कल्यां न्यवेशयत् ॥१८॥  
 तदा बाहोश्चलत्वात्कक्षात्य पतितो भुवि । तं दृष्टा स्वजनान् स्त्रीव दर्शयामास वै मुदा ॥१९॥  
 ग्रेखस्योपरि पुत्रस्य वैवन्धाधोमुखं चिरम् । आसीत्सोऽङ्गदमृत्रस्य धाराधीताननोऽसुरः ॥२०॥  
 स्वयमेव ततो वाली बहुकाले गते सति । ददावाज्ञांदशास्याय तेन सख्यं चकार सः ॥२१॥  
 रावणः स पुनः स्थित्वा पुष्पके व्यचरत्सुखम् । पश्यन्नानाविधान्वीरान् ययौ पातालमुत्तमम् ॥२२॥  
 तत्र दृष्टा पुरं रम्यं वलेः कोटिरविप्रमम् । तत्त्वोद्भवतेजस्तपुष्पकं न चचाल वै ॥२३॥  
 ततः स्वयं ययौ तृणीमेक एव दशाननः । पुरं प्रविश्य तदृद्धारि त्वा दर्श च वामनम् ॥२४॥  
 कोटिसूर्यप्रतीकाशं पीतकौशेयवाससम् । चतुर्भुजं सप्तनीकं द्वाररक्षणतत्परम् ॥२५॥  
 त्वां प्राह स दशग्रीवः कोऽत्र राजाऽस्ति मां वद । तृणीं स्थितो वामनस्त्वमणिं नोचरं रिषोः ॥२६॥  
 तदा त्वां वधिरं मत्वा स विवेश वलेगृहम् । तत्र दृष्टा वलिं पत्न्या सारिक्रीडनतत्परम् ॥२७॥  
 तस्थी तत्र श्रुण तृणीं वलेलक्ष्मीं व्यलोक्यत् । तावददूरे वलेहस्तात्कीडापासोऽपतद्धुवि ॥२८॥  
 तमानेतुं रावणाय वलिराङ्गापयत्तदा । रावणोऽपि तमानेतुं ययौ पामांतिकं जवात् ॥२९॥  
 ग्रोच्चचल भुवः पासं करेण न चचाल सः । विशदोभिः क्रमेणासी यावत्पासं प्रचालयत् ॥३०॥  
 तावदंगुलयः सर्वाः पासभारेण पीडिताः । न निष्क्रमुः पासतलाच्चूर्णिता रुधिराप्लुताः ॥३१॥  
 तदा चुक्रोश दीर्घं स चिरकालं दशाननः । ततो विहस्य दास्या तं पाममानीय वै वलिः ॥३२॥  
 धिग्धिक् कुत्वा रावणं तं गृहान्विष्कासयद्विः । ततो धृतो राजदूतस्तदुच्छिष्टैस्तु पोपितः ॥३३॥

की ओर जा खड़ा हुआ ॥६६॥ तब वालीने उसको काँखमें उलटा दबाकर चारों समुद्रोंके चौतरफा धुमाया ॥६७॥ पश्चात् अपनी किञ्चित्पूरीमें ले गया । वहाँ जाकर उसने अपने पुत्र अङ्गदको देखा । ज्यों ही वह अङ्गदको प्रेमसे चूमनेके लिये अपनी भुजाओंसे उसे कमरपर बैठाने लगा ॥६८॥ त्यों ही हाथोंके हिलनेसे रावण काखसे नीचे जमीनपर गिर पड़ा । उसको देखकर स्त्रियें प्रसन्नतापूर्वक स्वजनोंको दिखालाने लगीं ॥६९॥ उसके ऊपर पुत्र अङ्गदका पालना बौबकर नीचे रावणका मुख करके उम्होंने बहुत दिनोंतक बाँधकर रखा । जिससे रावणका मुख अङ्गदकी मूत्रधारासे धुलता रहा ॥७०॥ तदनन्तर स्वयं वालीने ही रावणको जानेकी आज्ञा दे दी और उससे मित्रता कर ली ॥७१॥ रावण पुनः पुष्पक विमानपर सवार होकर आनंदके साथ विचरने लगा । अनेक वीरोंको देखता हुआ वह पातालमें जा पहुंचा ॥७२॥ वहाँ कोटिसूर्यके सदृश प्रकाशमयी उस नगरीके तेजसे प्रतिहत होकर पुष्पक विमानकी गति रुक गयी ॥७३॥ तब उससे उत्तरकर दशानन चुपचाप अबेला ही पुरीकी ओर चल पड़ा । उसने पुरीमें प्रवेश करने-के बाद वामनरूपधारी आपको देखा ॥७४॥ करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी आपने पीताम्बर वारण कर रखा था । आप चतुर्भुज होकर लक्ष्मीके साथ वहाँ रहते हुए राजा वलिके द्वारकी रक्षा कर रहे थे ॥७५॥ उस दशग्रीवने आपसे पूछा कि इस नगरका राजा कौन है, वताओ । रावण कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा, पर आपने उसे अपना शत्रु समझकर कुछ उत्तर नहीं दिया ॥७६॥ तब आपको बहुरा समझकर वह वलिके भवनमें धुसा । वहाँ उसने राजा वलिको अपनी स्त्रीके साथ चौसर खेलते देखा ॥७७॥ वहाँ चुपकेसे खड़ा होकर वह वलिकी राज्यलक्ष्मीको क्षणभर देखता रहा । इतनेमें राजा वलिके हाथसे छटककर पांसा दूर जा गिरा ॥७८॥ उसी समय वलिने रावणको उस पांसेको उठा लानेके लिए कहा । रावण भी उसे उठानेके लिये शीघ्र ही उसके पास जा पहुंचा ॥७९॥ वह उसे एक हायसे उठाने लगा । पर वह पांसा हिलतक नहीं । तब रावणने दो, तीन, चार करके बासों हाथोंसे उस पांसेको उठानेकी चेष्टा की, परन्तु तो भी वह नहीं हिला ॥८०॥ प्रत्युत उसके सब हाथोंकी ओगुलियें पांसेके बोझसे दब गयीं और कुचल जानेसे खून निकलने लगा, परंतु वे निकली नहीं ॥८१॥ अतएव दशानन बहुत जोरसे चिल्लाने लगा । तब

अश्वानां शकुतं नोत्त्वा प्राक्षिपत्प्रत्यहं बहिः । एकदा द्वापरे गत्वा प्रार्थयामास त्वां मुहुः ॥११४॥  
त्वया स्वपादलग्नः स्वपदांगुष्ठेन खेऽपितः । तदाऽतिमुदितो लंकां चिरकालेन रावणः ॥११५॥  
यथौ मेने निजं जन्म द्वितीयं जातमद्य वै । रावणः परमप्रीत एवं लोकान्महावलः ॥११६॥

कतुं तान्स्ववशान्नित्यं वभ्राम पुष्पकस्थितः ।

दृष्टकदाऽन्न साकेते पूर्वजं तव दीक्षितम् ॥११७॥

अनरण्यं संगरेण चकार पतितं रणे ।

तदा शसोऽनरण्येन मद्वशे रघुनन्दनः ॥११८॥

भूत्वा त्वां संगरेणैव सकुटुम्बं वधिष्यति । इत्युक्त्वा स गतो नाकं रावणोऽपि पुरीं ययौ ॥११९॥  
सनत्कुमारमेकांते सन्निरीक्ष्यैकदाऽसुरः । नत्वा प्रचल्ल देवेषु को वरथेति सादरम् ॥१२०॥

मुनिः प्राह महाविष्णुं तच्छ्रुत्वा प्राह तं पुनः ।

विष्णुना ये हता युद्धे राक्षसाद्या लभंति काम् ॥१२१॥

गतिं चेति मुनिः प्राह ते मुक्ति यांति दुर्लभाम् ।

पुनः प्रचल्ल तं नत्वा केनोपायेन वै हरेः ॥१२२॥

भविष्यत्यत्र मे मृत्युस्तदा तं मुनिरब्रवीत् । त्रेतायां नररूपेण रामो विष्णुर्भविष्यति ॥१२३॥

अयोध्यायां तदा तेन कृत्वा वैरं सुदारुणम् । तस्माद्धर्घं कुरुत्व त्वमात्मनः परमात्मनः ॥१२४॥

तेन गच्छसि मुक्तिं त्वं तच्छ्रुत्वा स दशाननः ।

विरोधार्थं जनकजामहरद्वौतमीतटात् ॥१२५॥

अशोके रक्षिता तेन मातुवत्स्ववधेऽच्छया ।

राजा बलिकी एक दासीने श्रीश्री पांसिको उठाकर राजाको दे दिया ॥११२॥ बलिने उसी समय रावणको धिकार-  
कर अपने महलसे निकाल दिया । बाहर राजा बलिके दूतोने उसको फिर पकड़ लिया और अपने जूठनसे  
उसका पोषण करने लगे ॥११३॥ रावणको धोड़ोकी लीद रठा-उठाकर बाहर फेंक आनेका काम सौंपा गया ।  
कुछ दिनों बाद एक दिन रावण द्वारपर स्थित आप विष्णुके पास आकर नगरके बाहर जाने देनेकी प्रार्थना  
करने लगा और आपके चरणोंपर गिर पड़ा । तब आपने अपने पाँवके अंगूठेसे उसको आकाशकी ओर  
उछाल दिया । जिससे रावण बहुत कालके बाद प्रसन्नतापूर्वक अपनी लङ्घामें जा पहुँचा ॥११४॥ ११५॥ वह  
आज मेरा दूसरा जन्म हुआ है, ऐसा मानने लगा । तब बली रावण पुनः प्रसन्न होकर पूर्ववत् सब लोकोंको  
अपने वशमें करनेकी इच्छासे पुष्पकपर चढ़कर निष्यप्रति इष्वर-उष्वर भ्रमण करने लगा । उसने एक दिन  
अयोध्यामें आपके पूर्वज दीक्षित ( सोमवारगकी दीक्षा लिये हुए ) राजा अनरण्यको देखा । उनके साथ युद्ध  
करके रावणने रणमें उन्हें हरा दिया । तब अनरण्यने उसको शाप दिया कि मेरे वंशमें जन्म लेकर रघुनन्दन  
राम सकुटुम्ब तुमको मारेंगे ॥११६-११७॥ इतना कहकर वे स्वर्ग सिधार गये तथा रावण अपने नगरको चला  
गया ॥११९॥ उस राक्षसने एक दिन सनत्कुमारको नमस्कार करके एकान्तमें पूछा-हे मुने ! कृपा करके मुझे  
यह बताइए कि देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ देवता कौन है ? ॥१२०॥ मुनिने विष्णुको श्रेष्ठ बताया । यह सुनकर वह  
असूर रावण फिर बोला कि विष्णुने आजतक जिन राक्षसोंको मारा है, वे किस गतिको प्राप्त हुए हैं ? ॥१२१॥  
मुनिने कहा-वे सब उत्तम तथा दुर्लभ मुक्तिको प्राप्त हुए हैं । उस राक्षसने फिर प्रश्न किया कि किस उपायसे  
मेरी मृत्यु श्रीहरिके हाथों हो सकती है ? मुनिने उसके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा कि त्रेतायुगमें विष्णु  
अयोध्यामें मनुष्यका रूप धारण करेंगे ॥१२२॥ १२३॥ उस समय उनसे धोर वैर करके उन परमात्मा  
रामके हाथों तुम अपना वध करवा लेना ॥१२४॥ उससे तुम मुक्तिपदको प्राप्त हो जाओगे । यह बात  
मनमें रखकर रावणने रामके साथ विरोध करनेके लिए ही गौतमी नदीके तटसे जनकनन्दिनी सीताका

एकदा नारदं दृष्टा नत्वा पप्रच्छ रावणः ॥१२६॥

भगवन् ब्रूहि मे योद्धुं कुत्र सन्ति महाबलाः ।

योद्धुमिच्छामि वलिभिस्त्वं जानासि जगत्त्रयम् ॥१२७॥

मुनिच्छ्रीत्वा चिरात्प्राह श्वेतद्वीपनिवासिनः । महाबला महाकायास्तत्र याहि महामते ॥१२८॥  
विष्णुपूजारता ये वै विष्णुना निहताश्च ये । त एव तत्र संजाता ह्यजेयाश्च सुरासुरैः ॥१२९॥

तच्छ्रीत्वा रावणो वेगान्मंत्रिभिः पुष्पकेण तैः ।

योद्धुकामो ययौ गर्वच्छ्रैतद्वीपांतिकं मुदा ॥१३०॥

तत्प्रभाहततेजस्कं पुष्पकं नाचलत्पुरः ।

त्यक्त्वा विमानं प्रययौ स्वयमेव दशाननः ॥१३१॥

प्रविशन्नेव तद्वीपं धृतो हस्तेन योपिता ।

गच्छत्या कस्यचिद्वास्या पुष्पाण्यानयितुं वनम् ॥१३२॥

तया पृष्ठः कुतः कोऽसि प्रेपितः केन वा वद । इत्युक्त्वा लीलया स्त्रीभिर्हसंतीभिर्मुहुमुहुः ॥१३३॥

मुखेषु ताडितो हस्तैर्भ्रामितोऽधोमुखं चिरम् । धृत्वैकं तत्पदं ताभिः क्षिप्तः कंदुकवन्मुहुः ॥१३४॥

परस्परं हि क्रोडद्विः कथा त्यक्तस्तु लीलया । पपात परलंकायां क्रौंचायाः शौचकूपके ॥१३५॥

कृच्छ्राद्दस्ताद्विनिर्मुक्तस्तासां खीणां दशाननः ।

आश्वर्यमतुलं लब्ध्वा चिन्तयामास दुर्मितिः ॥१३६॥

विष्णुना ये हता युद्धे तेपामेतादृशं बलम् । तर्ष्णत्र निहतस्तेन श्वेतद्वीपं ब्रजाम्यहम् ॥१३७॥

मयि विष्णुर्यथा कुप्येत्तथा कार्यं करोम्यहम् ।

इति निश्चित्य वैदेहीं जहार रावणो वनात् ॥१३८॥

हरण कर लिया था ॥ १२५ ॥ अपने वधकी इच्छासे ही उसने सीताको अशोकवनमें रखकर माताके समान रक्षा की थी । एक बार रावणने नारद मुनिको देखकर नमस्कार किया और पूछा— ॥ १२६ ॥ हे भगवन् ! आप कृपा करके यह बताइये कि मुझसे लड़नेवाले बलवान् लोग कहाँ हैं ? मैं बलवानोंसे युद्ध करना चाहता हूँ । आप तीनों लोकके लोगोंका जानते हैं ॥ १२७ ॥ मुनिने तनिक देर ध्यान घरके कहा कि श्वेतद्वीपके लोग बड़े भारी शरीरवाले होते हैं और वे नित्य भगवान्की पूजामें लगे रहते हैं । जो लोग विष्णुके हाथों मारे जाते हैं, वे ही सुरों तथा अमुरोंसे अजेय होकर वहाँ जन्म लेते हैं ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ यह सुनकर प्रसन्न रावण अपने मन्त्रियोंके साथ पुष्पक विमानपर सवार होकर गर्व तथा वेगके साथ उन लोगोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे श्वेतद्वीपकी ओर चल पड़ा ॥ १३० ॥ परन्तु उस द्वीपकी कान्तिसे चौंधियाकर उसका विमान रुक गया । तब रावण विमान छोड़कर पैदल चलने लगा ॥ १३१ ॥ द्वीपमें घुसते ही एक स्त्रीने उसको एक हाथसे पकड़ लिया । वह किसीकी दासी यो और वनमें पुष्प लेने जा रही थी ॥ १३२ ॥ उस स्त्रीने रावणसे पूछा कि तू कौन है और तुझे यहाँ किसने भेजा है ? बता । इतना कहकर कुछ स्त्रियाँ बारम्बार हँसकर लीलापूर्वक उसके मुखपर तमाचे लगाने लगीं । बादमें उसका पाँव पकड़ तथा उसको आँधी सिर धुमाकर गेंदकी भाँति दूर फेंक दिया ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ आपसमें एक दूसरेके साथ खेलती हुई किसी एक स्त्रीने ही यह काम किया था । इस प्रकार फेंकनेपर रावण परलङ्घामें क्रौंचाके शौचालयमें जा गिरा ॥ १३५ ॥ इस प्रकार रावण उन स्त्रियोंके हाथोंसे बड़ी कठिनाईसे छूटा और आश्वर्यचकित होकर वह दुष्ट विचारने लगा— ॥ १३६ ॥ ओहो ! विष्णु जिनको मारते हैं, वे लोग कितने बलवान् हो जाते हैं । इसलिए मैं भी उनसे मारा जाकर श्वेतद्वीपमें जाऊँगा ॥ १३७ ॥ अब मैं वही काम करूँगा कि जिससे विष्णु मेरे ऊपर क्रुद्ध हों । यही सोचकर वनमें रावणने

जाननेवं महालक्ष्मीं स जहारावनीसुताम् ।  
मातृवत्पालयामास स्वतः कांक्षन्वर्धं निजम् ॥१३९॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

वालिसुग्रीवयोर्जन्म श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् । रवींद्रौ वानराकारौ जन्मात इति तच्छ्रुतम् ॥१४०॥

अगस्त्य उवाच

मेरौ स्वर्णमये पूर्वं सभायां ब्रह्मणः कदा । नेत्राभ्यां पतितं दिव्यमानं दाश्रुजलं तदा ॥१४१॥

तदृगृहीत्वा करे ब्रह्मा ध्यात्वा किंचित्तदत्यजत् ।

भूमौ पतितमात्रेण तस्माज्जातो महाकपिः ॥१४२॥

तमाह दुहिणो वत्स त्वमत्र वस सर्वदा ।

एवं वहुतिथे काले गतेष्वरिजः सुधीः ॥१४३॥

कदाचित्पर्यटन्मेरौ फलमूलार्थसुव्यतः । अपश्यदिव्यसलिलां वार्षीं मणिशिलाचिताम् ॥१४४॥

पानीयं पातुमगमत्तत्र छायामयं कपिम् । दृष्टा प्रतिकपिं मत्वा निपपात जलांतरे ॥१४५॥

तत्रादृष्टा हरि शीघ्रं बहिरुत्प्लुत्य संययौ । अपश्यत्सुन्दरीं नारीमात्मानं विस्मयं गतः ॥१४६॥

ततो ददर्श मध्वा सोऽत्यजदीर्यमुत्तमम् । तामप्राप्यैव तदीर्यं बालदेशेऽपतद्धुवि ॥१४७॥

बालो समभवत्तत्र शक्रतुल्यपराक्रमः ।

भानुरप्यागमत्तत्र तदानीमेव भामिनीम् ॥१४८॥

दृष्टा कामवशो भूत्वा श्रीवादेशेऽसृजन्महत् । बोजं तस्यास्ततः सद्यो सुग्रोवो बलवानभूत् ॥१४९॥

त्रद्वयं समादाय गत्वा सा निद्रिता क्वचित् । प्रभातेऽपश्यदात्मानं पूर्ववद्वानराकृतिम् ॥१५०॥

तदृष्टुत्तं तु विधिः श्रुत्वा किञ्चिधाराज्यमुत्तमम् ।

ददौ स वानरेन्द्राय पुत्राभ्यां तत्र संस्थितः ॥१५१॥

वैदेहीका हरण कर लिया ॥ १३८ ॥ उसने यह भी जान लिया था कि ये साक्षात् अवनिसुता लक्ष्मी हैं । इसीलिए उसने अपने बधकी इच्छा करके सीताको माताके समान पाला था ॥ १३९ ॥ श्रीरामचन्द्र बोले—हे मुने । मैं आगके मुखसे वालि और सुग्रीवके जन्मकी कथा सुनना चाहता हूँ । मैंने सुना है कि स्वर्णं सूर्योत्तया इन्द्र वानराकार वालि-सुग्रीवके रूपमें उत्पन्न हुए थे ॥ १४० ॥ अगस्त्य मुनि बोले—मेरु पर्वतके स्वर्णशिखरपर एक बार भरी सभामें सहसा ब्रह्माके नेत्रसे दिव्य आनन्दाश्रु निकल पड़ा ॥ १४१ ॥ ब्रह्माजीने उसको हाथमें ले तथा कुछ ध्यान धरनेके पश्चात् जमीनपर डाल दिया । गिरनेके साथ ही उससे एक महान् कपि उत्पन्न हो गया ॥ १४२ ॥ तब ब्रह्माने उससे कहा—हे वत्स ! तुम सदा यहाँ रहो । वहाँ रहते हुए कुछ दिन बोतनेपर वह शूक्रविरजा कपि किसी समय मेरु पर्वतपर धूमता-फिरता फल-मूल आदिके लिए एक बनमें जा पहुँचा । उसने वहाँ मणिकी शिलाओंमें बनी हुई स्वच्छ जलबाली एक बावली देखा ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ जब वह पानी पीने लगा तो उसे अपनी छाया दिखाई दी । उसे अपना प्रतिपक्षी समझकर वह जलमें कूद पड़ा ॥ १४५ ॥ किन्तु उसमें जब उसको दूसरा वानर नहीं दिखाई पड़ा, तब वह उछलकर बाहर निकल आया । बाहर निकलनेके साथ ही वह एक सुन्दरी स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया । वह देखकर उसको बड़ा आभ्यं हुआ ॥ १४६ ॥ बादमें जब इन्द्रने उसको देखा तो कामवश उनका वीर्य निकलकर उस स्त्रीके बालों-रर जा गिरा ॥ १४७ ॥ उससे इन्द्रतुल्य पराक्रमी वानर वालि पैदा हुआ । उसी समय सुर्यदेव भी वहाँ आ पहुँचे ॥ १४८ ॥ उस सुन्दरी कामिनीको देखकर वे भी कामातुर हो उठे और उस स्त्रीकी गर्दनपर उनका महान् वीर्य गिर पड़ा । जिससे उसी समय बलवान् वानर सुर्योव उत्पन्न हुआ ॥ १४९ ॥ उन दोनों पुत्रोंको कहीं में जाकर वह स्त्री सो गयी । प्रातःकाल होनेपर उसने फिर अपने आपको वानररूपमें पाया ॥ १५० ॥

मृतेक्षविरजस्याभूद्वाली पुर्या कपीश्वरः । एवं ते कथितं राम यथा पृष्ठं त्वया मम ॥१५२॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

यदाऽसौ वालिना वंधुः किञ्जिन्धाया वहिष्कृतः ।

तदा तस्यैव सचिवः श्रीमान्पवननन्दनः ॥१५३॥

न वेद किं बलं नैर्जं वालितुल्यपराक्रमः । इति रामवचः श्रुत्वा पुनस्तं श्रुनिरब्रवीत् ॥१५४॥

अगस्तिरुचाच

केसरीनाम विख्यातः कपिरजनपर्वते ।

तस्यास्तां च शुमे पत्न्यौ वानयविकदा गिरौ ॥१५५॥

प्लवंगस्याञ्जनीनाम्नी स्थिता तावच्च खातदा ।

पपात पायसमयः पिंडो गृध्रीमुखाद्भुवि ॥१५६॥

यदा नीतस्तु कैकेय्या करादृगृथथा शुभः पुरा । तं पिंडं भक्षयामास वानरी श्वरूपमम् ॥१५७॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र मार्जारास्या समागता । पतिना रहिते ते द्वे क्रीडंत्यौ वसनं तयोः ॥१५८॥

अद्वरत्पवनो वेगादृद्ध्वा वायुस्तद्रवः ।

अंजनीं प्रार्थयामास तया भोगं चकार सः ॥१५९॥

तथैव प्रार्थयामास मार्जारास्यां स निर्कृतिः । तयाऽकरोद्रतिं तत्र सोऽपि पर्वतमूर्द्धनि ॥१६०॥

तयोस्ताभ्यां समुत्पन्नो वानर्या मारुतात्मजः ।

मार्जार्याः समभूद्वोरः पिशाचो घर्वरस्वनः ॥१६१॥

चैत्रे माति सिते पक्षे हरिदिन्यां भवाऽभिधे । नक्षत्रे स समुत्पन्नो हनुमान् रिषुस्तदनः ॥१६२॥

महाचैत्रीपूर्णिमायां समुत्पन्नोऽञ्जनीसुतः । वदन्ति कल्पमेदेन बुधा इत्यादि केचन ॥१६३॥

बालभावेऽपि यः पूर्वं दृष्टोद्यंतं विभावसुम् ।

मत्वा पक्वफलं चेति जिधृच्छुर्लीलयोत्प्लुतः ॥१६४॥

वह वृत्तान्त सुनकर ब्रह्माजीने वानरेन्द्र ऋषविरजाको किञ्जिन्धा नगरीका उत्तम राज्य दे दिया । जहाँपर वह अपने दोनों पुत्रोंके साथ रहने लगा ॥ १५१ ॥ उस ऋषराजके मर जानेपर किञ्जिन्धापुरीका राजा कपीश्वर बाली हुआ । हे राम ! जो आपने पूछा, मैंने वह सब कह दिया ॥ १५२ ॥ श्रीरामचन्द्र बोले— जब सुग्रीवको बालीने किञ्जिन्धासे बाहर निकाल दिया था, उस समय इनके मन्त्री ये वायुनन्दन हनुमान् भी साथ थे ॥ १५३ ॥ पर इनको बालीके समान अपना बल क्यों नहीं याद आया ? रामके इस वचनको सुनकर मुनि अगस्त्य फिर कहने लगे— ॥ १५४ ॥ अंजन पर्वतनिवासी केसरी नामसे विख्यात कपिकी दो वानरी स्त्रियें थीं ॥ १५५ ॥ किसी समय उस कपिकी अंजनी नामकी स्त्री वहीं बैठी थी । इतनेमें आकाशसे किसी गृध्रीके मुखसे छूटकर पायसका एक पिण्ड आ गिरा ॥ १५६ ॥ यह पिण्ड वही था जो कि पहले कैकेयी-के हाथसे एक गृध्री छीन ले गयी थी । उस अमृतनुल्य पिण्डको वानरीने खा लिया ॥ १५७ ॥ इतनेमें वहीं वह दूसरी मार्जारास्या वानरी भी आ पहुँची । पतिकी अनुपस्थितिमें वे दोनों क्रीड़ा कर रही थीं । तभी उन दोनोंके वस्त्रोंको पवनने उड़ाकर ऊचे उठाया तथा उनकी जाँधोंको देख लिया । पश्चात् अंजनीसे प्रार्थना करके उसके साथ वायुने भोग किया ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ उसी प्रकार निर्कृतिने मार्जारास्यासे प्रार्थना करके पर्वतके शिखरपर उसके साथ रति की ॥ १६० ॥ उन दोनोंसे उन दोनोंमें-वानरीसे मारुतात्मज हनुमान् तथा मार्जारीसे घोर घर्वरस्वन पिशाच उत्पन्न हुआ ॥ १६१ ॥ चैत्र शुक्ल एकादशीके दिन मध्यानक्षत्रमें रिषुदमन हनुमान्-का जन्म हुआ था ॥ १६२ ॥ कुछ पण्डित कल्पमेदसे चैत्रकी पूर्णिमाके दिन हनुमान्-का शुभ जन्म हुआ, ऐसा कहते हैं ॥ १६३ ॥ वे हनुमान् बाल्यकालमें ही सूर्यको देख तथा उन्हें पका फल समझकर उसको लेनेकी

योजनानां पंचशतं वायुवेगेन मारुतिः । राहुस्तस्मिन्दिने दर्शं ययौ सूर्यं रघूतम् ॥१६५॥  
 तावदूदृष्टा धर्तुकामं रवेरग्रे कपि स्थितम् । तदा राहुर्भयादेव रविं मुक्त्वेद्रमाययौ ॥१६६॥  
 राहुः प्राह शचीनाथं तव पीडां करोम्यहम् ।  
 दत्तः पूर्वं त्वया सूर्यः पीडां कर्तुं सुरेश्वर ॥१६७ ॥

तत्र विष्णं समुत्पन्नं तत्त्वं शीघ्रं निवारय । तद्राहुवचनादिद्रिः समारुद्धा जोपरि ॥१६८॥  
 देवेर्युतो ययौ वेगादर्शं प्लवगं पुरः । तदा मुमोच तं वज्रं मघवा मारुतिं प्रति ॥१६९॥  
 वज्रशातान्मारुतिः खात् पपात गिरिकन्दरे ।  
 तदा भग्ना हनुस्त्वस्य हनुमानिति वै यतः ॥१७०॥  
 ख्यातिं गतोऽयं सर्वत्र तदा वायुश्चकोप ह ।  
 सात्वयित्वा हनूमंतं स्वयं स्तब्धोऽभवत्तदा ॥१७१॥

वायुस्तम्भाङ्गनाः सर्वे निषेतुर्धरणीतले । त्रैलोक्यं शववज्ञातं हाहाकारोऽभवद्विवि ॥१७२॥  
 तदा धिक्कृत्य देवेन्द्रं वेधा वायुं ययौ जवात् ।  
 प्रार्थयामास तं नत्वा पुनर्वायु वचोऽब्रवीत् ॥१७३॥

देवेन्द्रस्यापराधं त्वं क्षन्तुमर्हसि कंपन । तव पुत्राय दास्यामि वरानध्य हनूमते ॥१७४॥  
 तदा तुष्टोऽभवद्वायुश्चाल पूर्ववत्पुनः । अभूत्संजीवितं सर्वं त्रैलोक्यं क्षणमात्रतः ॥१७५॥  
 तदा ददौ वरान् ब्रह्मा मारुतिं पुरतः स्थितम् ।  
 भविष्यसि त्वममरो वज्रदेहो वरान्मम ॥१७६॥

ते कुंठिता गतिर्माइस्तु कुत्राप्यंजनिसंभव । भविष्यति हरौ भक्तिस्तव नित्यमनुत्तमा ॥१७७॥  
 त्वं विष्णोरपि साहाय्यं करिष्यसि वरान्मम ।  
 इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे वेधा राहुः सूर्यं ययौ पुनः ॥१७८॥

इच्छासे लीलापूर्वक ऊपरको उछले ॥ १६४ ॥ उस समय मारुति वायुवेगसे पाँच सौ योजन ऊपर उठ गये थे । हे रघूतम ! उसी दर्श ( अमावस्या ) के दिन राहु भी ग्रसनेके लिए सूर्यके पास गया, किन्तु उन्हें पकड़नेकी इच्छासे खड़े हनुमान्को देखा । तब राहु डरा और सूर्यको छोड़कर इन्द्रके पास जा पहुँचा ॥१६५॥१६६॥ शची-पति इन्द्रसे राहु बोला—अब मैं आपको ही सताऊँगा । क्योंकि पूर्वकालमें आपने मुझे सतानेके लिये सूर्य-को दिया था ॥ १६७ ॥ परन्तु उसमें इस समय विष्ण उपस्थित हो गया है । अतः उसका आप निवारण करें, नहीं तो मैं आपहीको दुःख दूँगा । इस प्रकार राहुके कथनानुसार इन्द्र गजपर सवार होकर देवताओंके साथ सूर्यके पास गये तो वहाँ उनके सामने हनुमान्को खड़ा देखा । तत्काल इन्द्रने उनके ऊपर वज्रप्रहार किया ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ वज्रके आधातसे हनुमान् नौचे गिरिकन्दरामें जा गिरे और उनको ठुड़दी टेढ़ी ही गयी । जिससे कि उनका हनुमान् नाम पड़ा ॥ १७० ॥ उनका यह नाम सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया । यह देखकर उनके पिता वायुदेवने कुपित होकर अपनी गति बन्द कर दी ॥ १७१ ॥ वायुके बन्द हो जानेसे सब लोग मर-मरकर धरती-पर गिरने लगे । तीनों लोक मृतक जैसे हो गये और देवलोकमें भी हाहाकार मच गया ॥ १७२ ॥ तब ब्रह्मा इन्द्रको चिकारकर शीघ्र वायुके पास गये और नमस्कार करके प्रार्थनापूर्वक कहा—॥ १७३ ॥ हे कंपन ! तुम देवेन्द्रके अपराधको क्षमा कर दो । मैं तुम्हारे पुत्र हनुमान्को वर देता हूँ ॥ १७४ ॥ तब प्रसन्न होकर वायु पुनः पूर्ववत् बहुते लगा । अतः क्षणमात्रमें तीनों लोक फिर जीवित हो गये ॥ १७५ ॥ पञ्चात् ब्रह्माने सामने खड़े मारुतिको वर दिया कि तुम मेरे वचनसे वज्रदेह होकर अमर हो जाओगे ॥ १७६ ॥ हे अंजनीपुत्र ! तुम्हारी गति कहीं भी प्रतिहत न होगी और नित्य श्रीहरिमें तुम्हारी उत्तम भक्ति बनी रहेगी ॥१७७॥ मेरे वरदान-से तुम विष्णुकी सहायता करनेमें भी समर्थ होओगे । इतना कहकर ब्रह्मा अन्तर्घानि हो गये और राहु पुनः

श्रीराम उवाच

देवेन्द्रेण कथं दत्तो रविस्तरस्मै स राहवे । तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्व ममाप्रतः ॥१७९॥

अगस्तिरुवाच

सुधापानादयं राहुदेत्योऽभूदमरः स्वयम् । ग्रहोऽष्टमोऽभवत्सोऽपि यदाऽन्नांछदघं सुरान् ॥१८०॥

पीडां कर्तुं तदा देवाः सूर्यं सोमं ददुस्तु वै । ज्ञात्वा धर्मेन्द्रजनाः सर्वे निजकर्मादिहेतवे ॥१८१॥

मोचयिष्यन्ति राहोश्च शशिनं भास्करं प्रति । यदा यदा भवत्यत्रोपरागो जगतीत्वले ॥१८२॥

तदा तदा जना धर्मेन्द्रिजमत्यर्थमादरात् ।

तोषयित्वा सदा राहुं तौ तस्मान्मोचयन्ति हि ॥१८३॥

एतत्सर्वं मया ग्रोक्तमुपरागस्य कारणम् । जन्म कर्म वरादानं मारुतेश्वापि विस्तरात् ॥१८४॥

अतस्तद्वलमाहात्म्यं को वा शक्नोति वर्णितुम् । स एकदा मुनीनां हि चाश्रमेषु कुशादिकान् ॥१८५॥

चकारेतस्ततः सर्वान्धर्षपूर्यन्मुनिबालकान् । तस्य तत्कर्म मुनिभिर्द्वाः शसोऽज्ञनीसुरः ॥१८६॥

अद्यारभय कपिश्रेष्ठ न ज्ञास्यसि स्वपौरुषम् ।

यदाऽन्यस्य मुखात्स्वीयं बलं श्रोष्यसि विस्तरात् ॥१८७॥

मविष्यति तदा पूर्वस्मृतिस्ते पौरुषं पुनः । अतः सुग्रीवसान्निष्ये विस्मृतः स्वपराक्रमः ॥१८८॥

यदा स्तुतो जांबवता पुरा प्रायोपवेशने । तदा स्मृतिस्तस्य जाता स्वबलस्य हनूमतः ॥१८९॥

एतचें सर्वमाख्यातं त्वया पूर्णं मया तव । यथा तथा सावस्तारं कपिरावणचेष्टितम् ॥१९०॥

राम त्वं परमेश्वरोऽसि सकलं जानासि विज्ञानदक्

भूतं भव्यमिदं त्रिकालकलनासाक्षी विकल्पोज्जितः ।

भक्तानामनुवर्त्तनाय सकलां कुर्वन् क्रियासंहतिं

चाशृण्वन् मनुजाकृतिर्मम वचो भासीश लोकाच्छितः ॥१९१॥

सूर्यके पास गया ॥ १७८ ॥ श्रीरामजीने पूछा कि देवेन्द्रने सूर्यं राहुको क्यों दे दिया था ? हे मुनीन्द्र ! यह कथा आप विस्तारसे कहें ॥ १७९ ॥ अगस्त्य ऋषि बोले—हे राम ! देत्य राहु पूर्वकालमें सुधापान करके अमरत्वको प्राप्त हो गया था । बादमें जब वह अष्टम ग्रह हो गया, तब उसने देवताओंको दुःख देना चाहा । यह देखकर देवताओंने सूर्यं तथा चन्द्रमा राहुको दे दिया और यह सोचा कि संसारके लोग अपने कामके लिए धर्मके द्वारा राहुसे सूर्यं तथा चन्द्रमाको छुड़ा लेंगे । उसीके अनुसार सूर्य-चन्द्रको जब-जब ग्रहण लगता है, तब-तब मनुष्य अपने कार्यसाधनके लिये आदरपूर्वक दान-धर्मसे राहुको संतुष्ट करके उससे सूर्य-चन्द्रको छुड़ा लेते हैं ॥ १८०-१८३ ॥ इस प्रकार मैंने ग्रहणका कारण तथा मारुतिका जन्म-कर्म आदि वृत्तान्त सविस्तार आपको कह सुनाया ॥ १८४ ॥ पूरी तरह हनुमान्दके बल-प्रतापका वर्णन कौन कर सकता है । उन्होंने एक दिन मुनियोंके आश्रममें जाकर उनके बालकोंको डराया-धमकाया और कुशा आदि सब सामग्री इधर-उधर बिखेर दी । उनके इस कामको देखकर मुनियोंनि अंजनीसुत हनुमान्दको शाप देते हुए कहा—॥ १८५ ॥ हे कापेश्वर ! आजसे तुम अपने पुरुषार्थको भूल जाओगे और जब कभी दूसरेके मुखसे अपना बल विस्तारसे मुनोगे ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ तब स्मरण होगा । वे सुग्रीवके पास रहते समय इसी कारण अपना पुरुषार्थ भूल गये थे । बादमें समुद्रतटपर उपवासके समय जब जांबवान्दने उनकी स्तुति करके उनके बलका स्मरण दिलाया, तब हनुमान्दको तुरन्त अपना बल याद आगया था ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ यह सब मैंने आपके पूछनेके अनुसार सविस्तार कपि हनुमान् तथा रावणका काव्यकलाप कह सुनाया ॥ १९० ॥ हे राम ! आप परमेश्वर हैं, ज्ञानहृषिसे सब कुछ देखते हैं, विकल्परहित आप भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों कालको क्रियाके विज्ञ और सबके साक्षी हैं । भक्तोंके अनुरोधसे आप समस्त क्रियाकलाप करते हुए मनुष्य बनकर मेरे बचनको

## श्रीशिव उवाच

स्तुत्वैवं राघवं तेन पूजितः कुंभसंभवः । स्वाश्रमं मुनिभिः साधौ प्रययौ गुप्तविग्रहः ॥१९२॥  
विन्ध्याचलं निजं रूपं स मुनिनैव दर्शयत् । पुनरुत्थास्यति गिरिश्वेति मत्वा तु तद्व्यात् ॥१९३॥

रामस्तु सीतया सादृं ब्रात्रभिः सह मंत्रिभिः ।

संसारीव रमानाथो रममाणोऽवसद्गृहे ॥१९४॥

अनासत्तोऽपि विषयान् बुझुजे प्रियया सह । हनुमत्प्रमुखैः सद्विवानिरैः परिसेवितः ॥१९५॥

राघवे शासति भुवं लोकनाथे रमापतौ । वसुधा सस्यसंपन्ना फलवंतश्च भूरुहाः ॥१९६॥

जनाः स्वधर्मनिरताः पतिभक्तिपराः स्त्रियः । नापश्यत्पुत्रमरणं कश्चिद्राजनि राघवे ॥१९७॥

समारुद्ध्य विमानाग्रथं राघवः सीतया सह । वानरैर्ब्रात्रिभिः सादृं संचारावनि प्रभुः ॥१९८॥

अमानुषाणि कर्माणि चकार बहुशो भृवि । लोकानामुपदेशार्थं परमात्मा रघूत्तमः ॥१९९॥

कोटिशः शिवलिंगानि स्थापयामास सर्वतः ।

अश्वमेधादिविविधान् यज्ञान् विपुलदक्षिणान् ॥२००॥

चकार परमानन्दो मानुषं वपुरास्थितः । सीतां तां रमयामास सर्वभोगैरमानुषैः ॥२०१॥

शशास रामो धर्मेण राज्यं परमधर्मवित् । कथाः संस्थापयामास सर्वलोकमलापहाः ॥२०२॥

एकादशसहस्राणि सैकादशसमानि च । त्रेतायुगभवान्येव वर्षाणि रघुनन्दनः ॥२०३॥

चकार राज्यं धर्मेण लोकवन्द्यपदांबुजः । कलेमनिन ज्ञेयानि लक्षण्येकादशैव हि ॥२०४॥

सैकादशशतान्यत्र रामो राज्यं चकार सः । एकपत्नीवतो रामो राजर्षिः सर्वदा शुचिः ॥२०५॥

यस्यैकमेव तच्चासीत् पत्नीवाक्यं शरस्तथा । गृहमेधीयमखिलमाचरन् शिक्षितुं नरान् ॥२०६॥

सीता प्रेम्णाऽनुषृत्या च प्रश्रयेण दमेन च । भर्तुर्मनोहरा साध्वी भावज्ञा सा हिया भिया ॥२०७॥

सुनते हैं । हे ईश ! सब लोगोंसे पूजित होकर आप बड़ी ही शोभाको प्राप्त हो रहे हैं ॥ १६१ ॥ श्रीशिवजी बोले-इस प्रकार रामकी स्तुतिकर तथा उनसे पूजा-सत्कार प्राप्त करके गुप्तविग्रह अगस्त्य मुनि सब मुनियोंको साथ लेकर अपने आश्रमको चले गये ॥ १६२ ॥ जाते समय मुनिने अपना रूप विन्ध्याचलको इस डरसे नहीं दिखलाया कि वह कहीं फिर उठकर न खड़ा हो जाय ॥ १६३ ॥ उवर रामचन्द्रजी सीता, मन्त्रिगण तथा आताओंके साथ संसारी जीवोंके समान कीड़ा करते हुए अपने घरमें रहने लगे ॥ १६४ ॥ आसत्त न होते हुए भी अपनी प्रिया सीताके साथ ऐहिक विषयोंका आनन्द लेते रहे । हनुमान् आदि अच्छे वानर श्रीहरि-की सेवामें लग गये ॥ १६५ ॥ रमापति तथा लोकनाथ रामके शासनकालमें घरा घन-बान्धपूर्ण हो गयी, बृक्ष खूब फलने लगे ॥ १६६ ॥ मानवगण अपने-अपने धर्मपदपर चलने लगे और स्त्रियें पतिभक्तिपरायणा होकर रहने लगीं । रामके राज्यमें माता-पिताके जीते जी कहींपर पुत्रमरण नहीं होता था ॥ १६७ ॥ वे प्रभु राम-सीता, लक्ष्मण आदि भाइयों तथा वानरोंके साथ विमानपर सवार होकर अवनीतलपर विचरते थे ॥ १६८ ॥ पृथ्वीपर उन्होंने अनेक लोकोत्तर कार्य किये । परमात्मा रामने लोगोंको उपदेश देनेके लिए सर्वत्र करोड़ों शिव-लिंग स्थापित किये । परमानन्दस्वरूप परमेश्वर रामने मनुष्यका रूप धारण करके बहुतेरी दक्षिणावाले विविध अश्वमेघ यज्ञ किये । मनुष्योंको दुर्लभ अनेक भोगसाधनोंसे रामने सीताको सन्तुष्ट किया ॥ १६९ ॥ २०० ॥ ॥ २०१ ॥ परम धर्मज्ञ रामने न्यायपूर्वक राज्यका शासन करके लोगोंके पापोंको दूर करनेवाली अनेक कथाएँ स्थापित कीं ॥ २०२ ॥ त्रेतायुगके ग्यारह हजार वर्षं पर्यन्त लोगों द्वारा वन्दनीय चरणकमलवाले रघुनन्दनने धर्मपूर्वक राज्य किया । कलियुगके हिसाबसे रामने यहाँ भारह लाख ग्यारह वर्षतक राज्य किया । राजर्षि राम सर्वदा पवित्र रहकर एकपत्नीवत्तमें स्थिर रहे ॥ २०३-२०५ ॥ जिनके लिए पत्नीका वाक्य और बाण एक समान था । उन्होंने समस्त गृहस्थाश्रमका कार्य एकमात्र लोगोंको शिक्षा देनेके लिए किया था

युक्ता तं रंजयामास राजानं राघवं मुदा । एवं गिरीन्द्रजे प्रोक्तं रामराज्योत्तरोद्भवम् ॥२०८॥  
चरितं रघुनाथस्य यथा पृष्ठं त्वया मम । श्रवणात्सर्वपापञ्चं महामंगलकाष्टकम् ॥२०९॥

सारकाण्डमिदं देवि ये शृणवन्ति नरोत्तमाः ।

तेषां मनोरथाः सर्वे परिपूर्णा भवन्ति हि ॥ २१० ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे  
अगस्तिरामशिवपावर्तीसंवादे त्रयोदशः सर्गः ॥ १० ॥

प्रथमसर्गे श्लोकाः ॥ १०९ ॥ द्वितीये ॥ ३१ ॥ तृतीये ॥ ३९४ ॥ चतुर्थे १७० ॥ पंचमे ॥ १४० ॥  
षष्ठे ॥ १३० ॥ सप्तमे ॥ १६६ ॥ अष्टमे ॥ १२५ ॥ नवमे ॥ ३१० ॥ दशमे ॥ २७३ ॥ एकादशे  
॥ २८८ ॥ द्वादशे ॥ २०२ ॥ त्रयोदशे ॥ २१० ॥ एवं सारकाण्डस्य पूर्णश्लोकसंख्या ॥ २५५८ ॥

॥ २०६ ॥ सीता प्रेमके अनुकूल बर्ताविसे, नम्रतासे, लज्जासे, डरसे, पातिक्रत घर्मसे, मनोहरभावसे तथा  
पतिके मनोभावको जानकर उसके अनुसार व्यवहारसे राजा रामको प्रेमपूर्वक आनन्दित करने लगीं ।  
हे गिरीन्द्रजे ! इस प्रकार मैने तुमको रामके राज्यकालके बादका सब वृत्तान्त कह सुनाया, जैसा कि तुमने  
पूछा था । यह रामचरित्र श्रवणमात्रसे सब पापोंका नाशक तथा महामंगलकारी है ॥ २०७-२०९ ॥ हे  
देवि ! जो लोग इस सारकाण्डको अद्वासे सुनते हैं, उन नरश्रेष्ठोंके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं । इसमें तनिक  
भी सन्देह नहीं है ॥ २१० ॥ इति श्रीमच्छत्कोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे  
अगस्तिरामशिवपावर्तीसंवादे पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

इस सारकाण्डके पहिले सर्गमें १०९ श्लोक, दूसरेमें ३१, तीसरेमें ३९४, चौथेमें १७०, पाँचवेमें  
१४०, छठमें १३०, सातवेमें १६६, आठवेमें १२५, नववेमें ३१०, दसवेमें २७३, ग्यारहवेमें २८८,  
बारहवेमें २०२ तथा तेरहवेमें २१० श्लोक हैं । इस प्रकार इस सारकाण्डमें कुल २५५८ श्लोक हैं ।

\* इति श्रीमदानन्दरामायणे सारकाण्डं समाप्तम् \*

श्रीरामचन्द्रापंणमस्तु



श्रीरामचन्द्रो विजयतेराम्

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

# आनन्दरामायग्राम्

‘ज्योत्स्ना’ऽद्वया भाषाटीकयाऽटीकितम्

~~~~~

## यात्राकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( रामायणकी उत्पत्तिका वृत्तान्त )

श्रीपार्वत्युवाच

सारकांडं त्वया शंभो कीर्तिं बहुपुण्यदद् । मया श्रुतं तु पृच्छमि यत्तद्वक्तुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥  
कथं कृता वाजिमेधा राघवेण बलीयसा । रामादीनां चतुणाँ हि बन्धुनां सन्ततिं बद ॥ २ ॥  
स्त्रपुत्रबन्धुपुत्राश्च कथं ख्रीभिः सुयोजिताः । दशवर्षप्रहस्याणि दशवर्षशतानि च ॥ ३ ॥  
तथैकादश वर्षाणि त्रेतायुगमवानि हि । राज्यं कृतं त्वया प्रोक्तं विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥  
यानि यानि चरित्राणि राघवेण कृतानि हि । तानि तानि हि कृत्स्नानि विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥  
इति देविवचः श्रुत्वा शंभुस्तां पुनरत्रवीद् ।

श्रीमहादेव उवाच

मम्यक् पृष्ठं त्वया देवि राघवस्य कथानकम् ॥ ६ ॥

ममापि हर्षः संजातस्तद्वामि तत्त्वान्तिकम् । चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ७ ॥  
एकैकमक्षरं शुंसां महापातकनाशनम् । वाल्मीकिना कृतं पूर्वमेकदा तद्वामि ते ॥ ८ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीपार्वताजी बोली—हे शंभो ! आपने अतिपुण्यदायक सारकाण्डकी जो कथा कहा, सो मैंने सुनी । परन्तु अब मैं जो आपसे पूछती हूँ, वह कृपा करके कहें ॥ १ ॥ बलवान् रामने अश्वमेघयज्ञ किस प्रकार किये ? राम आदि चारों भाइयोंकी कौन-कौन-सी सन्ततियाँ हुईं ॥ २ ॥ रामने अपने पुत्रों तथा भाइयोंके पुत्रोंका किस प्रकार और कौन-कौन सी स्त्रियोंके साथ विवाह किया ? आपने कहा है कि रामने त्रेतायुगमें ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । अतएव ये सब वातें विस्तारपूर्वक कहें ॥ ३ ॥ ४ ॥ रामने जो जो चरित्र किये हों, वे सब आपके द्वारा सविस्तार कहनेके योग्य हैं ॥ ५ ॥ देवीके इस वचनको सुनकर शंभुने कहा । श्रीमहादेवजी बोले—हे देवि ! तुमने बहुत अच्छा किया कि जो रामकी कथा पूछी ॥ ६ ॥ इससे प्रसन्न होकर मैं तुमको रघुनाथजीका सौ करोड़ श्लोकोंमें कहा हूँआ चरित्र सुनाता हूँ ॥ ७ ॥ जिसका कि एक-एक अक्षर पुरुषोंके महान् पापोंको नष्ट करनेवाला है । वाल्मीकिने जो कार्य

वाल्मीकिस्त्वेकदा स्नातुं जगाम तमसां नदीम् । शिष्येण सहितो गत्वा भूमौ स्थाप्य कमङ्डलुम् ॥१॥  
 आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधि ततः । यावद्दृच्छति स्नानार्थं दर्भयाणिः स वै मुनिः ॥१०॥  
 तावद्दर्शं तमसातीरे कौतुकमुत्तमप् । कौचयुग्मे हतः कौचो निषादेन पतत्रिणा ॥११॥  
 कौची शोकसमाविष्टा विललापातिदुःखिता । वियुक्ता पतिना तेन द्विजेन सहचारिणा ॥१२॥  
 ताप्रथीपेण मत्तेन पत्रिणा सा हतेन च । तथाविधि द्विज दृष्टा निषादेन निषातितम् ॥१३॥  
 ऋषेवर्मात्मनस्तस्य कारण्यं समपश्यत । ततः करुणयाऽविष्टस्त्वधर्मोऽयमिति द्विजः ॥१४॥  
 निशम्य रुदतीं कौचीमिदं वचनमवर्वीत् । मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ॥१५॥  
 यत्कौचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् । तस्येत्थं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः ॥१६॥  
 शोकात्मनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया । चितयन्स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान् मतिम् ॥१७॥  
 शिष्यं चैवाव्रवीद्वाक्यमिदं स मुनिषुंगवः । पादवद्वोऽक्षरसमस्तंत्रीलयसमन्वितः ॥१८॥  
 शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे शोको भवतु नान्यथा । शिष्यम्तु तस्य ब्रुवतो मुनेवाक्यमनुत्तमम् ॥१९॥  
 प्रतिजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः । सोऽभिषेकं ततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन्यथाविधि ॥२०॥  
 तमेव चितयन्नर्थमुपावर्तत वै मुनिः । भारद्वाजस्ततः शिष्यो विनीतः श्रुतवान् गुरोः ॥२१॥  
 कलशं पूर्णमादाय प्रहृष्टश जगाम ह । स प्रविश्याश्रमपदं शिष्येण सह धर्मवित् ॥२२॥  
 उपविष्टः कथाश्चान्याश्चकार ध्यानमास्थितः । तत्राजगाम लोकानां कर्ता ब्रह्मा स्वयं प्रभुः ॥२३॥

पहिले एक समयमें किया था, सो तुम्हें सुनाता हूँ ॥ ८ ॥ एक समय वाल्मीकि मुनि अपने शिष्य भारद्वाजको साथ लेकर तमसा नदीपर स्नान करनेके लिए गये । वे रास्तेमें जमोनपर कमङ्डलु रस तथा आवश्यक शौच आदि कर्मसे निवृत होकर ज्योंही हाथमें कुशा ग्रहण करके स्नान करनेके लिए चले ॥ ९ ॥ १० ॥ त्योंही उन्होंने तमसा नदीके तटपर एक उत्तम कौतुक देखा । वह यह कि एक निषादने बाणसे कौच सथा कौचीके जीड़मेंसे कौच ( बगुले ) को मार डाला ॥ ११ ॥ तब कौची शोकातुर होकर अतिदुःखसे विलाप करने लगी । वह बैचारी अपने सहचर, तामेके समान लाल मस्तकवाले, मत्त और बाणसे मारे गये अपने पति पक्षीसे बिछुड़ गयी थी । निषादके द्वारा मारे गये उस पक्षीकी दशा देखकर धर्मात्मा वाल्मीकि ऋषिके मनमें बढ़ी करुणा उत्पन्न हुई । पश्चात् उस कौचीके दयाजनक रुदनको सुननेसे करुणाक्रान्त हो और 'यह बड़ा अघमं हुआ' ऐसा विचारकर मुनि बोले-॥ १२-१४ ॥ अरे निषाद ! तूने एक कामासुक्त जोड़ेके कौच पक्षीको मार डाला है । इसलिए तू भी अनेक वर्षोंतक प्रतिष्ठाको नहीं प्राप्त होगा अर्थात् बहुत काल पर्यन्त जीवित नहीं रहेगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार अनुष्टुप्-छन्दोबद्ध वाणी सहसा अपने मुखसे निकल पड़नेके कारण आश्रौचकित तथा कौचके शोकसे पीड़ित उन क्रृषिके मनमें 'ओह' । इस निषादको मैंने यह क्या कह दिया । इससे तो मुझे बड़ा भारी पाप लग गया । ऐसी चिन्ता होने लगी ॥ १६ ॥ ओह ! यह तो मुखसे बड़ा भारी अपयश देनेवाला काम हो गया । ऐसी चिन्ता करते हुए मनमें कुछ निश्चय करके महामतिमान् मुनिश्वेष्ट वाल्मीकिने अपने शिष्य भारद्वाजसे कहा-॥ १७ ॥ बत्स ! शोकवश होकर मैंने निषादको शाप दे दिया । यह हुआ तो अनुचित, तथापि शोकसे दुःखित होनेके कारण मेरे मुखसे बाठ अक्षरोंवाले चार चरणोंयुक्त समान पदोंसे विशिष्ट तथा ताल-लयपर गाने योग्य यह अनुष्टुप् छन्द श्लोकरूपमें ( यशरूपमें ) ही प्रवृत्त हो अपयशस्वरूप न हो ॥ १८ ॥ पश्चात् मुनिके इन श्रेष्ठ वाक्यों सुनकर उनके प्रसन्नवदन शिष्य भारद्वजने 'यह श्लोक आपके इच्छानुसार यशरूप ही होगा' ऐसा कहकर उनकी बातका समर्थन किया । इससे वाल्मीकि उनके ऊपर प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ तदनन्तर तमसा नदीके जलमें यथाविधि स्नान आदि कृत्य करके वे महर्षि 'मेरा अपयश कैसे यशरूपमें परिणत हो जाय' ऐसा विचार करते हुए अपने आश्रमकी ओर चल दिये ॥ २० ॥ उनके पीछे उनके विद्वान् और विनश्च शिष्य भारद्वाज भी जलका घड़ाभरकर चल पड़े ॥ २१ ॥ आश्रममें पहुँचनेपर भी वे "निषादको दिया हुआ शाप यशरूपमें कैसे परिणत हो?" इसी बातका मनमें

चतुर्मुखा महातेजा द्रष्टुं तं मुनिपुंगवम् । वाल्मीकिरथ तं दृष्टा सहसोत्थाय वास्यतः ॥२४॥  
 प्रांजलिः प्रयतो भूत्वा तस्थौ परमविस्मितः । पूजयामास तं देवं पाद्याध्यासनवंदनैः ॥२५॥  
 प्रणम्य विधिवच्चैनं पृष्ठा चैव निरामयम् । अथोपविश्य भगवानासने परमाचिते ॥२६॥  
 महर्षये वाल्मीकये संदिदेशासनं ततः । ब्रह्मणा समनुज्ञातः सोऽप्युपाविशदासने ॥२७॥  
 उपविष्टे तदा तस्मिन् साक्षात्लोकपितामहे । तद्देतेनैव मनसा वाल्मीकिध्यानमास्थितः ॥२८॥  
 पापात्मना कृतं कष्टं वैरग्रहणबुद्धिना । यस्तादृशं चारुरवं क्रौंचं हन्यादकारणम् ॥२९॥  
 शोचन्नेवं पुनः क्रौंचीमुपश्लोकमिर्म जगौ । पुनरंतर्गतमना भूत्वा शोकपरायणः ॥३०॥  
 तमुवाच ततो ब्रह्मन् प्रहसन् मुनिपुंगवम् । श्लोक एव त्वया बद्धो नात्र कार्या विचारणा ॥३१॥  
 मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती । रामस्य चरितं कुरु त्वमृषिसत्तम ॥३२॥

धर्मात्मनो गुणवतो लोके रामस्य धीमतः ॥३३॥

वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम् । रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः ॥३४॥  
 रामस्य सह सौमित्रेः कीशानां रक्षसां तथा । वैदेह्याश्चैव यद्वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः ॥३५॥  
 तच्चाप्यविदितं सबं विदितं ते भविष्यति । न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति ॥३६॥  
 कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम् । यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ॥३७॥  
 तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति । यावद्रामायणकथा त्वत्कृता प्रचरिष्यति ॥३८॥

विचार करते हुए वे घर्मज मुनि शिष्यके साथ बैठकर अन्यान्य वातें करने लगे ॥ २२ ॥ इतनेमें वहाँ समस्त लोकोंके कर्ता चतुर्मुख प्रभु महातेजस्वी ब्रह्मा उन मुनिश्वेषसे मिलनेके लिए आ पहुँचे ॥ २३ ॥ उनको अचानक बाते देखकर वाल्मीकि मुनि विस्मयान्वित तथा अवाक् हो गये । परन्तु वे तुरन्त हाथ जोड़कर नम्रतासे उनके सामने खड़े हो गये ॥ २४ ॥ पञ्चात् धीरेसे मनको स्थिर करके मुनिने ब्रह्माजीसे कुशल-समाचार पूछा तथा पाद्य, अर्ध्य, आसन, स्तुति, प्रणाम आदिसे उनका सत्कार किया । ब्रह्माजीने भी उनके तप आदिका कुशल पूछा और अपने लिए बिछाये हुए आसनपर स्वयं बैठकर वाल्मीकिजीको भी आसनपर बैठनेके लिए कहा । लोकोंके साक्षात् पितामह ब्रह्माजीके आसनपर बैठ जानेपर उनकी आज्ञासे वाल्मीकि ऋषि भी बैठ गये ॥ २५-२७ ॥ किन्तु उस समय भी उनका मन क्रौंचपक्षीके विषयमें ही सीच रहा था कि पापी अन्तःकरण तथा निर्दोष जीवोंपर मिथ्या वैरभाव रखनेवाले उस व्याघने यह बड़ा कष्टप्रद काम किया ॥ २८ ॥ जो कि सुन्दर बोली बोलनेवाले, निर्दोष तथा कामके वशीभूत उस पक्षीको बिना कारण ही मार डाला और मैने भी उस व्याघको शाप दे दिया, सो भी बड़ा खराब काम हुआ । ऐसे विचारमें मग्न और शोकमें ढूँढ़े हुए वाल्मीकि क्रौंचका शोक करते हुए फिर वही बात मनमें सोचने लगे । बादमें उन्होंने व्याघको शाप देते समय जो श्लोक कहा था, उसीको उन्होंने ब्रह्माजीके सम्मुख कहा । उसको सुनकर ब्रह्माजी हँसकर मुनिसे कहने लगे ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे त्रिपूर ! तुम्हारा एकाएक कहा हुआ यह श्लोक यशके रूपमें परिणत हो जायगा । इसमें तुम तनिक भी संशय न करना । वह तो मेरी इच्छा तथा प्रेरणासे ही तुम्हारे मुखसे यह सरस्वती प्रवृत्त हुई है ॥ ३१ ॥ हे मुनीश्वर ! तुम मेरी आज्ञासे धर्मात्मा भगवान् अखिललोकके स्वामी परम बुद्धिमान् राजा रामका संपूर्ण चरित्र रचो ॥ ३२ ॥ धर्मयाली तथा बुद्धिमान् रामका जो चरित्र तुमने नारदसे सुना है, वह तथा और जो गुप्त या प्रकट चरित्र हो, उसको तुम रचकर प्रकाशित करो ॥ ३३ ॥ सुमित्रासुत लक्ष्मण सहित रामचंद्रका, द्वानरोंका, सब राजसोंका तथा सीताका गुप्त अथवा प्रकट जो जो वृत्तान्त तुम न जानते होंगे, वह सब भी मेरी कृपासे जान जाओगे और रामके चरित्रसे भरे हुए उस काव्यमें निहित तुम्हारो वाणी असत्य नहीं हीगी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तुम ऐसे श्लोकोंमें ही मनको आनन्द देनेवाली पवित्र रामकथा लिखो । जबतक संसारमें नदी-पर्वत रहेंगे, तबतक तुम्हारी रची हुई रामकथा भी लोगोंमें प्रचारित होती रहेगी । जबतक तुम्हारी रची हुई रामकथा पृथ्वीमण्डलपर स्थित रहेगी, तबतक तुम भेरे ऊपरके तथा नीचेके सब लोकोंमें

तावदूर्ध्वमधश्च त्वं मल्लोकेषु निवत्स्यसि । इन्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा स्वयं रामस्य धीमतः ॥३९॥  
चरित्रं श्रावयामास वेदवाक्यैः सुपुण्यदैः । ततस्तेनाचिंतो ब्रह्मा तत्रवांतरधीयत ॥४०॥  
ततः सशिष्यो भगवान् मुनिर्विस्मयमाययौ । तस्य शिष्यास्ततः सर्वे जगुः श्लोकमिमं पुनः ॥४१॥  
मुहुमुहुः प्रीयमाणाः प्राहूच्च भृशविस्मिताः । समाक्षरं श्रुतिर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा ॥

सोऽनुव्याहरणाङ्गूयः शोकः श्लोकत्वमागतः । ४२॥

तस्य ब्रुद्धिरियं जाता महर्षेभावितात्मनः । कृत्स्नं रामायणं काम्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥४३॥  
उदारवृत्तार्थपद्मनोरमैस्तदाऽस्य रामस्य चकार कीर्तिमान् ।  
समाक्षरैः श्लोकवर्णर्यशस्त्रिनो मुनिः स काव्यं शतकोटिसंमितम् ॥४४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे  
श्लोकोत्पत्तिरामायणकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

### द्वितीयः सर्गः

श्रीशिव उवाच

वाल्मीकिना कृतं देवि शतकोटिप्रविस्तरम् । रामायणं महाकाव्यं जगृहुमुनयश्च ते ॥ १ ॥  
आश्रमे तत्पठति स्म कथयन्ति स्म ते मुदा । तच्छ्रोतुममराः सर्वे विमानैश्च दिवि स्थिताः ॥ २ ॥  
श्रुत्वा सर्वं सविस्तारं वाल्मीकिं पुष्पवृष्टिभिः । ववर्षुर्जयशब्देस्ते प्रशशंसुमुनीश्वरम् ॥ ३ ॥  
ततो देवाः सगंधर्वा यक्षा नागाः सकिन्नराः । मुनीश्वरा गुह्यकाशं पायिन्वाः पश्चभूस्त्वहम् ॥ ४ ॥  
परस्परं ते कलहं चक्रुः कार्यार्थमादरात् । ब्रह्माद्या निर्जराः सर्वे पन्नगान्दितिजान्नरान् ॥ ५ ॥  
वयं काव्यं विनेष्यामो दिवं वाल्मीकिना कृतम् । दितिजाः पन्नगाः प्रोचुर्विनेष्यामो रसातलम् ॥ ६ ॥

सुखसे रहोगे । इतना कहकर स्वयं भगवान् ब्रह्माने पुण्यप्रद वेदवाक्यों द्वारा ब्रुद्धिमान् रामका चरित्र उन्हें कह सुनाया । पञ्चात् मुनिसे पूजित होकर ब्रह्मा वहोपर अन्तर्घनि हो गये ॥३६-४०॥ तब शिष्यों सहित भगवान् वाल्मीकि मुनिको बड़ा भारी विस्मय हुआ और उनके शिष्य उस श्लोकको बारम्बार आनन्दसे गाने लगे ॥ ४१ ॥ महर्षिने समान अक्षरोंवाला तथा चार चरणों युक्त जिस श्लोकको गाया था, उसीको ये शिष्य भी प्रसन्न होकर आश्रयसे परस्पर कहने-सुनने लगे ॥ ४२ ॥ उस श्लोकको मुनि शोकवश बार-बार कहते थे । अन्तमें वहो शोक श्लोक ( यश ) रूपमें परिणत हो गया । पञ्चात् उन शुद्धात्मा महर्षिकी यह इच्छा हुई कि मैं इसी प्रकारके श्लोकोंमें समस्त रामायणका निर्माण करूँ ॥ ४३ ॥ अन्तमें उन कार्तिमान् मुनिने मनको आनन्द देनेवाला तथा जिससे उदार चरित्र भरे अयोक्ता ज्ञान प्राप्त हो, ऐसे पद और समान अक्षरोंवाले सौ करोड़ श्लोकोंवाला यशस्वी रामका काव्य ( रामायण ) रचा ॥ ४४ ॥ इति श्रीशतकोटि-रामचरितास्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे भाषाटोकायां श्लोकोत्पत्तिरामायणकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीशिवजो बोले-हे देवि ! वाल्मीकि मुनिका बनाया हुआ सौ करोड़ श्लोकात्मक उस महाकाव्य रामायणको सब मुनियोंने अपनाया और वे हृष्पपूर्वक उसे अपने आश्रमोंमें पढ़ने तथा सुनने लगे । उसको सुननेके लिए सब देवता विमानोंमें बैठकर आकाशमें ला गये ॥ १ ॥ २ ॥ उन लोगोंने विस्तारपूर्वक सम्पूर्ण रामायण सुना और मुनीश्वर वाल्मीकिकी स्तुति करके जयजयकार करते हुए उनपर पुष्पवृष्टि की ॥ ३ ॥ बादमें देवता, गंधर्व यक्ष, नाग, किन्नर, मुनिगण, गुह्यक, राजे-महराजे, ब्रह्मा तथा मैं सब एक साथ उस रामायण महाकाव्यकी प्राप्तिके लिए परस्पर आदरपूर्वक ज्ञगड़ने लगे । ब्रह्मादि देवता पन्नगों, देवत्यों तथा मनुष्योंसे कहने लगे कि इस वाल्मीकीय काव्यको हमलोग स्वर्गमें ले जायेंगे । देवत्य तथा पन्नत कहने लगे कि हम

वयं काव्यं राघवस्य चरित्रं पावन शुभम् । ऋषीश्वराः सभूपालाः प्रोचुः काव्य हि भूतलान् ॥७॥  
 नेतुं रसातलं स्वर्गं न दास्यामा वयं त्विदम् । काव्यार्थमिति ते चकुः कलहं रोमहर्षंम् ॥८॥  
 ततो देवि जनान् सर्वान्निदार्य चच्नैनिंजैः । गत्वाऽहं तंस्तु क्षीरावधौ शेषपर्यङ्कशायिनम् ॥९॥  
 विष्णुं स्तुच्चा तु वेदोक्तैर्मन्त्रैनानाविधैरपि । नानापूजोपहारैश्च पूजयित्वा सविस्तरम् ॥१०॥  
 कृतवान् गीतवाद्यादि तेन विष्णुरुद्युध्यत । पप्रच्छ मां तदाविष्णुः किमर्थं दोधितोऽस्म्यदप्तम् ॥११॥  
 वृत्तं सर्वं मया देवि कथितं तत्सविस्तरम् । काव्यार्थं कलहं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः ॥१२॥  
 त्रिधाविभज्य काव्यं तत् क्षणेन भक्तवत्सलः । त्रयस्त्रिशत्कोटिलक्षमहस्ताणि पृथक् पृथक् ॥१३॥  
 शतानि ख्वोणि श्लोकांश्च त्रयस्त्रिशत्कुभावदान् । दशाक्षरमितान्मत्रान्वयभज्यत रमापतिः ॥१४॥  
 द्वंद्वधरे याचमानाय मत्त्वं शेषे ददौ हरिः । उपादिशाम्यहं काश्यां तेऽन्तकाले नृगां श्रुतौ ॥१५॥  
 रामेति तारक मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति । लक्ष्मीगरुडशेषेभ्यो याचमानेभ्य आदरात ॥१६॥  
 मन्त्रत्रयं पृथक् विष्णुर्ददौ तेभ्योऽतिहिष्टिः । शेषान् निनाय पातालं लक्ष्मीर्वेकुण्ठमादरात् ॥१७॥  
 पृथिव्यामेव गरुडस्तं दधार महामनुम् । प्रापुः शेषात्पन्नगाद्याः सर्वे पातालवासिनः ॥१८॥  
 स्वर्गे प्रापुर्महालक्ष्म्यास्तं मनुं निजंरादयः । ताक्ष्यात्प्रापुर्महामन्त्रं सर्वं भूतलवासिनः ॥१९॥  
 मन्त्रशास्त्रात्तस्वरूपं ज्ञेयं गुह्यं गिरीन्द्रजे । ततः पूर्वविभागान्म ददौ विष्णुः पृथक् पृथक् ॥२०॥  
 एवं विभागं देवेभ्यो द्वितीयं पतमश्वरः, मुनीश्वरेभ्यो नागेभ्यस्त्रीय भागमुन्मम् ॥२१॥  
 ततो देवा निजं भाग स्वर्गं निन्युर्मुदान्विताः । पाताले पन्नगाद्याश्च निन्युर्भागं मुदा निजम् ॥२२॥

लोग इसे रसातलमें ले जायेंगे ॥ ४-५ । क्योंकि इस काव्यमें पवित्र तथा सुन्दर रामचन्द्र वर्णित है ।  
 तब राजा-प्रजा और ऋषि लोगोंने कहा कि हम इस काव्यको भूतलपरसे न ता स्वर्गमें ले जाने देंगे और  
 नहीं पातालमें । इस प्रकार वे सब रामायणके लिए परहरर रोमहर्ष ह वाग्मुद्द करने लगे ॥ ६ ॥ ८ ॥  
 हे देवि ! पश्चात् मैंने उन सबको समझा-बुझा कर कलह करनेसे रोका और उन सबको माय लेकर मैं क्षीर-  
 समुद्रमें शेषशाय्यापर शयन करनेवाले विष्णुभगवान्के पास गया और नाना प्रकारकी पूजाकी वस्तुओंसे  
 विस्तारपूर्वक पूजा करके अनेक वेदमंत्रोंसे उनकी स्तुति की ॥ ६ ॥ १० ॥ तदनन्तर उनके सामने बाजे बजाकर  
 गाना प्रारंभ किया । उससे विष्णु भगवान् जागे और कहने लगे कि तुमने मुझको क्यों जगाया ? ॥ ११ ॥ हे  
 देवि ! तब मैंने सब हाल साफ-साफ कह सुनाया । जगन्नियंता विष्णुभगवान् रामायण महाकाव्यके लिए होने-  
 वाले कलहको सुनकर हँस पड़े ॥ १२ ॥ उन भक्तवत्सल भगवान्ने क्षणभरमें उस काव्यके तीन भाग कर दिये ।  
 उनमेंसे प्रत्येक भाग तेतीस करोड़ तेतीस लाख, तेतीस हजार तीन सौ तेतीस श्लोकोंका बना । उन रमापतिने  
 दस-दस अक्षरोंवाले मंत्रोंका भी विभाजन किया ॥ १३ ॥ १४ ॥ बाकी दो अक्षर थोड़हिने दा हो अक्षरोंका  
 याचना करनेवाले मुझ (शिव) को दे दिया । मैं काशोंमें रहता हुआ अंतकालमें उन्हों दो अक्षरोंका  
 मनुष्योंके कानमें उपदेश करता हूँ ॥ १५ ॥ हे पावनो ! उन दो अक्षरोंको ही तुम 'राम' नामका तारक-  
 मंत्र समझो । अर्थात् वही दो अक्षरका 'राम' यह तारक मंत्र है । पश्चात् वह आरंसे मौजने-  
 पर विष्णु भगवान्ने अनिशय प्रसन्न होकर लक्ष्मी, गरुड और शेषनगको भी अलग-अलग तीन मन्त्र प्रदान  
 किये । शेष भगवान् अपने मंत्रको पातालमें, लक्ष्मी वैकुण्ठमें और गरुड उस महामंत्रको बड़ी चावसे पृथ्वीपर  
 ले गये ॥ १६ ॥ १७ ॥ शेषके द्वारा पातालमें गया हुआ मंत्र पातालवासी नागोंको प्राप्त हो गया ॥ १८ ॥  
 स्वर्गमें लक्ष्मीके द्वारा वह मंत्र सब देवताओंको मिला और भूतलवासी लोगोंको वह मंत्र गरुडसे प्राप्त  
 हुआ ॥ १९ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! उन मंत्रोंका गुप्तस्वरूप मंत्रशास्त्रोंसे जाना जा सकता है । तदनन्तर रामायणके  
 किये हुए तीनों भागोंको विष्णुने अलग-अलग बाट दिया ॥ २० ॥ उनमेंसे तेतीस करोड़ तेतीस लाख  
 तेतीस हजार तीन सौ तेतीस ३३३३३३३३३३ मंत्रोंका एक भाग उन्होंने देवताओंको दिया । ३३३३३३३३३३ का  
 दूसरा भाग मुनीश्वरोंको पृथ्वीतलके लिए दिया और ३३३३३३३३३ का तीसरा भाग नागोंको दिया ॥ २१ ॥

आर्माद्वागो मुनीनां हि पृथिवयां गिरिवरात्मजे । तस्यापि विस्तर वक्ष्ये विभक्तो विष्णुना यथा ॥२३॥  
सप्तद्वापेषु सर्वं पु विभक्तः सप्तधा पुनः । कोश्यथत्वारि लक्षाणि पट्सप्ततिमितानि हि ॥२४॥  
सहस्राणि तर्थशानविशच्चेत् तथा पुनः । सप्तवलारिशनिमताः क्षाकाशेति पृथक् पृथक् ॥२५॥  
विभक्तं सप्तधा देवि सप्तद्वापेषु विष्णुना । चतुःश्योकाः शेषभूता याचमानाय वेघसे ॥२६॥  
ददी विष्णुस्तुष्टमना निजभक्ताय भक्तिः । पुष्करद्वापभागश्च वर्षयोद्दिविधः कृतः ॥२७॥

कोश्यां द्वं शत्रिश्च लक्षाणि हि तथा पुनः । सहस्राणि नववाय तथा पंचशतानि हि ॥२८॥  
त्रयोर्विशाश्च ते क्षाकाः पोडशाक्षरजो मनुः ।  
एवं द्विधा कृतौ भागी विष्णुना वर्षयोस्त्वह ॥२९॥

शाकद्वापादिद्वापानां पंचानां च पृथक् पृथक् ।

सप्तस्वपि च वर्षेषु सप्तव द्विशाणा यथा । तत्तद्वागा विभक्ताश्च तात्त्वाणुष्व ब्रवीम्यहम् ॥३०॥  
अष्टपदि हि लक्षाणि सहस्रं द्वे शतानि हि । सप्तव च तथा क्षोका एकविंशत्त्वच्छुभप्रदाः ॥३१॥  
विभज्य पृथम् द्वीपेषु हरिणैः वधाकमन् । जम्बूद्वीपगतो भाजो नववर्षेषु सादरम् ॥३२॥  
विभक्तो विष्णुना देवि यथा त्वां च ब्रवीम्यहम् । द्विपञ्चशात् लक्षाणि तथा गिरिवरात्मजे ॥३३॥  
सहस्राण्येकनवतिश्लोकाः एत्र तथा पुनः । सप्ताक्षरमिता मंत्रास्त्वेव हि नवधा कृताः ॥३४॥  
प्रेषमेकमक्षरं श्रीरिति सर्वत्र विष्णुना । नववर्षेषु तत्त्वक्तं तत्सर्वत्र न्योजयत् ॥३५॥  
नानानामसु मंत्रेषु न तस्य नियमः कृतः । विभज्येति महाविष्णुरदश्यमगमत्तदा ॥३६॥  
अग्रे कालात्मे देवि दशास्यो बुद्धिमत्तरः । निजबुद्धिमत्तादेव वेदानां च पृथक् पृथक् ॥३७॥  
शतशर्थं खण्डानि करिष्यति ऋज्ञनि च । ज्ञात्वा मंदधिषं विश्रा भविष्यन्तीति वै कल्पौ ॥३८॥

देवना अपने भागको बड़ी प्रसन्नतासे देवलोकमें ले गये । पत्रगगण अपने भागको सहृपं पातालमें ले गये । हे गिरीन्द्रजे । उसका सीसरा हिस्सा पृथक्षीपर रह गया । उस पृथक्षीतलके भागको भो जिस प्रकार विष्णु-भगवान्ने बाँटा, सो हम तुमको विस्तारसे कह मुनाते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ उस पृथक्षीतलके भागको विष्णुने पृथक्षीक सात द्वीपोंमें बाँटा । उनमेंसे हर एक द्वापका चार कराड़ छिह्नतर लाख उच्चीस हजार सेतालास ( ४७६१५०४ ) श्लोक दिये । उन भागोंमें वर्चे हुए चार श्लोक विष्णुने प्रसन्न होकर अपने भक्त ब्रह्माको भक्तिपूर्वक माँगनेपर दे दिये । उन भागोंमें भा पृष्ठद्वापवाले भागके दो भाग किये ॥ २४-२७ ॥ पुष्कर-द्वापके अन्तर्गत दो वर्षों (खण्डों) को दो कराड़ अक्षतोंस लाख नौ हजार पाँच सौ तेर्इस ( २३८१५२३ ) पोडशाक्षर मंत्ररूप श्लोक जलग-अलग करके दे दिय ॥ २८ ॥ २९ ॥ पश्चात् विष्णुमगवान्ने शाकद्वीप, कौचद्वीप, शतस्तलाद्वाप, छक्षद्वीप और कुण्डद्वीप इन पाँचों द्वापोंके हिस्सोंका भी उसमेंसे हर एकके अन्तर्गत नौ-नी देशोंमें बाँट दिया । उनको कितना-कितना मिला सा कहता हूँ ॥ ३० ॥ उनमेंसे हर एक वर्षको अड़सठ लाख दो हजार सात सौ एककास ( ६८०२७२१ ) सुन्दर श्लोक प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ इस प्रकार श्रीहरिने छः द्वीपोंके भागोंको विभक्त करनेके अनन्तर सातवें जंबूद्वीपके भागको भो उसके अन्तर्गत भारत आदि नौ वर्षोंको बड़े प्रेमसे बाँट दिया ॥ ३२ ॥ हे देवि ! जैसा विष्णुने उसका विभाजन किया, वह तुमसे कहता हूँ । हे गिरिवरात्मजे ! बावन लाख एव्यान्तवे हजार पाँच ( ५२६१००५ ) सप्ताक्षरात्मक मंत्ररूप श्लोक उन्होंने बराबर-बराबर नौ भागोंमें बाँटकर नवों खण्डोंको दे दिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ शेष वर्चे “थ्री” इस एक अक्षरको विष्णुने नवों खण्डोंके लिए छाँड़ दिया । यह सब प्रकारके मन्त्रोंमें लगाया जा सकता है । इसका कोई नियम नहीं है । इस प्रकार विभाजन करनेके बाद विष्णुभगवान् अदृश्य हो गये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे देवि ! आगे चलकर कलियुगमें बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ दशवदन रावण कम बुद्धिवाले, व्याकुलवित तथा अल्पायु श्राहूणोंको देखकर अपनी बुद्धिके प्रभावसे वेदोंके संकड़ों भाग अलग-अलग करके उन श्राहूणोंके

क्षीणायुपो व्यग्रचित्तास्तेपां योग्यानि रात्रः । श्रीकृष्णोऽपि पुनर्देवि व्यासहप्त्वो भुवि ॥३९॥  
 मानवानां हितार्थीय काव्याद्रामायणान्पुनः । भागद्वारतवर्षान्तर्ताच विविधानि हि ॥४०॥  
 पृथक् पृथक् सप्तदश पुराणानि करिष्यन्ति । भागते वितिहासं च महत्त्वेषु करिष्यन्ति ॥४१॥  
 भागद्वारतवर्षान्तर्ताच विगृह्य च । स व्यासो भागतार्थीय यदा शान्तिं न गच्छति ॥४२॥  
 सरस्वत्यास्तेपां व्यासो व्यग्रचित्तो भविष्यति । एतस्मिन्द्वारते ब्रह्मा नारदाय महात्मने ॥४३॥  
 चतुःश्लोकैविंश्टदत्तरूपदेशं करिष्यन्ति । लब्ध्वा तान् नारदश्चापि मुक्तीणां रणयन्मुहुः ॥४४॥  
 कीर्तयन् सुस्वरं गन्त्वा मुनिं सन्धवतीसुनम् । ताऽऽनेकान् व्यासमुनये गतदा शुपदेश्यति ॥४५॥  
 लब्ध्वा व्यासमुनिः श्लोकांस्तान्मायणयस्मिन्नान् । शान्तिं लब्ध्वा ततस्तेपां विस्तारं च करिष्यति ।  
 तेपामेवार्थमादाय पुराणं परमोदयम् । अष्टादशमहम् हि श्रीमद्वागवताभिधम् ॥४६॥  
 करिष्यत्यष्टादशमं रम्यं जनमनोहरम् । भागवतस्यात एव वाणी मिन्ना भविष्यति ॥४७॥  
 पुराणानां च सर्वेषां वाल्मीकीयैव र्गाः प्रिये । पृथक्तां स्मृतो व्यासः श्रीमद्वामायणं शतम् ॥४८॥  
 करिष्यति तथान्वानि स व्यासो विविधानि च । रघाण्यपुराणानि सारं सारं विगृह्य च ॥४९॥  
 भागद्वारतवर्षान्तर्ताच विगृह्यते । करिष्यन्ति तथान्वेऽपि पट्टशस्त्राणि मुनीश्वराः ॥५०॥  
 तस्माद्रामायणादेव सारमुद्भूत्य सादरात् । यत्किञ्चिद्दिग्निजे भूम्यां कीर्त्यते वै कथानकम् ॥५१॥  
 रामायणांशजं विद्वि श्लोकमात्रमपीह यत् ।  
 पार्वत्युग्राच

शभो ते प्रष्टुमिन्द्वामि व्यासाय नारदो मुनिः ॥५२॥

स्वयं ज्ञात्वा विधिमुखाद्रम्यान्पातकनाशनान् । तान् रामचरितश्लोकांश्चतुरश्चोपदेश्यति ॥५४॥  
 यैः करिष्यन्ति स व्यासो मुनिर्भागवतं वरम् । ताऽश्लोकांश्चतुरस्त्वं मां कृपया वक्तुमर्हसि ॥५५॥

योग्य बनायेगा । हे देवि ! इसके अतिरिक्त स्वयं श्रीकृष्ण भी पृथ्वीपर व्यासका रूप धरकर अवतार लेंगे और मनुष्यके कल्पाणके लिए भारतवर्षके भागवाले रामायण काव्यसे विविध प्रकारके पृथक् पृथक् सब्रह पुराण रचेंगे । वे सर्वोत्तम तथा बड़ा भारी महाभारत नामका सुन्दर इतिहास भी लिखेंगे ॥ ३७-४१ ॥ जो भारतवर्षीय रामायणके भागका सारांश होगा । उन भारत आदि ग्रंथोंका निर्माण करनेपर भी जब व्यासजीको सन्तोष न होगा, तब वे व्यग्र होकर सरस्वती नदीके किनारे बैठेंगे । उसी अवसरपर ब्रह्माजी भी विष्णुप्रदत्त चार श्लोकोंका नारदको उपदेश करेंगे । नारदजी उन श्लोकोंको प्राप्त करके अपनी सुन्दर वीणाको बारम्बार बजाते तथा सुन्दर स्वरसे गाते हुए सत्यवतीके पुत्र व्यास मुनिके पास जाकर उनको उन श्लोकोंका उपदेश देंगे ॥ ४२-४५ ॥ व्यास मुनि उसी रामायणके चार श्लोकोंको प्राप्त करके बड़े शान्त चित्तसे उनका विस्तार करेंगे । उनके अर्थका आध्रय लेकर परम उदार अर्थवाले, अठारह हजार श्लोकात्मक, रमणीय और मनुष्योंके मनको मोह लेनेवाले अठारहवें 'श्रीमद्वागवत' नामक महापुराणका निर्माण करेंगे । इसीलिए भागवतकी भाषा भी भिन्न प्रकारकी होती अर्थात् अन्यान्य पुराणोंमें उनका लेख विलक्षण होगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे प्रिये ! सब पुराणोंकी भाषा वाल्मीकीयके समान ही है । तथापि शतरामायणके कर्ता व्यास अलग ही गिने जायेंगे । वैद्यत्यास भूमिमें भारतवर्षीय रामायणके भागका सार ग्रहण करके और भी बहुतसे मनोहर उपपुराण बनायेंगे । इसी प्रकार उस रामायणका सारभाग लेकर अन्यान्य मुनीश्वर छः शास्त्रोंका निर्माण करेंगे । हे गिरिजे ! पृथ्वीमण्डलपर और भी जो कुछ श्लोकात्मक तथा पद्यात्मक कथा मिले तो उसे भी तुम रामायणके अंशसे ही उत्पन्न समझो । पार्वतीजी बोलो—हे शंभो ! मैं आपके मुखारविन्दसे रामचरित्रके उन चार श्लोकोंको सुनना चाहती हूँ, जिन पापनाशक श्लोकोंको नारदने ब्रह्माके मुखसे सुनकर व्यासको सुनाया था ॥ ४८-५४ ॥ जिनके आवारपर व्यासमुनि अपूर्व भागवत ग्रंथको रचेंगे, उन चार श्लोकोंको कृपा करके

श्रीशिव उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया देवि सावधानमनाः शृणु । नारदोक्तांश्ततुःश्लोकांस्तवाग्रे ग्रवदाम्यहम् ॥५६॥  
नारदायापि कथिता विधिना ये पुरा शुभाः । ब्रह्मणे विष्णुना पूर्वं श्रारामचरितं यदा ॥५७॥  
विभक्तं हि तदा दत्ताः शेषभूताः सुपुण्यदाः । तान् शृणुष्व चतुःश्लोकान् विष्णुनोक्तान्स्वयंभुवे ॥

श्रीभगवानुवाच

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् । पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥५९॥  
भूतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि । तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥६०॥  
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु । प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥६१॥  
एतावदेव जिज्ञास्य तच्चजिज्ञासुनाऽस्त्वमनः । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥६२॥

श्रीशिव उवाच

एवं श्लोका भगवता चत्वारश्च प्रकीर्तिः । वेदसे ये तवाग्रे ते कीर्तिः देवि वै यथा ॥६३॥  
एते पवित्राः पापद्वना मत्यानां ज्ञानदायकाः । अज्ञाननाशनाः सद्यः कीर्तनीया नरोन्मैः ॥६४॥  
एवं देवि त्वया पृष्ठं यथा तत्ते निवेदितम् । कथामारभिता पूर्वमध्युना शृणु वचम्यहम् ॥६५॥  
ततो रामायणं व्यासो विघ्वस्तं मुनिभिः पुनः । कृत्वैकत्र शेषभूतं सप्तकांडभितं शुभम् ॥६६॥  
चतुर्विश्वति साहस्रं रक्षिष्यति मुनिस्तदा । आदावन्ते ततस्तस्य श्लोकास्तत्र कियन्ति हि ॥६७॥  
चतुर्विश्वतिसाहस्रं व्यासस्य रचिता अपि । भविष्यन्ति गिरिजेऽग्रे मंगलाचरणादिषु ॥६८॥

आप अवश्य मुझसे कहें ॥ ५५ ॥ शिवजीने कहा—हे देवि ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । अब उन श्लोकोंको सावधान होकर सुनो । मैं उन नारदोंके चार श्लोकोंको सुनाता हूँ ॥ ५६ ॥ उससे भी पहिले नारद-के समक्ष श्रीरामके चरित्रस्वरूप वे ही चार श्लोक विष्णुने ब्रह्मासे कहे थे ॥ ५७ ॥ उन्हें विष्णुने ब्रह्मासे उस समय कहा था, जब कि उन्होंने रामायणका विभाजन किया था । उन बचे हुए पुष्पप्रद तथा विष्णुके द्वारा ब्रह्माको मिले हुए चार श्लोकोंको मन लगाकर अवण करो ॥ ५८ ॥ श्रीभगवानुने कहा था—इस चराचर प्रपञ्चात्मक तथा पांचभौतिक संसारके उत्पन्न होनेके पूर्वं न कोई सद्वस्तु थी और न असद्वस्तु । केवल सबका कारण तथा सृष्टिका बोजरूप मैं ही था । उसी प्रकार प्रलयके पश्चात् भी जो कुछ कार्यसमूहका अधिष्ठान-स्वरूप अवशिष्ट रहता है, वह भी एकमात्र मैं ही हूँ ॥ ५९ ॥ जो वास्तविक वस्तु न होनेपर भी सद्विचारके क्षेत्रवाले वास्तविकरूपसे जान पड़ती है, परन्तु जब आत्म-अनात्मदिव्ययक तत्त्वविचार किया जाता है, तब आत्माके अतिरिक्त जिसकी कोई सत्ता नहीं जान पड़ती, जड़ स्वभाववाली, भ्रान्तिवशात् आत्माको आच्छादित करनेवाली, आत्मसंबन्धिनी मायाको मृगमरीचिकाके आभासकी तरह तथा आकाश-की नीलिमाकी तरह मिथ्या जानना चाहिये ॥ ६० ॥ जिस तरह पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूत अन्यान्य भौतिक वस्तुसमूहमें अनुस्यूत होनेपर भी उनसे अलग दिखाई देते हैं । उसी तरह मैं पञ्चमहाभूतोंमें व्याप्त होनेपर भी उनसे अर्थात् समस्त भौतिक संसारसे अलिप्त रहता हूँ ॥ ६१ ॥ बस, आत्मतत्त्वके जिज्ञासुओंको सदा और सब जगह अन्वय-अप्यतिरेकसे उपर्युक्त बातोंका निश्चय करके आत्मतत्त्व तथा मायाको पृथक्-पृथक् विरुद्ध-घम्बवाली जान लेना चाहिए । यही व्यापक नियम है ॥ ६२ ॥ शिवजी बोले—हे देवि ! भगवान् नारायणने जो चार श्लोक ब्रह्मासे कहे थे, वे मैंने तुम्हें कह सुनाये ॥ ६३ ॥ ये श्लोक पवित्र, पापनाशक, मृत्युलोक प्राणियोंको उत्तम ज्ञान देनेवाले तथा शोषण अज्ञानरूपो अन्वकारको दूर करनेवाले हैं । अतः समसदार मनुष्योंको निरन्तर इसका अवण, मनन और कीर्तन करते रहना चाहिये ॥ ६४ ॥ हे देवि ! जो तुमने पूर्वमें आरम्भिक किया पूछी, सो मैंने तुमसे कही । आगे जो कहता हूँ, वह भी सुनो ॥ ६५ ॥ बादमें मुनियोंके द्वारा इधर उधर बिखरे हुए रामायणको व्यासमुनि फिरसे एकत्र करके सुन्दर सात कांडोंमें चौबीस हजार श्लोकयुक्त बनाकर उसकी रक्षा करेंगे । इसी कारण चौबीस हजार श्लोकोंवाली उस रामायणके आदि तथा अन्तमें मंगलाचरण आदिके प्रकरणमें व्यासरचित् और भी कुछ श्लोक दृष्टिगोचर होंगे ॥ ६६-६८ ॥ हे देवि !

रामायणान्यनेकानि पृथग्ये मुनीश्वराः । भागाद्वारतखण्डान्तर्गतात्कुभोद्भवाद्यः ॥६९॥  
 करिष्यत्यत्र शतशस्तानि सर्वाणि पार्वति । वाल्मीकीयाद्विना देवि न ज्ञेयानि मनीषिभिः ॥७०॥  
 सारकाण्डं पुरा देवि यदुक्तं च मया तव । वाल्मीकीयाच्च तच्चापि सारमुद्रत्य वै मया ॥७१॥  
 निवेदितं च श्वेतुना पृष्ठं गमकथानकम् । सविस्तारं वदस्वेति त्वया तस्मान्मयोदितम् ॥७२॥  
 मानं रामचरित्रिस्य शतकोटिप्रविस्तरम् । पञ्चाननोऽप्यहं देवि दिव्यैर्वर्षार्द्वैरपि ॥७३॥  
 रामायणं सविस्तारं व्याख्यातुं न क्षमस्त्वयह । यन्निर्मितं च मुनिना स्वतपोभिरनुन्तमम् ॥७४॥  
 अतः संक्षेपमात्रं हि सारं सारं विगृह्य च । कथयिष्यामि त्वत्प्रात्येयं यात्राकाण्डं शुभावद्दम् ॥७५॥  
 रामदासो यथाऽप्ये हि विष्णुदासं वदिष्यति । शतकोटिमितान् ज्ञानदृष्ट्या चाहं तथा तव ॥७६॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानंदरामायणे यात्राकाण्डे  
 रामायणविस्तारकथनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

### तृतीयः सर्गः

( गंगा-सरयुसंगमपर जानेकी तीयारीके लिए दूतोंको रामकी आज्ञा )

पार्वत्युवाच

को रामदासः कुत्रस्थो विष्णुदासशकः स्मृतः । कथं वदिष्यति गुरुमतन्मां कथय विस्तरात् ॥ १ ॥  
 श्रीशिव उवाच

भारते दण्डकारण्ये गोदानाभौ विराजिते । क्षेत्रेऽवज्जके नृमिहार्यो मुनिरये भविष्यति ॥ २ ॥  
 रामनामा तु तत्पुत्रस्तच्छिष्यो विष्णुरित्यपि । गुरुशिष्यो गमसेवामन्त्रौ नित्यं भविष्यतः ॥ ३ ॥  
 दास्यत्वाज्ञानकीजानेस्तावुभौ भूसुरोत्तमौ । रामदासविष्णुदासाविति लोके परां प्रथाम् ॥ ४ ॥  
 गमिष्यतोऽप्ये भो देवि गौतम्या दक्षिणे तटे । रामदासः पितुः श्राद्धं गयायां संविधाय च ॥ ५ ॥  
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि गत्वा यथाक्रमम् । अध्यापयिष्यति च्छात्रान् गोदानाभौ गृहाश्रमी ६ ॥

भारतवर्षमें प्रचलित रामायणके भागके आधारपर अगस्त्य आदि अन्यान्य मुनि भी मैकड़ों रामायण लिखेंगे । पर विचारशील पुरुषोंको उन्हें वाल्मीकीय रामायणसे पूछकून समझना चाहिये ॥ ६९ ॥ ७० ॥ हे पार्वती ! पहले जो मैंने तुमको सारकाण्ड सुनाया, वह भी वाल्मीकीय रामायणका सार ही था ॥ ७१ ॥ उसके बाद जो तुमने रामकी सविस्तर कथा पूछी और मैंने सुनायी, उसका एक अरब श्लोकोंमें विस्तार है । हे देवि ! पश्चमुखसे मैं दिव्य अरब वर्षोंमें भी सम्पूर्ण रामायणकी व्याख्या करनेमें समर्थ नहीं हूँ । तब फिर औरोंका तो कहना ही क्या है । इसकी रचना वाल्मीकि ऋषिने अपने तपोवलसे की थी ॥ ७२-७४ ॥ इसलिये सारमात्र लेकर संक्षेपमें मैं तुम्हारी प्रसन्नताके हेतु मनोहारी यात्राकाण्ड सुनाऊंगा ॥ ७५ ॥ जिस सौ करोड़ श्लोकोंकी रामायणको आगे चलकर रामदास विष्णुदासको सुनाएँगे, वही मैं ज्ञानदृष्टिसे देख कर तुमको सुनाता हूँ ॥ ७६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानंदरामायणे यात्राकाण्डे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां रामायणविस्तारकथनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ ।

पार्वतीजीने पूछा—हे महाराज । रामदास कौन और कहांके हैं ? ये विष्णुदास कौन हैं ? रामदास विष्णुदासको क्यों विस्तारसे रामायण सुनायेंगे, यह भी कह सुनाइये ॥ १ ॥ शिवजीने उत्तर दिया कि भारतवर्षके दण्डकारण्यमें गोदावरीके मध्यप्रदेशीय अन्धक क्षेत्रमें आगे चलकर नृसिंह नामके एक मुनि होंगे ॥ २ ॥ नृसिंहमुनिके पुत्र रामदास और रामदासके शिष्य विष्णुदास होंगे । वे दोनों गुरु-शिष्य निरन्तर रामकी भक्ति करनेवाले होंगे ॥ ३ ॥ सीतापति रामके अनन्य दास होनेके कारण ही ये दोनों रामदास तथा विष्णुदास नामसे संसारमें परम प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे । हे देवि ! आगे चलकर वे ही रामदास गौतमी नदीके दक्षिण तटपर तथा गयामें पिताका श्राद्ध करके पृथ्वीके समस्त तीर्थोंका भ्रमण करनेके बाद गृहस्थाश्रम स्वीकार करके

एकदा विष्णुदासः स श्रुत्वा नानाविधाः कथाः । रामदासमुखात्सारकाण्डं रामायणोद्भवम् ॥ ७ ॥  
श्रुत्वा किंचित्प्रष्टुमना रामदासं चदिष्यति ।  
विष्णुदास उबाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वक्तुमिहार्हसि ॥ ८ ॥

सारकाण्डं मया त्वत्तः श्रुतं रामायणस्थितम् । न किंचित्सौख्यलेशोऽपि ज्ञानक्या राघवस्य च ॥ ९ ॥  
श्रुतोऽत्र कापि राज्यस्य विस्तारोऽपि च न श्रुतः । कथं यागाः कृतास्तेन सन्ततिस्तस्य न श्रुता ॥ १० ॥  
सुतानां वंधुपुत्राणां विवाहादिकमश्रुतम् । तत्सर्वं विस्तरात्तः श्रोतुमिच्छाऽस्ति मे गुरो ॥ ११ ॥  
तत्त्वं च द महाभाग रघुवीरस्य चेष्टितम् । रम्यं पवित्रमानन्ददायकं पातकापहम् ॥ १२ ॥

रामदास उबाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया वत्स रामचन्द्रकथानकम् । मंगलं रघुनाथस्य प्रोच्यते यत्सविस्तरम् ॥ १३ ॥  
सावधानमनास्त्वं तच्छृणु पातकनाशनम् । यथा श्रुतं मया पूर्वं तुष्ट्यर्थं ते वदाम्यहम् ॥ १४ ॥  
हत्वा दशाननं रामो राज्यं निहतकंटकम् । अयोध्यायां मुक्तिपुर्या शशास नीतिमन्तमः ॥ १५ ॥  
न दुभिंशं न चौर्यं च नापमृत्युर्न चेतयः । न दागिद्रियं भयं चिन्ता व्याधयश्च कदाचन ॥ १६ ॥  
न भिक्षार्थी न दृश्यते न पापात्मा न निष्टुरः । न क्रोधी न कृतध्नोऽपि रामे राज्यं प्रशासति ॥ १७ ॥  
एकदा जानकी कान्तमेकान्ते प्राह लजिता । स्मितवक्त्रा चारुनासा दिव्यालङ्कारमण्डिता ॥ १८ ॥  
चामरन्यग्रहस्ता सा विनयावनतानना । राम राजीवपत्राभ रावणारे मम प्रभो ॥ १९ ॥  
किञ्चिद्विजप्तुमिच्छामि यद्यनुजां करोपि हि । विज्ञापयामि तदेहं त्वां धर्ममूलं महोदयम् ॥ २० ॥

गोदावरीके तटवर्ती गांवमें छात्रोंको अनेक शास्त्रोंका अध्ययन कराएंगे ॥ ४-६ ॥ उसी अवसरपर किसी दिन विष्णुदास रामदाससे बहुतेरी कथा सुनते-सुनते रामायणका सारकाण्ड सुनकर कुछ प्रश्न करनेकी इच्छासे कहेंगे—हे गुरो ! मैं आपसे जो प्रश्न करनेकी इच्छा करता हूँ, उसका युक्तिसंगत उत्तर देनेमें आप समर्थ हैं । हे गुरो ! मैंने आपसे रामायणका सारकाण्ड तो सुन लिया, परन्तु उसमें मैंने कहीं भी महारानी जानकी अथवा राजा रामचन्द्रका कोई सुखद संवाद नहीं सुना और न उनके राज्यका विवरण ही सुन पाया । उन्होंने केसे और किस प्रकार यज्ञ किये ? उनकी संतानोंका विस्तार भी नहीं सुननेको मिला । राम तथा उनके भाइयोंके पुत्रोंके विवाह आदिका वर्णन भी मैं नहीं सुन सका । हे गुरो ! यह सब मैं आपके श्रीमुखसे विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ ७-११ ॥ इसलिए हे महाभाग ! श्रीरामचन्द्रजीवा वह मनोहर, पावन, आनन्ददायक तथा पापपुञ्जहारी चरित्र आप मुझको सुनाएं ॥ १२ ॥ रामदास बोले—हे वत्स ! तुमने रामचन्द्रका कथा-विषयक यह बड़ा ही उत्तम प्रश्न किया है । रघुनाथजीके उम मांगलिक चरित्रको मैं विस्तारसे वर्णन करता हूँ ॥ १३ ॥ उनकी कथा अवणमात्रसे जन्म-जन्मान्तरके पापोंको नष्ट कर देती है । उसको मैंने जैसे सुना है, वैसा ही तुम्हारी प्रसन्नताके लिए कहता है । अब सावधान होकर सुनो ॥ १४ ॥ रामचन्द्रजी दशानन रावणको मारकर मोक्षदायिनी अयोध्यानगरीमें रहते हुए नोतिपूर्वक निष्कंटक राज्य करने लगे ॥ १५ ॥ उनके राज्यमें कभी भी अकाल नहीं पड़ा और चौरी नहीं हुई । किसीका अकाल या कुत्सित मरण नहीं हुआ । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिझी तथा मूसोंसे खेतोंका नाश, पक्षियोंसे खेतोंका विनाश और राजविद्रोहसे जायमान ईतियें ( विपत्तियें ) भी उनके राज्यकालमें लोगोंपर नहीं आयीं । उनके राज्यमें कोई दरिद्र, भयभीत, चिन्तातुर या रोगपीड़ित नहीं रहता था ॥ १६ ॥ उनके राज्यकालमें कोई भिलारी, दुराचारी, पापी, कूर, कोधी और कृतध्न भी नहीं होता था ॥ १७ ॥ ऐसे सुख-शान्तिके समय एक दिन हास्ययुक्तमुख-बाली, सुन्दर नासिकायुक्त एवं देवियोंके योग्य अलंकारोंसे विभूषित जानकी कुछ लब्जापूर्वक एकान्तमें अपने प्रिय पति रामसे कहने लगीं । उस समय जानकीके हाथमें मनोहर चमर था । ऐसी दशामें वे विनयसे नीचा मुख किये हुए बोलीं—हे कमलपत्रके समान नयनोंवाले, रावणके शत्रु तथा मेरे नाथ राम ! यदि

तत्सीतावचनं श्रुत्वा जानकीं प्राह राघवः । हे सीते कंजनयने मम प्राणसुखास्पदे ॥२१॥  
शीघ्रं वदस्व यत्तेऽस्ति चित्ते तत्कारवाण्यहम् । इति राघवसम्मानवचनैर्जनकात्मजा ॥२२॥  
नितरां तोषपूरौघपरिपूर्णाऽन्नवीत्पतिम् ।

श्रीसोलोवाच

यदा त्वं राघवश्चेष्ट दण्डकं वचनात्पितुः ॥२३॥

मया सौभित्रिणा साकं पूर्वं स्वनगराद्रूपः । शृंगवेरपुरं गत्वा जाह्नव्यास्तरणे यदा ॥२४॥  
नौकायां स्थितमस्माभिर्भागीरथ्यां तदा पुरा । संकल्पितं मया किंचित्तच्चां वक्ष्याम्यहं प्रभो ॥२५॥  
देवि गंगे नमस्तेऽस्तु निवृत्ता वनवासतः । रामेण सहिताऽहं त्वां लक्षणेन च पूजये ॥२६॥  
सुरामांसोपहारैश्च नानावलिभिरादृता । इत्युक्तं वचनं पूर्वं तज्जातं भवताऽपि च ॥२७॥  
ततश्चतुर्दशे वर्षे विमानेन यदाऽऽगतम् । तदा भरतशत्रुघ्नकौसल्याविरहातुरा ॥२८॥  
अहं तद्विस्मृता रामा स्मृतिर्जाताऽद्य मे प्रभो । तन्मत्संकल्पपूर्त्यर्थं गंतुमर्हसि जाह्नवीम् ॥२९॥  
मया मातृवंधुभिस्त्वमिति ते प्रार्थयाम्यहम् । रोचते यदि ते चित्ते न त्वामाज्ञापयाम्यहम् ॥३०॥  
इति सीतावचः श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः । सीतामालिङ्ग्य वाहुभ्यां हर्षयन् तामुवाच सः ॥३१॥  
एतद्वचनचातुर्यं कुतो जानासि मैथिलि । न तत्ते वचनं देवि गङ्गां प्रति ममैव तत् ॥३२॥  
वचनात्तव वैदेहि श्वो गन्ना जाह्नवीं प्रति । क ते वांछाऽस्ति दयिते गङ्गां गन्तुं वदस्व मे ॥३३॥  
तच्छ्रुत्वा तत्र वै स्थातुं सेनायोग्यसमं मृदु । अहं कर्तुं हि पन्थानं दूतानाज्ञापयाम्यहम् ॥३४॥  
ततः सीताऽन्नवीद्वाक्यं पुनः श्रीरामचोदिता । यत्र गङ्गा च सरयू संगताऽस्ति रघूद्वद्व ॥३५॥

आप मुझे आज्ञा दें तो मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हूँ । वह मेरा निवेदन धर्मसम्मत तथा अन्युदयकारी होगा ॥ १८-२० ॥ राम सीताका वचन सुनकर कहने लगे—हे कमलनयनी ! हे मम प्राणसुखावहे सीते । तुम जो कहना चाहो, सो शीघ्र कहो । मैं उसे अभी पूरा करनेको तैयार हूँ । इस प्रकार रामके सम्मानभेर वचनोंसे जनकनन्दिनी संतोषको लहरोंसे नितान्त लहरा उठी और पतिसे कहने लगीं । श्रीसीताजी बोलो—हे राघवश्चेष्ट । जब आप पिताके कहनेपर दंडकारण्य जानेके लिए मुझे तथा सुमित्रापुत्र लक्षणको साथ लेकर अयोध्या नगरीसे चले थे और जब शृंगवेरपुर जाकर जाह्नवी नदीमें नावपर हमलोग सवार हुए थे । उस समय भगवती भागीरथीकी बोच धारामें मैंने जो संकल्प किया था । हे प्रभो ! वह मैं आज आपको सुनातो है ॥ २१-२५ ॥ मैंने गंगाको नमस्कार करके कहा था—हे देवि ! जब मैं राम तथा लक्षणके साथ वनवाससे लौटूंगा, उस समय सुरासे, मांससे तथा अनेक प्रकारकी पूजासामग्रीसे तुम्हारो पूजा करूँगा । उस समय कहे हुए मेरे इस वचनको आपने भी सुना था ॥ २६ ॥ २७ ॥ पश्चात् चौदह वर्ष बाद जब हमलोग विमान द्वारा वनसे लौटे, तब भरत-शत्रुघ्न और माता कौसल्याके वियोगसे आतुर होनेके कारण मैं उस बातको भूल गयी । हे प्रभो ! आज मुझे उस बातका पुनः स्मरण आया है । अतएव मेरे उस संकल्पको पूरा करनेके लिए माताओं, भाइयों तथा मुझे लेकर आपकी गंगाजीके तटपर चलना चाहिये । यही मेरा आपसे प्रार्थना है । यदि आप उचित तमज्जे तो चलें । मैं आपको इस बातकी आज्ञा नहीं देती । क्योंकि स्त्रीका पतिको आज्ञा देना अधर्म है, परन्तु सविनय उचित परामर्श देना न्याय और धर्मसम्मत है ॥ २८-३० ॥ सीताके इस बाक्यको सुनकर राम वडे प्रसन्न हुए और आलिङ्गन करके सीतासे सहर्षं कहने लगे—॥ ३१ ॥ हे मैथिली ! इस प्रकारका वचनचातुर्यं तुममें कहांसे आ गया ? तुम्हारा वह वचन गंगाके प्रति नहीं, प्रत्युत मेरे ही प्रति था ॥ ३२ ॥ हे वैदेहि ! तुम्हारे कथनानुसार मैं कल ही गंगाजी चलनेके लिए तैयार हूँ । हे प्रिये ! तुम्हारी जिस जगह और जिस तीर्थको चलनेकी इच्छा हो, वह कहो ॥ ३३ ॥ इस बातको जानकर मैं वहाँ सेनाको ठहरनेके लिए स्थान और मार्ग साफ-सुधरा करनेके लिए दूतोंको आज्ञा देंगे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार रामके पूछनेपर सीताने कहा—हे रघुनन्दन ! जहाँ गंगा और सरयूजीका संगम हुआ है, वहाँपर गंगाजीके

तत्र गङ्गोत्तरे देशे गंतुमिच्छति मे मनः । इति सीतावचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा रघुद्वहः ॥३६॥  
 द्वारपालं समाहूय पट्टैराच्छाद्य जानकीम् । आज्ञापयच्च तं रामः शीघ्रं गच्छ ममाज्ञया ॥३७॥  
 लक्ष्मणं वचनं मे त्वं कथयस्व सविस्तरम् । ज्ञायव्यः श्वो ममोद्योगः सीतायाश्चैव कौतुकात् ॥३८॥  
 सरयूसङ्गमे गङ्गापूजनार्थं त्वया सह । मातृभिर्मन्त्रिभिः सैन्यैः सुहङ्क्रिभरतेन च ॥३९॥  
 शत्रुघ्नेन पुरिस्थैश्च जनैर्विप्रैर्यथासुखम् । सेनानिवेशस्थानानि योजनाद्वान्तराणि च ॥४०॥  
 पूरितामन्तोयाश्चैः कल्पनीयानि वै पृथक् । इति रामवचः श्रुत्वा स तथेति त्वरान्वितः ॥४१॥  
 आज्ञाप्रमाणमित्युक्त्वा नत्वा रामं पुनः पुनः । कथयामास सौमित्रिं रामवाक्यं सविस्तरम् ॥४२॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा यौवराज्यपदस्थितः । सभायां मन्त्रिभिर्युक्तो लक्ष्मणो दूतमब्रवीत् ॥४३॥  
 अङ्गीकृतं रामवाक्यमिति रामं वदस्व तत् । तच्छ्रुत्वा त्वरितं दृतः कथयामास राघवम् ॥४४॥  
 सभायां लक्ष्मणश्चापि दूतानाजापयत्तदा । रुक्मदण्डकरान् चित्रोष्णीषयुक्तान् विभूषितान् ॥४५॥  
 गच्छध्वं त्वरिता यूयं कथयध्वं जनान्पुरि । अयोध्यायां राघवस्य श्वो यात्रार्थं समुद्यमः ॥४६॥  
 तथेत्युक्त्वा जवाहूता राजमार्गेषु सर्वतः । दीर्घस्वरेण ते प्रोचुश्वोध्वं कृत्वाऽऽत्मसत्करान् ॥४७॥  
 हे जनाः शृणुत स्वस्थाः श्वः सीतारामयोर्मृदा । समुद्योगोऽस्ति पूजार्थं सरस्वाः सङ्गमं प्रति ॥४८॥  
 मागीरध्यां सुहङ्क्रिश्च सावरोधैर्वलैः सह । इति संश्राव्य सकलान् जनान् साकेतवासिनः ॥४९॥  
 ते दूता राजभवने लक्ष्मणं तं पुनर्ययुः । संश्राव्य ते जनांशारा रामोद्योगं न्यवेदयन् ॥५०॥  
 सभायां लक्ष्मणश्चापि समाहूयानुज्जेवात् । तक्षकानिष्टिकाकारान्दृपत्कर्मसु नैषिकान् ॥५१॥  
 लोहकारांश्चर्मकारान् भित्तिकर्मादिनैषिकान् । क्रयविक्रयकत्तश्च काष्ठनिर्जावकारिणः ॥५२॥  
 वासोगृहविद्यधाश्च महिपर्जलवाहिनः । नानाकर्मसु निष्णाता रज्जुकुदालधारिणः ॥५३॥

उत्तरी तटपर जानेको मेरे मनमें इच्छा है । सीताकी इस इच्छाको सुनकर रामने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा ॥३५॥ ३६॥ तदनन्तर जानकीको महलके भीतर भेज तथा द्वारपालको बुलाकर रामने कहा—तुम मेरी आज्ञासे अभी लक्ष्मणके पास जाकर मेरा आदेश उनसे कह दो । उनसे कहना कि काल प्रातःकाल सीताकी इच्छासे तुम्हारे, माताओं, मन्त्रियों, सेनाओं, भरत-शत्रुघ्न, पुरवासी जनों तथा ब्राह्मणोंके साथ सरयूके संगम-पर गङ्गाजीका पूजन करनेके लिए धूम-धामसे मेरा जाना निश्चित हुआ है । इस लिये रास्तेमें दो-दो कोसपर अन्न-जलसे परिपूर्ण शिविर तैयार कराओ । रामके इस वचनको सुनकर वह दूत 'बहुत अच्छा, जो आज्ञा' कह तथा रामको बारम्बार नमस्कार करके वहाँसे शीघ्र चल पड़ा । लक्ष्मणके पास जाकर उसने विस्तारसे रामकी आज्ञा सुना दी ॥३७-४२॥ युवराजपदपर स्थित तथा मन्त्रियोंके साथ सभामें विराजमान लक्ष्मणने जब रामके आदेशको दूतके सुखसे सुना तो उससे कहा—॥४३॥ तुम जाकर श्रीरामसे कहो कि आपकी आज्ञाके अनुसार सब कार्य ठीक हो जायगा । दूतने जाकर शीघ्र ही रामको यह सन्देश सुना दिया ॥४४॥ तब लक्ष्मणने सोनेके दण्ड धारण करनेवाले रंग-बिरंगी पगड़ी सिरपर बाँधे तथा सुन्दर पोशाक पहिने हुए बहुतसे सिपाहियोंको बुलाकर उन्हें यह आज्ञा दी—॥४५॥ तुमलोग शीघ्र नगरभरमें धूमकर सब नगरवासियोंको रामचन्द्रजीके कल यात्राके लिए प्रस्थान करनेका समाचार सुना आओ ॥४६॥ 'तथास्तु' कहकर वे दूत नगरकी सड़कोंपर धूम-धूम तथा हाय उठा-उठाकर ऊँचे स्वरसे सब लोगोंको सुनाने लगे—॥४७॥ 'हे नगरवासियो । ध्यान देकर सुनो । राम और सीता कल अन्तःपुरवासिनी श्लियों, सगे-संबन्धियों और सेनाको साथ लेकर सरयूनदीके संगमपर गङ्गाका पूजन करनेके लिए जायेगे । अयोध्यावासी लोगोंको यह समाचार सुनाकर वे पुनः लक्ष्मणजीके पास आगये और बोले कि हमलोग नगरके सब लोगोंको रामजीकी यात्राका समाचार सुना आये ॥४८-५०॥ तदनन्तर लक्ष्मणने नौकरोंके द्वारा तत्क्षण बढ़ाई, इटें पायनेवाले कुम्हार, पत्थरके काममें कुशल संगतरास ॥५१॥ लोहार, चमार, भीत-मकान आदि बनानेमें चतुर राजगोर, सोदा बेचने तथा खरीदनेवाले बनिये, लकड़हारे, कपड़ेके डेरा-तम्बूके

एतानाज्ञापयामास तोषणाद् वसनादिभिः । संमानितान्स सौमित्रिः कथयामास सादरम् ॥५४॥  
 समुद्योगं राघवस्य सीतायाः श्वो वर्लः सह । ऋजुमांगो विधातव्यः समः कर्करवजितः ॥५५॥  
 निम्ना भूमिः समा कार्या उच्चा भूमिः समाऽपि च । छिद्रंतां पार्वता वृक्षा मार्गस्था दुःखदायकाः ॥५६॥  
 वाप्यः कूपास्तडागात्र शोधनीयाः सहस्रशः । नवीनाश्वापि कर्तव्याः सतोया निर्जले वने ॥५७॥  
 सेनानिवेशस्थानानि योजनादें सविस्तरे । कल्पनायानि युष्माभिः पूरितान्यन्यन्वारिभिः ॥५८॥  
 चुल्लयो रम्या विधातव्याः पाकशालाः सभित्तयः । वस्त्र्यर्गृहाणि कार्याणि तुर्णश्वापि सहस्रशः ॥५९॥  
 आरक्तखूर्परे राच्छादितानि चित्रितानि हि । नानागृहाणि कार्याणि पूरितान्यन्यन्वारिभिः ॥६०॥  
 पुष्पाणां वाटिकाः कार्याः शतशोऽथ सहस्रशः । मार्ग मार्गे कौतुकार्थं भित्तौ चित्राण्यनेकशः ॥६१॥  
 नरस्कंधगताश्वित्रवाटिकाश्च सहस्रशः । पुष्पाणां वाटिकाश्चारुमृत्यावनिमित्ताः शुभाः ॥६२॥  
 मार्गे मार्गे गायकानां स्थलान्यपि सहस्रशः । सेनानियासस्थानेषु हस्त्यश्वरथवाजिनाम् ॥६३॥  
 सहस्रशो विधातव्याः शालाः पूर्णस्त्रियादिभिः । सुगंधचंदनमांगाः सेचनीयाः समंततः ॥६४॥  
 नेमिरेखाऽपि सा मार्गे विचित्रवसनैर्गृहाः पुष्पराच्छादनीयास्ते हृष्टाः सन्तु समंततः ॥६५॥  
 श्रुंगारैरतिचित्रेण हस्त्युष्ट्ररथवाजिनः । वस्त्रालङ्कारवण्टाभिः शोभनीयाः सहस्रशः ॥६६॥  
 शकटेषु तथोष्ट्रेषु वारणेषु रथादिषु । शतव्यः परिधा वाणाः शक्तयः कार्मुकान्यपि ॥६७॥  
 स्थापनायानि शतशा विधातव्या ध्वजा अपि । चतुर्वर्षपि विधातव्या ध्वजा रामरथेषु हि ॥६८॥  
 हनुमत्कोविदाराण्डजेशवाणांकिताः शुभाः । चतुर्वर्षपि वंधनीयाः पताकाः स्यंदनेषु हि ॥६९॥  
 हरितश्वेतपीतनीलवर्णाः परमशोभनाः । गजपृष्ठे राघवार्थं हरिद्वर्णाङ्कितासनम् ॥७०॥

निर्माणमें निपुण दर्जी, भैंसेक द्वारा जल ढानेवाल भित्ता त-। अन्यान्य नाना कर्मोंमें कुशल, रस्ती बटनेवाले और कुदार चलानेवाले आदि-आदि मजूरोंको सभामें बुलाकर वस्त्र आदिसे सत्कार करके प्रसन्न किया और आदरपूर्वक उनसे कहा— ५२-५४॥ कल राम-साता सेनाके साथ तीर्थयात्राके लिए जानेवाले हैं । सो तुम लोग उनके सम्पूर्ण रास्तेको कंकड़-पत्थर बानकर साफ-मुथरा कर दो ॥ ५५ ॥ रास्तेकी ऊँची-नीची जमीन बराबर कर दो । मार्गके दुःखदायी पदतीय वृक्षोंको काट डालो ॥ ५६ ॥ रास्तेकी बाबड़ी, कूएं तथा तालाबोंको साफ कर दो और निर्जल बनमें नये सेकड़ों तालाब-कूएं आदि खोद दो ॥ ५७ ॥ आधे-आधे योजनपर सेनाके लिए शिविर बनाकर अन्न-जलसे परिपूर्ण कर दो ॥ ५८ ॥ सुन्दर दीवारें खड़ी करके भोजनालय और चूल्हे तथार करे । जगह-जगह वस्त्र तथा धासके अम्बार लगा दो ॥ ५९ ॥ पके हुए लाल खपड़ोंसे छाये हुए चित्र-विचित्र धरोंमें प्रचुरमात्रामें अन्न-जल संचित करके रखवा दो ॥ ६० ॥ मार्गमें स्वान-स्थानपर सेकड़ों तथा हजारोंको संख्यामें आनन्द लेनेके लिए दीवारोंपर रंग-बिंगे चित्र खोच दो तथा मनोविनोदके लिए बीच-बीचमें पुष्पवाटिकाएं लगा दो ॥ ६१ ॥ नर पुतलियोंके कंधेपर रखते हुए फूलोंसे गमले अथवा जमीनपर हो फूलोंके गमलोंको सजाकर स्वान-स्थानपर सेकड़ों-हजारों वाटिकाएं तैयार कर दो ॥ ६२ ॥ पथ-पथपर गायकोंकी गायनशालायें रच दो । सेनाके हर एक सन्निवेशस्थानमें दाने तथा धाससे पूर्ण अनेक अशशालायें और हस्तिशालायें तैयार कर रखतो । चन्दन तथा गुलाब आदिके सुगन्धित जल सब रास्तोंमें छिड़कवा दो तथा चित्र-विचित्र धारीवाले कपड़ोंके तम्बू बनाकर जगह-जगह गाड़ दो और उनपर विविध रंगकी पुष्पमालाएं टाँग दो । उनके चारों ओर बाजार लगा दो ॥ ६३-६५ ॥ तमाम हाथी-घोड़े, ऊँट तथा रथोंको वस्त्र अलंकारसे ललंकृत करके तथा धण्टे आदि बांधकर सुसज्जित कर दो ॥ ६६ ॥ बैलगाड़ियोंमें, ऊँटोंपर और रथ आदिपर धनुष-बाण, मुद्रर, शक्तियें, तोप अथवा बन्दूकें रख दो ॥ ६७ ॥ रास्तेके चौतरफा और दरवाजे आदिपर ध्वजाएं गाड़ तथा बांध दो । रामजीके चारों रथोंपर भी ध्वजाएं बांध दो ॥ ६८ ॥ उन चारों स्वन्दनोंपर हनुमान, कोविदार, गरुड और बाणके चिह्नोंवाली पताकाएं होनी चाहिये ॥ ६९ ॥ वे ध्वजाएं हरे,

रुक्ममाणिक्यरचितं सितच्छत्रोपशोभितम् । स्थापनीयं महादिव्यं मुक्ताहारविराजितम् ॥७१॥  
 सीतार्थं करिणीपृष्ठे नीलवर्णं महासनम् । रुक्मविद्रुमवैद्यरत्नमुक्ताविराजितम् ॥७२॥  
 मुक्ताफलहेमतंतुगणैराच्छादितं वरम् । सिद्धं कार्यं महादिव्यं स्वर्णकुंभविराजितम् ॥७३॥  
 पुष्पमालास्तोरणनि वंधनीयानि वै पथि । नृत्यंतु वारवेश्याश्च स्तुतिं कुर्वन्तु वन्दिनः ॥७४॥  
 द्रव्यैर्वस्त्रैराभरणैः पूजाद्रव्यैश्च गोरसः । पात्रैर्नानाविधिर्दिव्यैः पूरणीया रथोत्तमाः ॥७५॥  
 अन्यच्चापि मया नोक्तं यद्यद्योग्यं हि तत्पथि । सिद्धं कार्यं हि योगेन येन तुष्यति राघवः ॥७६॥  
 इति सन्दिश्य मेधावी लक्ष्मणः सह मंत्रिभिः । सायं सन्ध्यादिकं कर्तुं जगाम निजमन्दिरम् ॥७७॥  
 सौमित्रेराज्ञया तेऽपि तथा चक्रुर्यथोदिताः । संतुष्टास्ते यथायोग्यं रामसन्तोषहेतवे ॥७८॥  
 रामोऽपि सीतया सादृं मन्दिरे रत्ननिमिते । मञ्चके पुष्पशश्यायां सीतामालिङ्गं वै दृढम् ॥७९॥  
 रुक्मनेपव्ययुक्ताभिर्दीसीभित्र मुहुर्मुहुः । वीजितो वालव्यजनेनिंशि सुसः सुखं तदा ॥८०॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे दूताज्ञाकरणं नाम तृतीयः संगः ॥ ३ ॥

—४३४—

### चतुर्थः संगः

( रामका सरयूके दो खण्ड करना )

रामदास उवाच

ततः प्रातः समुत्थाय श्रुत्वा वाद्यध्वनि तथा । गायनं वंदिभिर्गातं सीतया सह राघवः ॥ १ ॥  
 कृत्वा नित्यविधिं सर्वं दस्वा दानानि विस्तरात् । ज्योतिविंदं समाहृय गोपालाभिधप्रृत्तम् ॥ २ ॥  
 नमस्कृत्वाऽथ संपूज्य गणकं राघवोऽब्रवीत् । भी गोपाल महानुद्रे त्वां प्रुच्छेऽहं दिजोनम् ॥ ३ ॥

पोले, श्वेत और नीले रंगकी सुन्दर बनी हों। रामचन्द्रजीके लिए हाथीपर हरे रंगके मखमलकी गही-तकिया लगाकर उसपर मुक्ताके हार टाँग देने चाहियें और सोना तथा माणिक्यसे रचित, बहुमूल्य, दिव्य, परम सुन्दर, तथा श्वेत छत्र भी लगा देना चाहिए ॥ ७० ॥ ७१ ॥ एक दूसरी हथिनीकी पीठपर सीताके लिये मुवर्ण, विद्रुम (मूँगे), वैदूर्यमणि, रत्न, मोती तथा गजमुक्ता लगा हुआ हरा, जरीदार एवं बहुमूल्य आमन विछाकर तैयार करो और उसके हैंदेपर बहुतसे छोटे-छोटे मुवर्णके कलश भी लगा दो। जिससे कि वह अधिक सुन्दर प्रतीत होने लगे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ रास्तेमें फूलोंको मालाएं और तोरण बांध दो। बंश्याएं नाचने तथा बंदागण स्तुतिपाठ करने लग जायें ॥ ७४ ॥ बहुतसे रथोंमें वक्ष, आभूपण, दुग्ध, दही, पूजाके द्रव्य तथा अच्छे बरतन आदि भर लिये जायें ॥ ७५ ॥ जो कछु मैंने न कहा हो, सो भी सब जल्दी सुविधाएं सुलभ रहनो चाहियें। जिन्हें देखकर रामचन्द्रजी प्रसन्न हो जायें ॥ ७६ ॥ दुद्धिमान् लक्ष्मण ऐसी आज्ञा देकर सायंकालीन संध्या-बन्दन करनेके लिए मंत्रियोंके साथ सभाभवनसे चाहर आकर अपने महलमें चले गयें ॥ ७७ ॥ लक्ष्मणकी आज्ञाके अनुसार कारीगर लोगोंने प्रसन्नतासे रामजीके गुलबके लिये यथायोग्य सब सामान ठीक कर दिया ॥ ७८ ॥ उधर रामचन्द्रजी भी अपने रत्ननिमित भवनमें फूलोंकी शव्यापर सीताजीको दृढ़ आलिङ्गन करके रात्रिको मुखपूर्वक सोये। सोनेकी जरीदार साड़ियोंको पहिने दासियें बार-बार उनपर वालव्यजन ( पंखा ) ढुलाने लगीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे भाषाटीकायां दूताज्ञाकरणं नाम तृतीयः संगः ॥ ३ ॥

रामदास बोले—प्रातः कालके समय बन्दियोंके गायन और बाजोंके मधुर शब्दको सुनकर सीतासहित राम जागे ॥ १ ॥ तब नित्यकर्मसे निवृत्त होकर उन्होंने अनेक तरहके दान दिये और गोपाल नामके ज्योतिशीको बुलवाकर रामने नमस्कार तथा पूजा करके कहा—हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और महाबुद्धिमान् गोपाल महाराज !

यात्रार्थं जाह्वीतीरं गन्तुमिच्छामि सांप्रतम् । अतो मुहूर्तो दातव्यः सम्यग्बुद्ध्या विविच्य च ॥४॥  
तद्रामवचनं श्रुत्वा गोपालः प्राह राघवम् । पञ्चाङ्गपूर्णं विस्तार्य तत्र दृष्ट्वा वलावलम् ॥५॥  
राम राजीवपत्राक्षं मुहूर्तस्त्वद्य वर्तते । पूर्वयामे महाङ्ग्रेषुः पुष्यनक्षत्रमंडितः ॥६॥  
तस्य वक्ष्ये फलं गजन् सावधानमनाः शृणु । शृण्वन्तु मुनयः सर्वे शृणोतु ते गुरुमहान् ॥७॥  
न योगयोगं न च लग्नलग्नं न तारकाचंद्रवलं गुरोश्च ।

योगिन्य राहुर्न तदेव काले सर्वाणि कार्याणि करोति पुष्यः ॥८॥

अस्मिन्नाम सुनक्षत्रे प्रस्थानं कुरु सीतया । दत्तो मया मुहूर्तोऽयं यात्रार्थं रघुनायक ॥९॥  
इति तस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणं राघवोऽत्रवीत् । भेरीमृदंगपणवकाहलाऽऽनकगोमुखैः ॥१०॥  
तालघर्घरदुभिभिर्भिर्भिश्च नवमिर्महान् । सेनायाः सूचनार्थं हि कर्तव्यः प्रथमो ध्वनिः ॥११॥  
नथेति रामवचनाद्दूतानाज्ञापयत्तदा । नववाह्यध्वनिं तेऽपि चक्रुम्भुलसुस्वरम् ॥१२॥  
ततो रामो द्विजेयुक्तो वसिष्ठेन पुरोधसा । धृतेन प्रचुरं श्राद्धं गणेशादीन् प्रपूज्य च ॥१३॥  
चकार प्रोक्तविधिना वसिष्ठं प्राह वै ततः । अग्निहोत्राणि मेष्ट्ये त्वं स्थापितानि तु पुष्यके ॥१४॥  
नेतुमर्हसि मे मातृवैथुभिः पुरवासिनः । विमाने करिणीवद्वा पुष्पमालाजतिशोभिता ॥१५॥  
सीतांगस्पर्शनी मार्गे मां स्पर्शं तु गजस्थितम् । ततः पप्रच्छ वैदेहीं केन यानेन मैथिलि ॥१६॥  
गमिष्यसि वद त्वं मां तदेवाज्ञापयाम्यहम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा सीता ध्यात्वा क्षणं हृदि ॥१७॥  
सा प्राह मुदिता गमं करिण्या गमनं मम । रोचते यदि ते चित्ते तर्क्षस्तु रघुनायक ॥१८॥  
ततस्या वचनं श्रुत्वा यानमाज्ञाप्य लक्ष्मणम् । सीतायै दिव्यवस्थाणि ददौ मातृस्तथैव च ॥१९॥

में आपसे एक प्रश्न पूछता हूँ ॥२॥३॥ आज में तीर्थयात्रा करनेके लिए गंगाजीके तटपर जाना चाहता हूँ । अत-एव खूब विचारकर कोई अच्छा मुहूर्त बतलाइए ॥४॥ रामचन्द्रजीका प्रश्न सुनकर गोपाल पण्डितने पञ्चाङ्ग देख तथा प्रहोके वलावलवा विचार करके रामसे कहा—॥५॥ हे कामलदलके समान सुन्दर नयनोंवाले राम ! आज प्रथम प्रहरमें पुष्यनक्षत्रसे युक्त वद्वा अच्छा मुहूर्त है ॥६॥ उसका फल मैं आपसे कहता हूँ । हे राजन् ! आप, सब मुनि लोग तथा आपके गुरु वसिष्ठजी भी उसको ध्यानसे सुनें ॥७॥ अच्छे योगसे युक्त न रहनेपर भी, अच्छे लग्नसे संलग्न न होनेपर भी, तारा, चन्द्रमा और गुरुके वलसे शून्य होनेपर भी, शुभ योगिनीके अभावमें भी तथा अनिष्टकरी राहुके सत्तिकट रहनेपर भी केवल एक पुष्य नक्षत्रके रहनेमात्रसे ही यात्राके सब दृष्टि कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥८॥ हे राम ! इस शुभ नक्षत्रमें आप सीताके साथ प्रस्थान करें । हे रघुनायक ! यात्राके लिए मैंने यह अच्छा मुहूर्त बतलाया है ॥९॥ उनका यह वचन सुनकर रामजीने लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण ! सुमस्त सेनाको सूनना देनेके लिए भेरी, मृदंग, पण्व, नगाड़े, ढोल, तुडही, झाझ, धंटा तथा दुन्दुभी ये नी प्रकारके बाजे जोरसे बजाये जायें ॥१०॥ ११॥ ‘बहुत अच्छा’ कहकर रामकी आज्ञाके अनुसार लक्ष्मणने दृतोंको आज्ञा दी । उन्होंने मधुर रीतिसे नवों बाजे बजाये ॥१२॥ उसके बाद रामने श्राद्धाणों तथा अपने पुरोहित वसिष्ठजीको साथ लेकर गणपतिपूजन किया और धीसे विधिवत श्राद्ध करके वसिष्ठजीसे कहा कि मेरी वेदोक्त विधिसे स्थापित की हुई अनियोंको, माताओंको तथा बन्धुनहित पुरवासियोंको विमानपर चढ़ाकर आप चलें । पृष्ठमालाओंसे अतिशय सुशोभित तथा सीतासे अधिष्ठित गजपर सवार हमको मार्गमें मिलें । पश्चात् रामने सीतासे पूछा—हे मैथिलि ! तुम किस सवारीपर चलोगी ? जो पसन्द हो, उस सवारीके लिए मैं आज्ञा दे दूँ । रामजीके इस वाक्यको सुनकर सीताजीने छूनभर मनमें विचार किया ॥१३-१७॥ फिर प्रसन्न होकर रामसे कहा—हे रघुनायक ! यदि आप कहें तो मैं इच्छा हृथियोंपर चलनेकी हूँ ॥१८॥ सीताकी इस इच्छाको जानकर रामजीने लक्ष्मणको सीताके लिए हविनी तैयार करवानेकी आज्ञा दी । पश्चात् रामने सीताको तथा अपनी माताओंको पहिननेके लिए

तथा दत्त्वा वंधुपत्नीर्दत्त्वा चापि गुरोः क्षियम् । ततो दत्त्वा वसिष्ठं च विप्रान्दत्त्वा ततः परम् ॥२०॥  
 दत्त्वा वस्त्राणि वंधुभ्यः स्वयं जग्राह राघवः । वद्ध्वा शस्त्राण्यनेकानि त्वरयित्वा विदेहजाम् ॥२१॥  
 नत्वा मातृरुद्धर्ष्यापि मन्त्रिभिः परिवान्तिः । आहश्च शिविकां रामः सभां प्रति समाययोः ॥२२॥  
 ततः सिहासने स्थित्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः । द्वितीयः सूचनार्थं हि नववादध्वनिः पुनः ॥२३॥  
 आज्ञापनीयः सौमित्रे तच्छ्रुत्वा रघवेरितम् । आज्ञा प्रमाणमित्युक्त्वाऽज्ञापयदृध्वनिमुत्तमाम् ॥२४॥  
 कर्तुं दृतास्तेऽपि चक्रुर्धर्वन्ति मेघापमां ततः । ततः प्राढ रघुव्रेष्टः पुनः सौमित्रिमादगत् ॥२५॥  
 सुमंत्रः स्थाप्यतां पुर्या लक्षणार्थं ममाज्ञया । गच्छत्वग्रे तु भगता पश्चादायातु शत्रुहा ॥२६॥  
 मत्पृष्ठे त्वं समागच्छ ततः माताऽनुगच्छतु । तस्याऽप्युष्टे च त्वं पत्नीः द्युमिला सानुगच्छतु ॥२७॥  
 तत्पृष्ठे मांडवी रम्या दृष्टिता भरतस्य सा । अनुगच्छतु तत्पृष्ठे श्रुतकीर्त्यनुगच्छतु ॥२८॥  
 शत्रुघ्नस्य प्रिया भार्या विमानः पुरयोपितः । मातृभिस्ताः समायां तु पश्यन्त्यः कीर्तुकं मुदा ॥२९॥  
 सीताद्याः करिणीष्वद्व स्थापयित्वा मगान्तिवम् । आदत्वयं न्वया शीघ्रं ततोऽहं गजमाश्रये ॥३०॥  
 तथेति रामवचनात्तथा ताः करिणीषु सः । आरोहयित्वा श्रीरामं समागच्छत्वरान्वितः ॥३१॥  
 समागतं लक्ष्मणं तं दृष्ट्वा रामो महामनाः । सुमंत्राय ददौ वस्त्रं तदधीनां पुरीं व्यधात् ॥३२॥  
 ततो मुहूर्तसमये ध्रुत्वा लक्ष्मणसत्करम् । सिहासनात्समुत्तीर्य महानागान्तिकं ययौ ॥३३॥  
 गजं प्रदक्षिणं कृत्वा सोपानेन स राघवः । गजदन्तोऽद्वेनाकुरोह नागं सुखं शनैः ॥३४॥  
 तदा दुन्दुभिनिधींपान् नववाद्यस्वरान् वरान् । वादयामासुरौभीरान् राजदत्ताः सहस्रशः ॥३५॥  
 वभूर्यन्त्रशब्दाश्च ननृतुर्वार्योपितः । वादयन्ति स्म वाद्यानि गजवाजिरथोपरि ॥३६॥  
 जयशब्दान् वेदधोपान् द्विजाश्चक्रुमहास्वनैः । केऽपि पिच्छोऽद्वं चित्रं रत्नदण्डविराजितम् ॥३७॥

दिव्य वस्त्र दिये ॥१९॥ अपने भाइयोंको, उनको खियोंको और गुरुपत्नीको सुन्दर वस्त्र दिये । उनके बाद गुरु-वसिष्ठको, अन्य ब्राह्मणोंको तथा अपने वंधुओंको नये कपड़े देकर स्वयं रामने भी तूतन वस्त्र पहना । अनेक प्रकारके शस्त्र भी बांध लिये और सीताको शीघ्रता करनेके लिए कहा ॥ २० ॥ २१ ॥ तदनन्तर रामजो गुरु तथा माताओंको नमस्कारकर तथा मन्त्रियोंको साथ ले पालकीपर सवार होकर सभाभवन (कचहरी) गये ॥ २२ ॥ वहाँ सिहासनपर आहूढ़ होकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि दूसरी सूचना देनेके लिए पुनः नी प्रकारके बाजे बजानेकी आज्ञा दे दो । लक्ष्मणने 'जो आज्ञा' कहकर दूतोंको उत्तम रीतिसे बाजे बजानेकी आज्ञा दी । आदेश पाते ही उन दूतोंने मेघध्वनिके समान बाजोंका निनाद किया । इसके उपरान्त रामने पनः लक्ष्मणसे कहा—॥२३-२५॥ हे भाई ! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम यहाँ नगरकी रक्षा करनेके लिए सुभत्रको छोड़ दो । आगे भरत और उनके पीछे शत्रुघ्न चलें तथा मेरे पीछे तुम चलो । तुम्हारे पीछे सीता और सीताके पीछे तुम्हारी खो उमिला चले ॥ २६ ॥ २७ ॥ उसके पीछे भरतकी प्राणप्रिया सुन्दरी मांडवी और मांडवीके पीछे शत्रुघ्नकी प्रिया भार्या श्रतकीति चले ॥ २८ ॥ नगरकी खियोंके साथ माताएं विमानपर सवार होकर आनन्दसे समारोह देखती हुई आये ॥ २९ ॥ तुम जाकर सीता आदि सब खियोंको हथिनियोंपर चढ़ा आओ । उसके बाद मैं गजपर सवार कराकर बीधू ही रामके पास लौट आये ॥ ३० ॥ सो सुनकर लक्ष्मण तुरन्त चल दिये और उन सबको हथिनियोंपर सवार कराकर बीधू ही रामके पास लौट आये ॥ ३१ ॥ लक्ष्मणके आ जानेपर मतिमान् रामने मन्त्री समन्त्रको चिह्नस्वरूप वस्त्र दिये तथा रक्षाके लिये नगर सीप दिया ॥ ३२ ॥ उसके बाद शुभ मुहूर्तमें लक्ष्मणके सुन्दर हाथको पकड़कर राम सिहासनसे उठे और उत्तम हाथीके पास गये ॥ ३३ ॥ हाथीकी प्रदक्षिणा करके राम गजदन्तकी बनी हुई सीढ़ीपर पाँव रखकर सुखपूर्वक धीरेसे उसपर सवार हो गये ॥ ३४ ॥ उस समय हजारों राजसेवक सुन्दर एवं गम्भीर शब्द करनेवाले दुन्दुभि आदि नवविध वाद्योंको बजाने लगे ॥ ३५ ॥ वहाँपर अनेक प्रकारके शब्द होने लगे, वेश्याएं नाचने लगीं और हाथी तथा धोड़ोंपर नाना प्रकारके बाजे बजाये जाने लगे ॥ ३६ ॥ विप्रलोग उज्ज स्वरसे जयजयकार और वेदध्वनि करने लगे । एक

चामरं वीजयामास विजयः पार्श्वसंस्थितः । अन्यस्तु चालव्यजनं वीजयामास पृष्ठतः ॥३८॥  
 कलश्चैः शुतसाहस्रैरुक्ताहारैस्तु शोभितम् । रत्नदण्डं सुविस्तीर्णं छत्रमन्यो दधार तत् ॥३९॥  
 तत्पृष्ठे गजमारुद्धा लक्ष्मणः शीघ्रमाययौ । सीतायास्ताः समाजग्मुः सौमित्रिगजपृष्ठतः ॥४०॥  
 पश्यन्त्यः कौतुकान्येव जालरंध्रैः समंततः । पुष्पकं चापि गगनमार्गेणैव शनैः शनैः ॥४१॥  
 जगाम संस्थितास्तत्र पुरनार्यो रघूतमम् । पश्यन्त्योऽथ कौतुकानि ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४२॥  
 ततस्ते तुरगारुढा गजारुढा रथे स्थिताः । नेमिरेखोपमाः सर्वे स्थितास्ते रामपार्श्वयोः ॥४३॥  
 चक्रुः प्रणामान् श्रीरामं संस्थिता हारवंधवत् । रामोऽपि कंजहस्ताभ्यां प्रणामानभ्यनन्दयत् ॥४४॥  
 एवं गच्छति राजेन्द्रे रामचन्द्रे शनैः पथि । गजोपरि सर्वीणास्ते नटा गानं प्रचकिरे ॥४५॥  
 एवं पश्यन् स रामोऽपि पुष्पारामादिकौतुकम् । हड्डान् चित्राणि वेश्यानां नृत्यानि विविधानि च ॥४६॥  
 सुस्वराण्यथ वाद्यानि शृण्वन् मार्गे शनैः शनैः । वेष्टितश्चतुरङ्गिण्या सेनया स समंततः ॥४७॥  
 ग्राप सेनानिवासाय कल्पितां भुवमुत्तमाम् । अयोध्यामिव तां दृष्टाऽवतरद्राघवो गजात् ॥४८॥  
 अभिनन्द्य प्रणामांश्च पुनर्वीरकृतान् मुहुः । लक्ष्मणस्य करं धृत्वा स्वकरेण रमापतिः ॥४९॥  
 वस्त्रगेहं संप्रविश्य तस्यौ सिंहासने पुनः । सीतायास्ताः स्त्रियः सर्वा विविशुर्वस्त्रसञ्चनि ॥५०॥  
 ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् । सीमायाः क्रोशमात्रेऽद्य शतदूतान् पृथक् पृथक् ॥५१॥  
 एकेकस्यां दिशि त्वं मे वचनात्स्थापयस्व भोः । योजनोपरि सौमित्रे त्वष्टदिङ्गु समंततः ॥५२॥  
 नियोजयस्व शतशो वाजिवाहान् ममाहया । तथेत्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि तथा सर्वे चकार सः ॥५३॥  
 ततो विप्रैः सुहृद्दिश्च विविधान्नैर्मनोरमैः । धृतेन श्राद्धशेषेण भोजनं राघवो व्यधात् ॥५४॥

और खड़ा होकर विजय इत्नजटित डण्डेवाला तथा मयूरपंखसे निर्मित चमर लेकर रामके ऊपर डुलाने लगा । पीछेकी ओर दूसरा जयनामक सेवक पंखा झलने लगा ॥ ३८ ॥ तीसरा सेवक मुवर्णकलशसे मुशोभित, हजारों मुक्तामालाओंसे मणित तथा इत्नजटित डण्डेवाला सुविशाल छत्र तानकर खड़ा हो गया ॥ ३९ ॥ उनके पीछे हाथीपर सवार होकर लक्ष्मण शीघ्रतासे चल दिये । लक्ष्मणके हाथीके पीछे सीता आदि स्त्रियें जालियोंमेंसे चारों ओरके दृश्योंको देखती हुई चलीं । पुष्पकविमान भी धीरे-धीरे आकाशमार्गसे उड़ता हुआ चला ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उसपर बैठी नगरनिवासिनी स्त्रियें कौतुक देखती हुई रामचन्द्रजीके ऊपर आनन्दसे पुष्पवृष्टि करने लगीं ॥ ४२ ॥ तदनन्तर धुड़सवार, गजसवार और रथसवार सैनिक रामके दोनों ओर पंतिवद्ध होकर खड़े हो गये ॥ ४३ ॥ हारकी तरह कतारवद्ध खड़े उन सैनिकोंने रामको प्रणाम किया । रामने भी अपने करकमलोंसे उनके प्रणामोंको स्वीकार किया ॥ ४४ ॥ जब इस प्रकार श्रीराम नजेन्द्रपर सवार होकर धीरे-धीरे चले, तब दूसरे गजोंपर बैठे हुए गायकगण अपनी-अपनी वीणा लेकर मधुर गान करने लगे ॥ ४५ ॥ रामचन्द्रजी रास्तेमें फूलोंके सुहावने वागोंको देखते, अनेक तरहके बाजारोंका अवलोकन करते, वेश्याओंके विविध नृत्योंके देखते, मनको हरण करनेवाले बाजोंको सुनते, अन्यान्य कौतुकोंको निहारते तथा चारों ओर चतुरंगिणी सेनासे घिरे हुए धीरे-धीरे सेनानिवासके लिए कल्पित उत्तम शिविरमें जा पहुँचे । उस स्थानको दूसरी अयोध्याके समान सुरक्षित देखकर राम हाथीसे उतर पड़े ॥ ४६-४७ ॥ उस समय स्त्री-सैनिकोंके द्वारा वारम्बार किये हुए प्रणामोंको स्वीकार करके अपने हाथसे लक्ष्मणका हाथ पकड़कर रमापति राम तम्भूमें गये और वहाँ सिंहासनपर विराजमान हो गये । सीता आदि स्त्रियें भी अपनी-अपनी सवारियोंसे उत्तरकर तम्भुओंमें जा विराजीं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ पश्चात् श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा कि तुम मेरे आज्ञानुसार सीमाकी सब दिशाओंमें एक-एक कोसकी दूरीपर सैकड़ों सिपाही अलग अलग खड़े कर दो और आठों दिशाओंमें एक-एक योजनकी दूरीपर सैकड़ों धुड़सवार नियुक्त कर दो । “जो आज्ञा” कहकर लक्ष्मणने सब बैसा ही प्रबन्ध कर दिया ॥ ५१-५३ ॥ पश्चात् द्वादशीणों

तांबूलैदक्षिणां दत्त्वा नानाविप्रेभ्य आदरात् । मुखशुद्धि स्वयं कृत्वा तस्थौ सिहासने पुनः ॥५३॥  
 श्रत्वा शास्त्रपुराणानि वेदान्तांशापि सादरम् । सायंसंध्यादिकं कृत्वा हृत्वा होमं यथाविधि ॥५४॥  
 सिहासने समासीनो वेश्यानां नृत्यमुत्तमम् । पश्यन् शृण्वन् गायनं च नीत्वा यामद्वयां निशाम् ५५  
 ततः सुष्वाप पर्यङ्के सीतया सह राघवः । द्वितीये दिवसे तत्र स्थित्वा रामस्तु कौतुकैः ॥५६॥  
 नीत्वा समग्रं सुदिनं त्रीतीये दिवसे पुनः । पूर्वचद्वाद्यघोषाद्यैः शनैः स्थानांतरं ययौ ॥५७॥  
 क्षचिदिनमतिक्रम्य क्षचिद्द्वे त्रीणि राघवः । स्थित्वा पश्यन्कौतुकानि रञ्जयन् जनकात्मजाम् ५८ ॥  
 शनैः शनैर्ययौ मार्गे मासेनैकेन राघवः । प्राप जीर्णं मुद्रलेन त्यक्तमाश्रममुत्तमम् ॥५९॥  
 राममागतमाज्ञाय मुद्रलो नूतनाश्रमात् । भागीरथ्या दक्षिणतः प्राप रामांतिकं तदा ॥६०॥  
 तं हृष्टा राघवश्चापि नन्त्वा सम्पूज्य सादरम् । वासोगेहे समासीनं पप्रच्छ विनयान्मुनिम् ॥६१॥  
 त्वयाऽयमाश्रमस्त्यक्तः किमर्थं मुनिसत्तम् । तत्त्वं वद महाभाग यथावच्च सविस्तरम् ॥६२॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा मुद्रलो वाक्यमन्वीत । अथ धन्योऽस्म्यहं राम निवृत्तं वनवासतः ॥६३॥  
 यस्यां पश्यामि नेत्राभ्यां चिरकालेन राघव । भरतप्राणरक्षार्थं यदा नीता ममाश्रमात् ॥६४॥  
 दिव्यौषध्यस्तदा जातं पूर्वं ते दर्शनं मम । मयाऽयमाश्रमस्त्यक्तः किमर्थं तद्वीमि ते ॥६५॥  
 सान्निध्यं नात्र गङ्गायाः सरव्वा अपि नात्र वै । इति मत्वा मया त्यक्तश्चाश्रमोऽयं महत्तमः ॥६६॥  
 अत्र सिद्धिं गताः पूर्वं शतशोऽथ सहस्रशः । मुनीश्वरा मयाप्यत्र तपस्तपं कियदिनम् ॥६७॥  
 इति राम समाख्यातमाश्रमस्य च मोचने । कारणं च त्वया पृष्ठं किमग्रे श्रोतुमिच्छसि ॥६८॥

तथा मित्रोंके साथ बैठकर रामने घृतमिश्रित नाना प्रकारके आद्वेष पकवानोंका भोजन किया ॥ ५४ ॥  
 आदरसे ब्राह्मणोंको ताम्बूल तथा अनेक प्रकारकी दक्षिणायें देकर रामने मुखशुद्धिके लिए ताम्बूल खाया  
 और पुनः सिहासनपर आ विराजे ॥ ५५ ॥ तदनन्तर वेदान्त आदि सत् शास्त्रों तथा पुराणोंकी कथाको  
 प्रेम और अद्वासे शान्तिपूर्वक सुना । सायंकाल होनेपर पुनः यथाविधि संध्यावंदन तथा हृवन  
 आदिसे निवृत्त होकर सिहासनपर आ सुशोभित हुए । वहाँ रात्रिके दो पहर तक वेश्याभोंका नृत्य-गान  
 देखते-सुनते रहे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तदनन्तर राम सीताके साथ पलंगपर शयन करनेको चले गये । दूसरा  
 भी सारा दिन रामने आनन्दसे वहाँ रहकर विताया । तीसरे दिन सानन्द बाजे-गाजेके साथ धीरे-धीरे  
 दूसरे पड़ावकी ओर बढ़े ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इसी प्रकार कहीं एक दिन, कहीं दो और कहीं तीन दिन तक निवास  
 करते हुए राम जानकीको प्रसन्न करते तथा विविध कौतुकोंको देखते रहे ॥ ६० ॥ इस प्रकार एक मास  
 धीत जानेपर वे मुद्रल कृष्णके छोड़े हुए एक पुराने तथा पवित्र आश्रममें जा पहुँचे ॥ ६१ ॥ रामको अपने  
 पुराने आश्रमपर आये सुनकर मुद्रलकृष्ण भागीरथीके दक्षिण तटपर हित अपने नवीन आश्रमसे दर्शन  
 करनेके लिए उनके पास आये ॥ ६२ ॥ राघवने उन्हें देखकर नमस्कार किया और उनकी विविवत् पूजा की ।  
 पश्चात् ताम्बूल देकर आदरपूर्वक आसनपर बैठाया और उनसे नम्रतापूर्वक कहा— ॥ ६३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ !  
 आपने इस आश्रमको क्यों छोड़ दिया ? हे महाभाग ! इसका कारण विस्तारसे आप हमें कह सुनाइये ॥ ६४ ॥  
 यह सुनकर मुद्रलमुनि कहने लगे—हे राम ! मेरा धन्य भाग्य है कि जो मैं आज बहुत दिनों बाद  
 वनवाससे लौटे हुए आपको अपनी आँखों देख रहा हूँ । पूर्वकालमें भरतके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिए जब  
 आप मेरे आश्रमसे दिव्य धीष्मि ले गये थे, तब मुझे आपका दर्शन मिला था । अब मैंने इस आश्रमको  
 क्यों छोड़ दिया, इसका कारण आपसे कहता हूँ ॥ ६५-६७ ॥ हे प्रभो ! मैंने इस विशाल आश्रमको केवल  
 इसलिए छोड़ दिया है कि यहाँपर गंगा अयवा सरयू इन दोनों पवित्र नदियोंमेंसे कोई भी नदी नहीं  
 है ॥ ६८ ॥ इस आश्रममें निवास करके हजारों मुनीश्वरोंने सिद्धि प्राप्त की है और मैंने भी कुछ दिनों  
 तक यहाँ रहकर तपस्या की है । परन्तु क्या करें, किसी तीर्थके न होनेसे इस स्थानपर बड़ा  
 कष्ट है ॥ ६९ ॥ हे राम ! यह तो मैंने आपके पूछनेके अनुसार इस आश्रमको छोड़नेका कारण कह

तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा पुनस्तं प्राह राघवः । किं कृत्वा तेऽत्र वसति भविष्यति मुने वद ॥७१॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवं प्राह मुद्रलः । यद्यत्र सरयुनद्याः संगमो हि भविष्यति ॥७२॥  
 जाहृव्या तर्द्यहं चात्रं वत्स्ये राम यथासुखम् । तत्स्य वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तं पुनः ॥७३॥  
 किमर्थं सरयुः श्रेष्ठा कुतः प्राप्ता धरातलम् । तत्र वद महाभाग सविस्तारं ममाग्रतः ॥७४॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा मुद्रलो वाक्यमत्रवीत् । तत्र चरितं राम मन्मुखाच्छ्रुतुमिच्छसि ॥७५॥  
 तहिं ते संप्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व रघूत्तम । शंखासुरो महान्देत्यो वेदान् पूर्वं जहार हि ॥७६॥  
 क्षिप्त्वा तांश्च समुद्रे हि स्वयमासीन्महोदधौ । तदर्थं च त्वया मात्स्यं वपुर्वृत्वा महत्तरम् ॥७७॥  
 हतः शंखासुरो वेदास्त्वया दत्तास्तु वेधसे । ततो हर्षेण महता पूर्वरूपं त्वया धृतम् ॥७८॥  
 तदा हर्षेण नेत्रात्ते पतिताश्चाश्रुविंदवः । हिमालये ततो जाता नदी पुण्या शुभोदका ॥७९॥  
 साक्षात्तारायणस्यैव आनन्दाश्रुसमुद्रवा । शनैर्विन्दुसरः प्राप तस्माच्च मानसं ययौ ॥८०॥  
 एतस्मिन्नन्तरे राम पूर्वजस्ते महत्तमः । वैवस्वतो मनुर्यष्टुमुखुक्तो गुरुमत्रवीत् ॥८१॥  
 अनादिसिद्धाऽयोध्येयं विशेषणापि वै मया । रचिता निजवासार्थमत्र यज्ञं करोम्यहम् ॥८२॥  
 पदि ते रोचते चित्ते तच्छ्रुत्वा गुरुरब्रवीत् । अत्र तीर्थं वरं नास्ति नास्ति श्रेष्ठा महानदा ॥८३॥  
 यद्यत्रेवास्ति ते चित्तं यद्युपतिसत्तम । आनयस्व नदीं रम्यां मानसात्पात्कापहाम् ॥८४॥  
 तद्युरोर्वचनाद्राजा मनुवैवस्वतो महान् । टण्टकृत्य महत्त्वापां सन्दधे शरमुत्तमम् ॥८५॥  
 स शरो मानसं भित्त्वा तस्मान्निष्कास्य तां नदीम् । अयोध्यामानयामास पंथानं दर्शयन्निव ॥८६॥  
 शरमार्गानुसारेणायोध्यायां प्राप वै नदी । महोदधौ पूर्वदेशे मिलिता रघुनन्दन ॥८७॥

सुनाया । आगे वया पूछना है, सो कहिये ॥ ७० ॥ मुनिके इस वाक्यको सुनकर रामने कहा—हे मुने ! आप यह बताइये कि वया करनेसे आप फिर इस आश्रममें निवास कर सकते हैं ? ॥ ७१ ॥ रामके प्रेमपूर्ण प्रश्नको सुनकर मुद्रल ऋषिने कहा—यदि यहाँपर सरयू और गंगाका संगम हो जाय तो मैं बड़े सुखसे रह सकता हूँ । इस वाक्यको सुनकर रामने पुनः उनसे प्रश्न किया—॥ ७२ ॥ ७३ ॥ हे महाभाग ! सरयू नदीका इतना श्रेष्ठ माहात्म्य क्यों है और यह कहाँसे धरातलपर आयी है ? इन वातोंका विस्तारसे वर्णन करिए ॥ ७४ ॥ मुद्रलने कहा—हे प्रभो ! आप अपना ही चरित्र यदि मेरे मुखसे सुनना चाहते हैं ॥ ७५ ॥ तो हे रघूत्तम ! मैं आपको सुनाता हूँ, सुनिए । पहिले कभी शंखासुर नामका एक बड़ा भारी राक्षस हुआ था । वह सब वेदोंको हर ले गया ॥ ७६ ॥ उसने उन्हें ले जाकर समुद्रमें डुबो दिया तथा स्वयं भी उसी महासागरमें छिप गया । उसको मारनेके लिए आपने बड़े भारी मत्स्यका रूप घारण किया ॥ ७७ ॥ और उसको मारकर वेदोंकी रक्षा की । वेदोंको लाकर आपने ब्रह्माको दिया और प्रसन्नतापूर्वक पुनः अपना पूर्वरूप घारण कर लिया ॥ ७८ ॥ उस समय आपके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुकी वृद्धं टपक पड़ीं । हिमालयपर गिरी हुई आप नारायणके उन हर्षाश्रुकी वृद्धोंने एक पवित्र तथा निर्मल जलवाला नदीका रूप घारण कर लिया । आगे चलकर वे कासार और कासारसे मानसरोवरके रूपमें परिणत हो गयीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ हे राम । उसी समय आपके पूर्वज महात्मा वैवस्वत मनुने यज्ञ करनेकी इच्छा करके अपने गुरुसे कहा—॥ ८१ ॥ इस अयोध्यापुरीके अनादिकालसे स्थित रहनेपर भो मैने अपने निवासके लिए इसकी कुछ विशेषतापूर्वक रचना करवायी है । इस कारण यदि आप कहें तो मैं इस नगरीमें यज्ञ करूँ । तब गुरुने कहा कि देखिए, न तो यहाँ कोई पवित्र तीर्थ है और न कोई बड़ी नदी ही है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इसलिये यदि आपकी यहीं यज्ञ करनेकी इच्छा हो तो हे नृपतियोंमें श्रेष्ठ नृप ! मानसरोवरसे सुन्दर तथा पापोंको नष्ट करनेवाली एक नदीको यहाँ ले आइए ॥ ८४ ॥ गुरुके इस वचनको सुनकर महान् राजा वैवस्वत मनुने अपने विशाल धनुषको चढ़ा तथा टंकोर करके बाण चलाया ॥ ८५ ॥ वह बाण मानसरोवरको भेदकर उसमेंसे निकली नदीके आगे-आगे चलकर रास्ता दिखाते हुए अयोध्या ले आया । बाणके मार्गका अनुसरण करती हुई वह नदी अयोध्या आयी तथा वहाँसे आगे जाकर पूर्वी महा-

आनीता सा शरेण्व शरयुश्चेति कथ्यते । सरोवरात्समुद्भूता सरयुश्चेति केचन ॥८८॥  
 ततो भगीरथेनेयं कपिलक्रोधवह्निना । विनिर्दृधान् पूर्वजान् वै सागरान् प्रेषितुं दिवम् ॥८९॥  
 भागीरथी समानीता त्वत्पादाब्जसमुद्भूता । तपसा शंकरं तोष्य सरयु भिलिताऽथ सा ॥९०॥  
 वरदानात्कलौ शभोर्गङ्गा ख्यातिं गमिष्यति । अग्रे सागरपर्यंतमेनां गङ्गां वदति हि ॥९१॥  
 तत्र पादसमुद्भूता या विश्वं पाति जाह्नवी । इयं तु नेत्रसंभूता किमद्याग्रे वदास्थ्यहम् ॥९२॥  
 कोटिवर्षसहस्रश्च कोटिवर्षश्चतैरपि । महिमा सरयुनद्याः कोऽपि वक्तुं न वै क्षमः ॥९३॥  
 इति राम समाख्यातं यथा पृष्ठं त्वया मम । मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा लक्षणं प्राह राघवः ॥९४॥  
 सरयुमानयस्त्रात्र शरं मुक्त्वा ममाञ्जया । तथेति रामवचनाद्भूत्वा चापं स लक्षणः ॥९५॥  
 शरं मुक्त्वा तटं भिल्वा सरयुमानयत्क्षणात् । सरयु सा द्विधा भूत्वा मुद्रलाश्रममाययौ ॥९६॥  
 जाह्नव्या मिलिता सापि तां दृढ़ा राघवोऽब्रवीत् । अत्र स्थित्वा लक्षणेन दारितेयं महानदी ॥९७॥  
 अतो दद्रीति नाम्नाऽत्र नगरी ख्यातिमेष्यति । दद्रीयं जगतीमष्ये वदर्यश्च यवाधिका ॥९८॥  
 भविष्यति न संदेहस्तव वासाद्विशेषतः । ततः सीतां समाहृय राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥९९॥  
 मुद्रलस्याश्रमेऽश्रैव सा नीता सरयुर्नदी । पश्य सौमित्रिणा मुक्त्वा शरं मन्नामचिह्नितस् ॥१००॥  
 नारीभिर्मादृभिः सीते पुष्पकेणातिभास्तता । दृढ़ा सा सरयुर्यत्र संगताऽस्ति महानदी ॥१०१॥  
 जाह्नव्या संगमं त्वं हि गच्छस्व गुरुणा द्विजैः । पूजयित्वा सविस्तारं यथोक्तं वचनं पुरा ॥१०२॥  
 आगच्छस्व ततः शीघ्रमत्र त्वं मम सन्निधौ । विशेषान्मुद्रलस्यापि सन्निधावद्य वै पुनः ॥१०३॥  
 नवीनसरयुनद्या भगीरथ्यास्तु संगमे । पूजनं त्वं मया साकं कर्तुमर्हसि मैथिलि ॥१०४॥

सागरमें मिल गयी ॥८६॥८७॥ शरके द्वारा लायी जानेसे लोग उसको 'शरयु' नदी कहने लगे । अथवा सरोवरसे निकलकर आनेके कारण उसका 'सरयु' नाम पड़ा, कुछ लोगोंका ऐसा कथन है ॥८८॥ उसके बाद राजा भगीरथ कपिल मुनिकी क्रोधाग्निसे जलाये गये अपने पूर्वज सगर-पुत्रोंको स्वर्ग भेजनेकी इच्छासे आपके चरणारविन्दसे प्रादुर्भूत भगीरथी गंगाको ले आये । वादमें शंकरजीको तपसे प्रसन्न करके उस नदीको सरयूसे ला मिलाया ॥८९॥९०॥ शकरभगवान्के वरदानसे गंगाकी बड़ी भारी प्रसिद्धि हुई तथा समुद्र तक उसको लोग गंगा कहने लगे ॥९१॥ हे प्रभो ! आपके चरणकम्लोंसे निकलो हुई गंगा समस्त विश्वको पवित्र करने लगी । वैसे ही आपके नेत्रजलसे उत्पन्न होकर यह सरयु भी लोगोंको पावन करने लगी । हे भगवन् ! अब मैं आगे क्या कहूँ ? ॥९२॥ करोड़ों वर्षोंमें भी इस सरयु नदीकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर सकता ॥९३॥ हे राम ! आपने जो पूछा था, सो मैंने कह सुनाया । मुनिके इस वाक्यको सुनकर रथुपति रामचन्द्रजीने लक्षणसे कहा—॥९४॥ तुम बाण छोड़ तथा सरयुके तटका भेदन करके उसे यहाँ ले आओ । लक्षणने वैसा ही किया और वह सरयु दो भागोंमें विभक्त होकर झणभरमें मुद्रलक्षणिके प्राचीन आश्रममें आ पहुँची ॥९५॥९६॥ उसको अकेली ही नहीं, किन्तु जाह्नवीके संगम सहित आयी हुई देखकर रामने कहा कि लक्षण दारण (चीर) करके इस नदीको यहाँ ले आये हैं ॥९७॥ इस लिए इस जगहपर दद्री नामकी प्रसिद्ध नगरी बसेगी । वह दद्री नगरी पृथ्वीतलमें वदरीनाथ धामसे भी जौभर वढ़कर पुनीत होगी ॥९८॥ इसमें संदेह नहीं है । विशेष करके आपके यहाँ निवास करनेसे इसको और भी अधिक ख्याति होगी । पश्चात् रामने सीताको बुलाकर कहा—॥९९॥ सीते ! देखो, सुमित्रापुत्र लक्षण मेरे नामसे चिह्नित बाण छोड़कर सरयु नदीको यहाँ मुद्रल मुनिके आश्रममें ले आये हैं ॥१००॥ अब तुम हमारी माताओं, अन्य स्त्रियों, गुरुजनों तथा ग्राह्यणोंको साथ ले तथा इस पुष्पक विमानपर सवार होकर जहाँ सरयु तथा गंगाका संगम है, वहाँ जाओ और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार विधिवत् उनकी पूजा कर आओ ॥१०१॥१०२॥ वहाँसे लौटकर शीघ्र ही मेरे तथा इन मुद्रल मुनिके सम्मुख इस नवीन सरयु तथा भगवती भगीरथीके संगमका

तथेति रामवचनमंगीकृत्य विदेहजा । पूजासंभारमादातुं विवेश वसनगृहम् ॥ १०५ ॥  
इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे सरयूद्विघाकरणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

### पञ्चमः सर्गः

( कुम्भोदरोपाख्यान )

श्रीरामदास उवाच

ततो गृहोत्वा सभारान् पूजार्थं जानकी जवात् । कौसल्यादिश्श्रभिस्तु पुष्पकं चारुरोह सा ॥ १ ॥  
क्षणेन बृद्धा सरयूर्थत्र सा गङ्गया शुभा । सङ्गताऽस्ति महाश्रेष्ठा तत्र प्राप विदेहजा ॥ २ ॥  
पतिं विनाऽग्निना नारी सीमामुल्लंघ्य न व्रजेत् । स दोषोऽत्र न विज्ञेयः सीतायात्रा विहायसा ॥ ३ ॥  
उत्तीर्थं सा विमानाग्रयान्नमस्तुत्वाऽथ सङ्गमम् । पुरोधसा चोदिता सा नारिकेलं सवायनम् ॥ ४ ॥  
मागीरथ्यै समर्प्याथ स्नात्वा चैव यथाविधि । सगमं पूजयामास चोपस्कारैर्यथाविधि ॥ ५ ॥  
सुरामांसोपहारैश्च पक्वान्नं वैलिभिस्तथा । पट्टकूलादिभिर्वस्त्रेषुक्ताहारैः सचंदनैः ॥ ६ ॥  
दिव्यैराभरणैश्चित्रैर्वायनाद्यैः सविस्तरम् । ततः सुवासिनीः पूजय पूजयित्वा त्वरुंधतीम् ॥ ७ ॥  
वसिष्ठं ब्राह्मणांश्चापि भोजयामास विस्तरैः । पट्टकूलादिभिर्वस्त्रैदिव्यैराभरणादिभिः ॥ ८ ॥  
सुवासिनीब्राह्मणांश्च तोषयामास मैथिली । स्वयं कृत्वोपहारं न राघवार्थमुपोषिता ॥ ९ ॥  
ययौ यानेन शीघ्रं सा राघवस्यान्तिकं मुदा । ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि सीतया गुरुणा द्विजैः ॥ १० ॥  
गङ्गयोः सङ्गमे चक्रे पूजनं स यथाविधि । यथा कृतं च वैदेश्वातस्माच्चापि शताधिकम् ॥ ११ ॥  
ततः सहस्रशो विप्रान् भोजयामास सादरम् । दत्त्वा दानान्यनेकानि गोदस्तिरथवाजिनाम् ॥ १२ ॥  
ततो भुक्त्वा स्वयं रामः सीतया बन्धुभिर्जनैः । सिंहासने समासीनो सौमित्रिभिर्मदमन्तर्वीत् ॥ १३ ॥

मेरे साथ मिलकर पूजन करो ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ तब विदेहराजकी पुत्री सीता “जो आज्ञा” कहकर पूजाकी सामग्रियें लेनेको तंद्रमें गयी ॥ १०५ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे भाषाटोकायां सरयूद्विघाकरणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासजीने कहा—बादमें जानकी पूजाका सब सामान लेकर कौसल्या आदि सासुबो तथा अन्य बहुओंके साथ शीघ्रतासे पुष्पक विमानपर जा बैठों ॥ १ ॥ क्षण भरमें विदेहराजकी पुत्री सीता उस पुराने सङ्गमपर जा पहुँचीं, जहाँपर कि सरयू पवित्र गङ्गा नदीसे मिली हैं ॥ २ ॥ पलीको पतिके विना आगेकी सीमा नहीं लौधनी चाहिये । यह दोष यहाँ सीताको नहीं लग सकता । क्योंकि सीताका गमन आकाशमार्गसे हुआ था ॥ ३ ॥ वहाँ पहुँचनेपर सीता विमानसे नीचे उतरीं और सङ्गमको नमस्कार किया । पञ्चात् पुरोहित-के कथनानुसार सीताने बायन ( ऐपन ) सहित नारियल भागीरथीको समर्पण करके उसमें विघिवत् स्नान किया । फिर सुरा मांस-पकवान आदिकी बलिसे, दुपट्टा आदि सुन्दर वस्त्रोंसे, दिव्य आभूषणोंसे, मुक्ताके हारसे, चन्दनसे तथा बायन आदिकी पूजाके उपकरणोंसे विघिवत् तथा विस्तारपूर्वक सीताने संगमका पूजन किया । तदनन्तर पतिपुत्रवती सोहागिन स्त्रियोंकी पूजा करके सीताने अरुन्धतीका पूजन किया ॥ ४-७ ॥ तब उनको तथा वसिष्ठ आदि सब ब्राह्मणोंको भोजन कराके सुवासिनी स्त्रियोंको दुपट्टों, धोतियों तथा दिव्य आभूषणोंसे सीताने संतुष्ट किया । स्वयं निराहार रहकर सीताने रामके कल्याणार्थं उपवास किया ॥ ८ ॥ ९ ॥ तदनन्तर विमानपर सवार होकर आनन्दसे शीघ्रतापूर्वक रघुनन्दन रामके पास आ गयीं । रामने भी सीताको, गुरु वसिष्ठको तथा विप्रोंको साथ लेकर सीताकी की हुई पूजासे सौगुने धूम-धाम तथा विघिसे गङ्गा-सरयूके सङ्गमको पूजा की ॥ १० ॥ ११ ॥ वहाँ उन्होंने बड़े आदरभावसे हजारों विप्रोंको भोजन कराया । अनेक गायें, हाथी, धोड़े तथा

ज्ञातव्यो मम वासोऽत्र रात्रीनवं रघुत्तमं । सीमाचारान् कुरुप्व त्वं शासनं यन्मयोच्यते ॥४॥  
 ब्रह्मनार्गी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः । यः कश्चिद्वा समायाति पथिकः स ममाज्ञया ॥५॥  
 मया संपूजितो नैव गन्तुं देयः समन्ततः । मयाऽदृष्टो गतः कश्चित्तदा वः शासनं मम ॥६॥  
 तद्रामवचनं श्रुत्वा तथा चक्रे स लक्षणः । च्यवनो मुनिवर्यस्तु ज्ञात्वा रामं समागतम् ॥७॥  
 दर्शनार्थं ययौ शीत्रं गमेणापि सुपूजितः । स्थित्वासने वस्त्रगेहे राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥८॥  
 गम राजीवपत्राक्षं गङ्गाया दक्षिणे तटे । आश्रमः कीकटे देशे ममास्ति परमः शुभः ॥९॥  
 कंदमूलफलार्थं हि विघ्नं कुर्वन्ति मागधाः । ममाश्रमे राजदूतास्तेभ्यो रक्षा विधीयताम् ॥१०॥  
 च्यवनस्य वचः श्रुत्वा टण्टकुत्य महद्वनुः । वाणे मुक्त्वाऽश्रमात्तस्य परितः परिखोपमाम् ॥११॥  
 चकार रेखां वाणेन दुष्टैर्गतुं च द्यक्षमाम् । रामचाणकृता रेखा यत्र तत्र पुरी शुभा ॥१२॥  
 रामरेखेति नाम्नाऽसीत्या चैव मता नदी । च्यवनश्च ततो हृष्टो राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥  
 नियः स कीकटे देशो वर्तते रघुनदन । तव वाक्याद्विव्यंति तत्र पुण्यस्थलानि हि ॥१४॥  
 तद्वित्त्वयाऽथ वक्तव्यं वचनं मे सुखास्पदम् । तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वाक्यं रामस्तमब्रवीत् ॥१५॥  
 कीकटेषु गया पृण्या नदी पृण्या तु पुनपुना । आश्रमस्ते महापृण्यः पृण्यं राजवनं परम् ॥१६॥  
 भविष्यति न सन्देहो मम वाक्यान्मुनीश्वर । च्यवनस्तेन संतुष्टो रामं दद्वाऽश्रमं ययौ ॥१७॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तस्य सत्रे गमेण निमिते । प्रत्यहं कोटिशो विप्रा भुज्जन्ति यतिभिः सह ॥१८॥  
 कुम्भोदरो मुनिः प्रागात्सीमाचारातिकं तदा । गङ्गायात्राप्रसंगेन गयां गन्तुं समुद्धतः ॥१९॥  
 समागतः प्रयागाच्च दृतान्दृष्टाऽत्रवीद्वचः । हे दृता उत्तरं देयं यूयं कस्याज्ञया स्थिताः ॥२०॥

रथ उन्हें दाम में दिये ॥ १२ ॥ उनको भोजन करानेके बाद भाई-बन्धुओं तथा अन्यान्य लोगोंके साथ सीता तथा स्वयं रामने भी भोजन किया । तत्पश्चात् सिहासनपर बैठकर उन्हें लक्षणसे कहा—॥ १३ ॥ हे रघुत्तम ! मैं इस जगह नो दिन तक निवास करूँगा । इसलिए मेरे कहनेसे तुम सीमापर खड़े दूतोंको आज्ञा दो कि कोई भी यात्री, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी विना मेरी पूजा ग्रहण किये न जाने पाये । यदि कोई घला गया और मुझे जात हुआ तो मैं दूतोंको दण्ड दूँगा ॥ १४-१६ ॥ रामके वचन सुनकर लक्षणने वैसी ही आज्ञा दे दी । उधर च्यवन मुनिने जब सुना कि यहाँ रामचन्द्र आये हुए हैं तो वे रामके दर्शनार्थ वहाँ आये । रामने उनकी पूजा की । पश्चात् तम्बूमें सुन्दर आसनपर विराजमान होकर मुनिने रामसे कहा—॥ १७ ॥ १८ ॥ हे कमलपत्रके समान नेत्रोवाले राम ! मगध देशमें गङ्गाके दक्षिणी तटपर मेरा एक परम रमणीक आश्रम है ॥ १९ ॥ परन्तु मेरे उस आश्रममें मगध देशके दूत फल-मूल आदि लेनेमें बड़ा विघ्न ढालते हैं । इसलिए आप उन विघ्नोंसे मेरी रक्षा करें ॥ २० ॥ च्यवनकी बात सुनकर रामने घनुषका टंकोर करके एक बाण छोड़ा । जिससे च्यवन-आश्रमके चारों ओर खाईके समान गहरी लकीर सिंच गयी, जिसको लांधना उन दुष्टोंके लिए असंभव हो गया । जहाँ रामके बाणको रेखा खिची थी, वहाँपर “राम-रेता” नामकी सुन्दर नगरों वसी और रामरेखा नामकी नदी भी प्रवर्तित हो गयी । इसके बाद च्यवनक्रृष्ण प्रसन्न होकर रामचन्द्रजीसे बोले—॥ २१-२३ ॥ हे रघुनन्दन ! अभी कीकट देश निन्द्य माना जाता है । आपके कहनेसे वह भी पुण्यस्थान अवश्य बन जायगा । इसोलिए आप मुझे सुख देनेवाला कोई वचन आज कहें । मुनिके इस वचनको सुनकर रामजीने सहृष्ट कहा—॥ २४ ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वर ! मेरे कहनेसे कीकट देशमें गया, पुनपुना नदी, आपका आश्रम तथा राजवन ( राजगृह ) पुण्यस्थल होंगे । इसमें आप कुछ भी संदेह न मानें । श्रीभगवानुके इस कथनसे संतुष्ट होकर च्यवनक्रृष्ण रामजीसे आज्ञा लेकर अपने आश्रमको छले गये ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके बाद रामजीके द्वारा स्थापित अग्रक्षेत्रमें प्रतिदिन करोड़ों ब्राह्मण और यति भोजन करने लगे ॥ २८ ॥ ऐसा होनेपर एक दिन गङ्गायात्राके प्रसङ्गमें कुम्भोदर नामके मुनि प्रयागसे रामजीकी भोजनशालाके लिए नियत की हुई सीमापर आये । वहाँ दूतोंको देखकर वे बोले—हे दूतो !

आकाशचुंबिनश्चित्रा इमेऽग्रे कस्य वै ध्वजाः । हनुमत्कोविदारांडजेशवाणांकिताः शुभाः ॥३१॥  
 श्वेतनीलहरित्पीतवर्णाः परमशोभनाः । दृश्यते ऽग्रे पताकाश्च श्रूयते जयनिःस्वनः ॥३२॥  
 तत्स्य वचनं श्रुत्वा दूताः प्रोचुस्त्वरान्विताः । रामो राजीवपत्राक्षोऽयोध्यायाः पालकः प्रभुः ॥३३॥  
 सोऽग्रे यात्रार्थमायातो वयं तस्याज्ञया स्थिताः । सत्रमन्बस्य रामेण निर्मितं चात्र वर्तते ॥३४॥  
 जुधार्तस्त्वं सुखं गच्छ भृत्वा पीत्वा सुखं त्रज । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा परिवृत्य मुनिः पुनः ॥३५॥  
 आगतो येन मार्गेण तेन मार्गेण संययौ । गच्छन्त तं मुनिं दृश्वा रामदूतास्त्वरान्विताः ॥३६॥  
 रुद्ध्वा मार्गं मुनेस्तस्य वचनं प्रोचुगदरात् । किमर्थं त्वं परावृत्य मुने गच्छसि वै पुनः ॥३७॥  
 आगतोऽसि पथा येन तेनैव त्वं वदस्व नः । इति तेषां वचः श्रुत्वा निवन्धानमुनिरप्यसौ ॥३८॥  
 तूष्णीं स्थित्वा क्षणं ध्यात्वा निश्चयं कृतवान् हृदि । इदानीं राघवोऽध्योध्यां यात्रां कृत्वा गमिष्यति ॥३९॥  
 नानादेशेषु सर्वत्र नृणां तदर्शनं कथम् । भविष्यति तथाऽन्यत्र रामतीर्थानि भूतले ॥४०॥  
 भविष्यन्ति कथं नर्णा महत्पापहराणि च । कथं रामेश्वरा भृम्यां भविष्यन्ति गतिप्रदाः ॥४१॥  
 अतः किञ्चित्करोम्यद्य येन रामस्तु भूतले । यात्रोदेशेन सर्वत्र सीतया सह यास्यति ॥४२॥  
 अनेन लोकशिक्षाऽपि भविष्यति न संशयः । इति निश्चित्य स मुनिः प्राह दूतान्स्मयन्निव ॥४३॥  
 दूताः शृणुत मे वाक्यं हतो येन दशाननः । ब्रह्मपुत्रो बन्धुपुत्रैर्न कृतं तीर्थसेवनम् ॥४४॥  
 तथा यज्ञः कृतो नैव तस्यान्नं नाहमशिनयाम् । दीयतां मम मार्गो हि भवद्विर्वचनं मम ॥४५॥  
 कथनीयं राघवाय यात्रायज्ञान् करिष्यति । इति तस्य वचः श्रुत्वा विमस्याविष्टमानसाः ॥४६॥  
 दत्त्वा मार्गं शापभीत्या दूता रामांतिकं ययुः । रामं नत्वा शनैस्तस्य कणे वृत्तं न्यवेदयन् ॥४७॥  
 राघवोऽपि मुनेस्तस्य ज्ञात्वाऽभिप्रायमुत्तमम् । सर्वं वृत्तं सभामध्ये चकार सस्मितः स्फुटम् ॥४८॥

तुम लोग किसकी आजासे यहाँ ठहरे हो ? ये सामने गगनस्पर्शी तथा चित्र-चित्र हनुमान्, कोविदार, गरुड़ और वाणसे चिह्नित श्वेत, नील, हरित एवं पोत रंगकी परम सुन्दर पताकायें किसकी फहरा रही हैं ? यह जयशब्द किसका सुनाई दे रहा है ? ॥२६-३२॥ मुनिके वचन सुनकर दूत बोले —कमलनवन और अयोध्याके पालक प्रभु रामचन्द्रजी यात्राके लिए यहाँ आये हुए हैं । उनको आजासे ही हम लोग यहाँ उपस्थित हैं । उन्हीं रामजीके द्वारा स्थापित अन्नक्षेत्र यहाँ है । यदि आप भूखे हों तो सुखसे वहाँ चलिए और भोजनादि करके जाइये । उनके वचन सुनकर मुनि लौट पड़े और जिस मार्गसे आये थे, उसी मार्गसे फिर जाने लगे । जाते हुए मुनिको देख शीघ्र दूत लोग उनकी राह रोककर सादर बोले —हे मुने ! आप जिस मार्गसे आये थे, उसी मार्गसे फिर लौटे क्यों जा रहे हैं ? आप जिस कार्यसे आये हों, उसे हम लोगोंको बताइए । दूतोंके इस आग्रह भरे वचनको सुना तो चुपचाप खड़े होकर योड़ो देर हृदयमें सोच करके मुनिने विचार किया कि यदि इस समय रामचन्द्रजी यात्रा करके अयोध्या चले जायेंगे ॥३३-३९॥ तब अन्यान्य देशोंके मनुष्योंको उनका दर्शन कैसे मिलेगा और दूसरे स्थानोंपर मनुष्योंके बड़ेसे बड़े पापोंको नष्ट करनेवाला रामतीर्थं कैसे बनेगा ? अनेक मोक्षदायक रामेश्वर कैसे स्थापित होंगे ? इस लिए आज मैं कोई ऐसा उपाय करता हूँ कि जिससे रामचन्द्रजी संसारमें सब स्थानोंपर यात्राके उद्देश्यसे सीताजीके साथ जायें ॥४०-४२॥ इस यात्रामें लोगोंको शिक्षा भी मिलेगी । इसमें संदेह नहीं है । ऐसा विचार करके कुछ हैंसते हुए मुनिने दूतोंसे कहा—॥४३॥ हे दूतो ! मेरे वचन सुनो । जिसने ब्राह्मणपुत्र दशानन रावणको मारा और भाई एवं पुत्रोंके सहित न तीर्थसेवन किया और न यज्ञ ही किया, उस रामके अन्नको मैं नहीं खाऊंगा । आप लोग मुझे जाने दें । मेरी बात रामसे कहियेगा । इसे सुनकर वे अवश्य तीर्थयात्रा तथा यज्ञ करेंगे । मुनिके इस वचनको सुनकर वे घबड़ाये हुए दूत शापके ढरसे मुनिको मार्ग देकर रामचन्द्रजीके पास गये । वहाँ पहुँचकर रामजीको प्रणाम करके उनके कानमें उस मुनिकी बातको धीरेसे निवेदन कर दिया ॥४४-४७॥ श्रीरामने भी मुनिके उस उत्तम अभिप्रायको जानकर सब बात

मंत्रिभिर्वन्धुभिश्चैव वसिष्ठेन पुरोधसा । मन्त्रयित्वा सुनेवाक्यं सत्यं मेने रमापतिः ॥४९॥  
 ततो निश्चितवान् रामः सभामध्ये पुरोधसा । आदौ कार्या तीर्थयात्रा यज्ञाः कार्यास्ततः परम् ॥५०॥  
 ततो रामाज्ञया दूता गत्वा योध्यां पुरीं प्रति । तद्वृत्तं च सविस्तारं सुमंत्राय न्यवेदयन् ॥५१॥  
 सुमंत्रोऽपि च तद्वृत्तं श्रुत्वा वस्त्रधनानि च । उष्ट्राश्वरथनागादैः प्रेषयामास सादरम् ॥५२॥  
 पुष्पकं च तदा प्राह रामः शक्तिस्तवास्ति हि । यद्यप्यद्य गिरा मे त्वं श्रीघ्रेष्व यथाघलम् ॥५३॥  
 उष्ट्राश्वरथनागादैर्निवासं च तवोदरे । करिष्यन्ति सविस्तारं तथा विस्तीर्णतां भज ॥५४॥  
 सर्वेषां भास्त्राहार्थं शक्तिरस्तु यथासुखम् । कस्मिन्काले सूक्ष्मरूपं महद्रूपं कदापि च ॥५५॥  
 यथाकामा मया शक्तिस्तव द्वचा न संशयः । तच्छ्रुत्वा रामवचनं पुष्पकं दश्योजनम् ॥५६॥  
 समंततस्तथोच्चं हि व्यवर्धत द्वियोजनम् । शताङ्गलैश्च सोपानैर्हेमरत्नोद्भैश्चितम् ॥५७॥  
 कोटिश्वर्यप्रतीकाशं नानाधातुविचित्रितम् । कलशः शतसाहस्रैर्हेमरत्नविविद्वृत्तैः ॥५८॥  
 जालरध्मेगवाक्षैश्च मुक्ताहारैविभूषितम् । कपाटैर्दर्पणोद्भैर्जलयंत्रश्चतैर्वृतम् ॥५९॥  
 पुष्पाणां वाटिकाभिश्च नानापक्षिनिनादितम् । सर्पमस्तकजा यत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥६०॥  
 निश्चायां मण्यश्चित्राः प्रभा विस्तारयन्ति हि । गोपुराणि च भासन्ते शतशोऽथ सहस्रशः ॥६१॥  
 तत्र प्रायमिकायां तु पक्ती श्रीराघवाज्ञया । उष्ट्राश्वरथनागादीन् दूताश्वारोहयस्तदा ॥६२॥  
 द्वितीयायां काष्ठुचयान् तुणोलूखलमूसलान् । द्वितीयायां धान्यराशीन् पाकामत्राणि वै ततः ॥६३॥  
 पञ्चम्यां तु शतधनीश्च ततः शत्राण्यनेकशः । तत ऊर्ज्वं राजवाहानश्चोष्ट्ररथवारणान् ॥६४॥  
 अष्टमायां राजकोशान् वस्त्रधान्यविनिर्मितान् । हड्डशालास्ततः श्रेष्ठा दासीदासास्ततः परम् ॥६५॥  
 नटादीनां ततः शाला वारखीणां ततः परम् । ततो वीरानघिगांश्च तेभ्यः श्रेष्ठास्ततः परम् ॥६६॥  
 गच्छन्ति तुरंगैर्यें तान् पञ्चदश्यपिता ततः । रथयोद्यांस्ततोऽप्युद्धं गजांश्चैव ततः परम् ॥६७॥

सभामें मुसकाते हुए कही ॥ ४८ ॥ मन्त्रियों, बन्धुओं तथा पुरोहित वसिष्ठजीके साथ परामर्श करके रमापति रामने कुम्भोदर मुनिके वाक्यको सत्यसंगत माना ॥ ४९ ॥ इसके बाद सभामें पुरोहितके साथ परामर्श करके रामचन्द्रजीने निश्चय किया कि पहले तीर्थयात्रा और उसके बाद यज्ञ करना चाहिए ॥ ५० ॥ ऐसा निर्णय हो जानेके बाद रामचन्द्रजोकी आज्ञासे दूतों अयोध्या जाकर मन्त्री सुमन्त्रसे सब हाल विस्तारपूर्वक कहा । सुमन्त्रने भी उस समाचारको सुनकर सादर वस्त्र-धन आदि ऊंट, घोड़ा, रथ और हाथी आदिपर लदवाकर रामजीके पास भेजा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तब रामने पुष्पकविमानसे कहा—तुम्हारेमें अपार शक्ति है । अतएव तुम अपने बलके अनुसार विस्तृत बनो । क्योंकि तीर्थयात्राके भूमय ऊंट, घोड़ा, रथ और हाथी आदि भी हो तुम्हारे अन्दर ही निवास करेंगे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ कामके अनुरूप अर्थात् जैसा कार्य हो, वैसा तुम्हारा बल भी हो जाय । ऐसी शक्ति तुम्हें मैने दी है । इसमें संशय नहीं है । रामजीके इस वचनको सुनकर सौ अट्टालिकाओं और सौने तथा रत्न आदिकी सौङ्ख्यियोंवाला, करोड़ों सूर्योंकी कान्तिवाला, अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्रित, सुवर्ण तथा रत्नजटित सहस्रशः कलशोंसे युक्त, मोतियोंके द्वारा विभूषित, खिड़कियों तथा चिकोसे युक्त, काचमढ़े फ़ाटकों तथा संकड़ों फ़व्वारोंसे शोभित, भिन्न-भिन्न प्रकारके पक्षियों द्वारा कलरवित, पुष्पवाटि-काबोंसे मणिष्ठ, जिनमें संकड़ों-हजारोंकी संख्यामें प्रधान द्वार भासित हो रहे थे, इस प्रकार वह पुष्पकविमान सर्वविध साधनोंसे सम्पन्न, दस योजन लम्बा तथा दो योजन ऊँचा हो गया ॥ ५५-६१ ॥ ऐसा हो जानेपर भगवान् रामचन्द्रकी आज्ञासे दूतोंने पहली पंक्तिकी अट्टालिकामें ऊंट, घोड़े, रथ तथा हाथी आदिको चढ़ा दिया । दूसरी पंक्तिकी अट्टालिकामें काष्ठका ढेर तथा वास, ओखली-मूसल आदि, तोसरो अट्टालिकामें अन्नसमूह, चौथीमें भोजनालयके पात्र, पांचवीमें तोप आदि, छठीमें अन्य विविध प्रकारके शस्त्र, सातवीं अट्टालिकामें राजवरानेके वाहन, आठवींमें राजकोश, नवीं अट्टालिकामें वस्त्र-अन्न आदिसे युक्त श्रेष्ठ बाजार, दसवीं अट्टालिकामें

आरोहयस्ततो दृतान् राज्ययोग्याधिकारिणः । सुहनुप्रजनस्त्रीभिनृपान्मांडलिकांस्ततः ॥६८॥  
 ततोऽप्युच्चर्व राघवस्य सुहदश्च पुरोक्तः । ततो भोजनशालाश्च विश्वच्चैव मनोरमाः ॥६९॥  
 पाकशालास्ततः पंच स्त्रीणां भोक्तुं ततो दश । तत उच्चर्व हि बन्धुनां मातृणां च गृहाणि च ॥७०॥  
 तत उच्चर्व राघवस्य सभा सिंहासनान्विता । ततोऽप्युच्चर्व च सीताया गेहं नानासखोद्वृतम् ॥७१॥  
 ततोऽप्युच्चर्व राघवस्य क्रीडास्थानं तु सीतया । ततोऽप्युच्चर्व पश्टिमायां राज्ञां सुहदां स्त्रियः । ७२॥  
 ततः स्त्रीणां सभार्थं हि सप्त शालाः शुभावहाः । चित्रशाला द्वादशाथ वयसां पंच वै ततः ॥७३॥  
 पुष्पारामदीकानां हि पंच शालास्ततः शुभाः । ततोऽप्युच्चर्व तु शालायां घटीयंत्रादिकौतुकम् ॥७४॥  
 व्याघ्रादीनां ततः शाला त्वेका रम्याऽतिविस्तृता । ततोऽप्युच्चर्वमग्निहोत्रशाला श्रीराघवस्य च ॥७५॥  
 ततः शिवार्चनस्यैका शाला ज्ञेया शुभावहा । विप्राणां च ततः शालाः शाला विद्यार्थिनां ततः ॥७६॥  
 यतीनां च ततः शाला वायशाला ततः परम । जलशाला ततः श्रेष्ठा जलयन्त्रान्विता ततः ॥७७॥  
 ततोऽप्युच्चर्वमाद्र्वस्त्रशोषणार्थमनुत्तमाः । शतशालास्त्रिवमाः पूर्णाश्रकुस्ते रामसेवकाः ॥७८॥  
 रामोऽपि दृष्टा ताः सर्वा आहरोह स्वयं तदा । ततो नदत्सु वायेषु स्तुवत्सु मागधादिषु ॥७९॥  
 नर्तन्सु वारनारीषु पताकासु चलत्सु च । प्रकाशयन् दश दिशो विमानं राघवाज्ञया ॥८०॥  
 अगमत्पूर्वदिग्भागात् प्रतीचीं तपनोपमम् । विहायसा वायुवेगं किंकिणीजालमण्डितम् ॥८१॥  
 यत्रां प्रथागाभिगुणं श्रीरामध्वजचिह्नितम् ।

विष्णुदास उवाच

कथं रामस्य चत्वारो ध्वजाः प्रोक्ताः पुरा त्वया ॥८२॥  
 तत्सर्वं विस्तरेणाद्य श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।

श्रीरामदास उवाच  
 शैशवे ऋग्नाथस्तु स्वपितृस्यांदनस्थितः ॥८३॥

दास तथा दासियोंको, ग्यारहवीमें नटादिकोंको, बारहवीमें वेश्याओंको, तेरहवीमें पहलवानोंको, चौदहवीमें पैदल चलनेवालोंको, पंद्रहवीमें श्रेष्ठ घुडसवारोंको, सोलहवीमें हाथियों तथा हाथीपर सवारी करनेवालोंको, सत्रहवीमें बन्दूक आदि छोड़नेवालोंको, अठारहवीमें राज्यके अधिकारी दूतोंको और उन्नीसवीमें रामचन्द्रके मित्र राजाओंने अपने पुत्रों एवं स्त्रियों आदिके साथ स्थान पाया । बासवीं कक्षामें नगरके मित्रोंको स्थान मिला । इसके बाद बीस भोजनशालाये बनीं । भोजनशालाओंके ऊपर पाँच पाकगृहको स्थान मिला और उनके ऊपर स्त्रियोंके दस भोजनगृह बने । उसके ऊपर भाइयों तथा माताओंके गृह, बादमें सिहासनसे अलंकृत राजसभा, राजसभाके ऊपर बहुत-सी सखियोंसे युक्त सीताजीका गृह बना और सीताजीके गृहके ऊपर सीता सहित रामका क्रीडास्थान बनाया गया । क्रीडास्थानके ऊपर मित्रोंको स्त्रियोंको स्थान मिला । इसके बाद स्त्रियोंकी सभा से लिये नुखदायक सात अट्टालिकाय निर्मित की गयीं । स्त्रीसभास्थानके बाद बारह चित्रशालायें और पाँच पक्षिशालायें निर्मित की गयीं । पक्षिशालाके बाद सुन्दर पुष्प आदिके पाँच स्थान बनाये गये । उसके ऊपर बीनुकमय सात घटीयन्त्र आदि रखे गये । बादमें अति विस्तृत एवं रम्य एक शाला व्याघ्रादि जन्तुओंके लिए नियत की गयी । उसके ऊपर अग्निहोत्रगृह और अग्निहोत्रगृहके ऊपर शिवजीके पूजनका स्थान, इसके बाद विप्रशाला, विद्यार्थीशाला, संन्यासीशाला, वायशाला, जलयन्त्रादि युक्त सुन्दर जलशाला और जलाशालाके बाद गीले वस्त्रोंको सुखानेका उत्तम स्थान बना । इस प्रकार रामचन्द्रजीके सेवकोंने इन सौ शालाओंसे उन अट्टालिकाओंको पूर्ण किया ॥६२-७८॥ इस प्रकार सर्वया पूर्ण देखकर रामचन्द्रजी स्वयं विमानपर बैठे । रामचन्द्रजीके बैठनेके बाद बाजे बजने और भाटोंके द्वारा स्तुति करने एवं वेश्याओंके नाचनेपर दसों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ सूर्यके समान तेजस्वी तथा पवनके समान वेगवाला रामचन्द्रजीकी ध्वजासे चिह्नित वह विमान रामके आजानुसार पूर्वदिशासे पश्चिमकी ओर प्रथागके लिए चला ।

अतः सोप्यस्य रामस्य कोविदारध्वजः स्मृतः । ब्राणध्वजांकितरथमारुद्धा ताटिकाँ वने ॥८४॥  
 जयानैकेन चाणेन तस्माद्बाणध्वजः स्मृतः । छिन्नं वज्रध्वजं दृष्ट्वा रावणेन स राघवः ॥८५॥  
 ध्वजेऽकरोद्भायुपुत्रं तस्मात्प्रोक्तः कपिध्वजः । रणे चिमूळितं दृष्ट्वा रामो मातलिनं तदा ॥८६॥  
 स्थितः स्वीयरथे दिव्ये तस्माच्च गरुडध्वजः । शुक्लायां हि पताकायां कोविदारोऽस्ति वै शुभः ॥८७॥  
 चाणः शुभोऽस्ति नीलायां हरितायां तु मारुतिः । पीतायां गरुडो ज्ञेयः श्रीरामस्यांदनोपरि ॥८८॥  
 चतुर्षु स्यांदनेव्येवं चत्वारः कीर्तिं ता ध्वजाः । कोविदारध्जो रामः श्रीरामो मार्गणध्वजः ॥८९॥  
 कपिध्वजो राघवेंद्रो भूपेशो गरुडध्वजः । एवं नामान्यनंतानि प्रोक्ष्य राघवस्य हि ॥९०॥  
 तस्माद्रामध्वजाः प्रोक्ताश्चत्वारश्च मया तव । वज्रध्वजांकितरथे स्थित्वा रामेण संगरः ॥९१॥  
 कुतस्तस्माद्राघवेंद्रं तं वदन्त्यशनिध्वजम् । अतो रामध्वजस्यैकमेव चिह्नं न विद्यते ॥९२॥  
 तस्माच्छिद्य मया प्रोक्ताश्चत्वारो राघवप्रियाः । कोविदारांकितरथे सुमंत्रः सारथिः स्मृतः ॥९३॥  
 ब्राणध्वजांकितरथे सूतश्चित्ररथः स्मृतः । ब्रायुपुत्रांकितरथे सारथिर्विजयः स्मृतः ॥९४॥  
 रामस्य दारुकः सूतः स्यांदने गरुडांकिते । एवं शिष्य त्वया पृष्ठं श्रीरामध्वजकारणम् ॥९५॥  
 त्वया पूर्वं मया तच्च तवाग्रेऽद्य निवेदितम् ॥९६॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे कुम्भोदरोपाख्यानं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

### षष्ठः सर्गः

( पूर्वदेशके तीर्थोंकी यात्रा )

श्रीरामदास उवाच

ततो रामो विमानेन गत्वा किंचित्तु पश्चिमाम् । दिशां ययौ प्रयागं च त्रिवेणी यत्र वर्तते ॥ १ ॥

विष्णुदासने कहा कि आप ( रामदास ) ने रामकी चार ध्वजायें जो पहले कही थीं, उन्हें अब विस्तारसे कहें । श्रीरामदास बोले—बाल्यकालमें रघुनाथजी अपने पिताके रथपर बैठे थे ॥७९-८३॥ इसलिये वह रामका रथ कोविदारध्वज कहा जाता है । बाणध्वजासे चिह्नित रथपर बैठकर एक ही बाणसे बनमें ताङ्काको मारनेके कारण वे बाणध्वज कहलाये । रावणके द्वारा वज्रध्वजा कटनेके बाद महावीर हनुमान्को ध्वजापर बैठानेसे वे कपिध्वज नामसे प्रसिद्ध हुए । रणमें मातलिको मूळित देखकर अपने रथपर गरुडको बैठानेसे गरुडध्वज हुए । किस ध्वजामें किसका चिह्न है, सो बताते हैं । श्वेत पताकामें कोविदार, नील पताकामें बाण, हरितमें मारुति, पीत पताकामें गरुड़ । इस प्रकार रामजीके रथपर स्थित चिह्नोंको जानना चाहिए ॥ ८४-८८ ॥ इस तरह चारों रथोंपर चार ध्वजायें मैने कहीं । कोविदार ध्वजावाले राम, बाण ध्वजावाले श्रीराम ॥ ८६ ॥ कपिसे चिह्नित ध्वजावाले राघवेन्द्र और गरुडसे चिह्नित ध्वजावाले भूपेश । इस प्रकार रामचन्द्रके अनन्त नाम हैं ॥ ९० ॥ इसलिए मैने तुम ( विष्णुदास ) से रामको चार ही ध्वजायें कहीं हैं । वज्रसे अंकित ध्वजावाले रथपर बैठकर रामचन्द्रजीने युद्ध किया था । राघवेन्द्र नामवाले रामको अशनिध्वज कहते हैं । रामचन्द्रकी ध्वजाका एक ही चिह्न नहीं है ॥ ९१ ॥ ६२ ॥ इसलिए मैने छाँटकर रामकी अति प्रिय ध्वजाओंको ही कहा है । कोविदार ध्वजासे चिह्नित रथपर सुमन्त्र, बाणध्वजसे चिह्नित रथपर चित्ररथ और कपिध्वजसे अंकित रथपर विजय नामके सारथी कहे गये हैं । रामके गरुडांकित रथपर दारुक सारथी रहता है । इस प्रकार जो तुम ( विष्णुदास ) ने श्रीरामकी ध्वजाका कारण पूछा, सो मैने आज तुमसे कहा है ॥ ६३-६६ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे आधाटीकायां कुम्भोदरोपाख्यानं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—बादमें श्रीराम विमान द्वारा कुछ पश्चिम दिशाकी ओर जाकर प्रयाग पहुंचे ।

क्रोशमात्रे विमानं तन्मुक्त्वा रामः ससीतया । पद्मयां शनैः शनैरेव त्रिवेणीसंगमं ययौ ॥ २ ॥  
 नारिकेलं चायनेन समर्प्य रघुनन्दनः । चतुरंगुलमानं हि केशवन्धं सभूषणम् ॥ ३ ॥  
 ददौ संछिद्य सीतायाः स्त्रयं क्षौरमथाकरोत् । लक्ष्मणाद्यैर्वन्धुभिश्च वपनं रघुनन्दनः ॥ ४ ॥  
 मातृभिः कारयामास कृत्वा चैकमुपोषणम् । द्वितीये दिवसे प्राप्ते कृत्वा श्राद्धं सतर्पणम् ॥ ५ ॥  
 मासमात्रं माघमासे वासं कृत्वा सविस्तरम् । अष्टतीर्थीं ततो गत्वा दत्त्वा दानान्यनेकेशः ॥ ६ ॥  
 दृष्टाऽक्षयवटं रम्यं निद्रास्थानं निजालये । किञ्चिद्विद्वस्य श्रीरामः सीतया आतृभिः सह ॥ ७ ॥  
 पूजा कृत्वा त्रिवेण्याश्च वस्त्रैर्दिव्यैः सुभूषणैः । गंगाजलैः काचकुम्भान् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥  
 पूरयित्वा विमानाग्रये स्थाप्य तीर्थं पुरोहितान् । पूजयित्वा सविस्तारं नत्वा चैव पुनः पुनः ॥ ९ ॥  
 तान् पृष्ठा पुष्पके स्थित्वा ययावाकाशवर्त्मना । विन्ध्याचलं समाश्रित्य यत्र दुर्गा तु वर्तते ॥ १० ॥  
 तत्र स्नात्वा तीर्थविधि पूर्ववत् विधाय सः । तां विन्ध्यवासिनीं पूज्य वस्त्रैराभरणादिभिः ॥ ११ ॥  
 कृत्वा दानान्यनेकानि तोष्य तीर्थपुरोहितान् । ययौ काशीं पुष्पकस्थः श्रीरामः सीतया सुखम् ॥ १२ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे काश्यां काशिस्थाः पुष्पकं तु तत् । कोटिशूर्यप्रतीकाशं दृष्टा पश्चिमतो दिशम् ॥ १३ ॥  
 यत् प्राचीं काश्याभिमुखमागच्छन्तं महोज्ज्वलम् । चक्रस्तकान्वितकर्णश्च शतशोऽद्वालसंस्थिताः ॥ १४ ॥  
 केचिदूचुश्च दावाग्रिस्त्वयं पर्वतमस्तके । सूर्येण विस्मृतः पंथा अमणाद्ब्रांतिमाप सः ॥ १५ ॥  
 इति केचिज्ञाः प्रोचुः केचिदूचुस्त्वयं मुनिः । नारदस्तु समायाति केचित्तत्र चभापिरे ॥ १६ ॥  
 परत्यसौ रविः स्वर्गात् केचिद्द्रोणाचलान्वितः । वायुपुत्रोऽयमिति ते प्रोचुः काशीनिवासिनः ॥ १७ ॥  
 केचिदूचुः शशी स्वर्गान्मुगेण विनिपातितः । केचिदूचुश्च विश्वेशं केचिदूचुः सुदर्शनम् ॥ १८ ॥

जहाँपर कि पतितपावनी त्रिवेणी विद्यमान है ॥ १ ॥ त्रिवेणीसे एक कोस दूर श्रीराम जानकीजीके साथ विमानसे उत्तर पड़े और धोरे-धीरे पैदल ही त्रिवेणीके संगमपर गये ॥ २ ॥ वहाँ जाकर रघुनन्दनने त्रिवेणीको नारियल समर्पण करके भूषणोंसे गुंथा हुआ जानकीका केशपाश ( जूँड़ा ) चार अंगुल लंबा काटकर त्रिवेणीमें प्रवाहित कर दिया । पश्चात् स्वयं भी "प्रयागं मुण्डनं थ्रेयः" के अनुसार क्षौर करवाया । रामने उसी प्रकार माताओं, भाइयों तथा अन्यान्य सगे-सम्बन्धियोंका भी क्षौर करवाया । तदनन्तर सबने उपवास करके दूसरे दिन तर्पण तथा श्राद्ध किया । पश्चात् यवाविधि माघ महीने-भर वहाँ कल्पवास किया । उसके उपरान्त प्रयागके प्रसिद्ध त्रिवेणी, वेणीमावद, सोमनाथ, भारद्वाज, नागवासुकी, अक्षयवट, दशाश्वमेघ आदि आठ तीर्थों ( अष्टतीर्थीं ) की यात्रा की और विप्रोंको अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ३-६ ॥ अपने प्रलयकालीन निद्रास्थान अक्षयवटको देखकर राम कुछ मुस्कुराये । पश्चात् सीता तथा भाइयोंके साथ मिलकर सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणोंसे त्रिवेणी महारानीकी पूजा की । उसके बाद हजारों काँचघट गङ्गाजलसे भरवाकर अपने विमानपर घरवा लिये । तीर्थके पुरोहितोंको विस्तारसे पूजा तथा सत्कार किया । तदनन्तर उनको नमस्कार किया और उनकी आज्ञा लेकर राम विमानपर सवार हो गये । तत्पश्चात् आकाशमागंसे विन्ध्याचल पधारे । वहाँ विन्ध्यवासिनी दुर्गाजीका दिव्य मन्दिर है ॥ ७-१० ॥ वहाँ रामने स्नान किया और पूर्ववत् वहाँपर भी तीर्थविधिका पालन किया । वस्त्र तथा आभरण आदि सामग्रीसे विन्ध्यवासिनी देवीकी पूजा की ॥ ११ ॥ अनेक दान देकर वहाँके पुरोहितोंको प्रसन्न किया । पश्चात् श्रीराम सीताके साथ पुष्पकविमानपर सवार होकर सुखपूर्वक काशीको चले ॥ १२ ॥ उस समय काशीनिवासी जन उस करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशवान् तथा अतिउज्ज्वल विमानको पश्चिम दिशासे काशीकी ओर आते देखकर हजारोंकी संलग्नामें महलोंकी छतोंपर चढ़ गये और उसके विषयमें अनेक तर्क-वितर्क करने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ कोई कहने लगा कि यह पर्वतके ऊपर दवाग्नि जल रही है । कोई कहता कि सूर्य रास्ता भूलकर इधर-उधर भटक रहा है ॥ १५ ॥ कोई कहता कि यह तो नारद मुनि नीचेको आ रहे हैं । किसीने कहा कि स्वर्गसे सूर्य नीचे गिर रहा है । कोई कहता कि यह द्रोणाचलको लिये हनुमानजी आ रहे हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ कोई कहने

केचिदूचुः सुवर्णाद्विं केचित्प्रोचुरुन्धतीम् । केचित्पत्रिराजानं केचिच्छ प्रलयानलम् ॥१९॥  
 केचित्प्रोचुर्महाघोरं वहृचक्षं केन मोचितम् । केचित्प्रोचुः सहस्रास्यस्त्वयं मणिविराजितः ॥२०॥  
 एवं वदंतस्ते यानं ददशुः पुष्पकं महत् । महाकोलाहलं चक्रुः प्रोचुस्त्वयं समागतः ॥२१॥  
 रामोऽयोध्यापतिः श्रीमान् मानं कर्तुं सनागरः । विश्वनाथोऽपि तच्छ्रुत्वा पार्वत्या वृषभस्थितः ॥२२॥  
 प्रत्युजगाम श्रीरामं काशीस्थैः परिवेष्टितः । उपायनं राघवस्य गृहात्वा वहुविस्तरम् ॥२३॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामस्तं देहलिविनायकम् । पूज्य विश्वेश्वरं दृष्ट्वा ननाम शिरसा तदा ॥२४॥  
 आलिंगितः शिवेनाथ गृहीत्वोपायनं शिवात् । स्वयं वस्त्रैराभरणैः पूजयामास शंकरम् ॥२५॥  
 विवेश काशिनाथस्य घृत्वा हस्तेन सत्करम् । तावुभौ वाहनं मुक्त्वा जग्मतुर्मणिकर्णिकाम् ॥२६॥  
 ततः सीतायुतो रामश्वकपुष्पकरिणीजले । समर्प्य श्रीफलं स्नात्वा सच्चेलं भौरपूर्वकम् ॥२७॥  
 नित्ययात्रां विघायाथ कृत्वा चैकमुपोषणम् । तीर्थश्राद्धादि संपाद्य पंचतीर्थीं विधाय च ॥२८॥  
 अंतर्गृहीं महायात्रां मानसद्वयमेव च । द्विचत्वारिंश्चिंगानि श्यालिंगानि वै ततः ॥२९॥  
 षट्पञ्चाश्रुच्च गणपांस्तथाऽष्टौ भैरवान् पुनः । योगिनीश्च चतुःपट्टीस्तथा दुर्गाश्च वै नव ॥३०॥  
 तथाऽष्टदिक्पद्मांश्चापि तथा चैव नवग्रहान् । क्षेत्रप्रदक्षिणां पंचक्रोशीयात्रां रघृत्तमः ॥३१॥  
 चतुर्दशेषा यात्रास्तु कृत्वा चैव सविस्तरम् । रामेश्वरं महालिंगं वरुणायास्तटे शुभे ॥३२॥  
 काशया वायव्यदिग्भागे सीमायां स्थाप्य सूत्तमम् । रामतीर्थं स्वीयनाम्ना भागीरथ्यां चकार सः ॥३३॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र वायुपुत्रः समागतः । वृत्तं श्रुत्वा राघवस्य यात्राः कर्तुं गतस्त्वति ॥३४ ।  
 सीतारामौ नमस्कृत्य स्नात्वा भागीरथे जले । स्वनाम्ना शकरं तीर्थमकरोजाह्वीतटे ॥३५॥

लगा कि मृगने स्वर्गसे चन्द्रमाको नीचे गिरा दिया है । कोई उसको विष्णु, कोई सुमेरु पवंत, कोई अरुचती तारा, कोई गरुड और कोई प्रलयाग्नि बताने लगा ॥१८॥१९॥ कोई कहने लगा कि किसीने महाघोर आग्नेयास्त्र छोड़ा है । कोई कहने लगा कि यह सहस्रमुख शेष है ॥ २० ॥ इस प्रकार वे सब तक वितकं कर ही रहे ये कि पुष्पकविमान उनके पास आ पहुंचा । यह देखकर सब लोग कोलाहल करते हुए आश्रयपूर्वकं एकन्दूसरेसे कहने लगे कि यह तो साक्षात् अयोध्याविपति श्रीमान् राम नगरवासियोंके साय यहाँ यात्राके लिये पघारे हैं । यह सुनकर स्वयं काशीविश्वनायजी वहुतेरी भेटे लेकर वैलपर सवार हुए और नगरवासियोंको साय लेकर रामके समक्ष आ उपस्थित हुए ॥ २१-२३ ॥ इस बीच रामने देहलिविनायक तथा दुष्ठिराजके दर्शन कर ही लिये । जब उन्होंने शिवजीको प्रत्यक्ष देखा तो सिर नवाकर प्रणाम किया ॥ २४ ॥ शिवजीने रामका आलिंगन किया । शिवजीकी दी हुई भेट स्वीकार करके स्वयं रामने भी वस्त्रों तथा अलंकारोंसे शिवजीकी पूजा की ॥ २५ ॥ तदनन्तर अपने हाथसे काशीनाथके सुन्दर हायको पकड़कर रामने काशीमें प्रवेश किया । पश्चात् वे दोनों वाहन छोड़कर मणिकर्णिका गये ॥ २६ ॥ वहाँ सीता सहित रामने भौर आदि करवाकर चक्रपुष्करिणी कुण्डमें श्रीफल समर्पण करके सहृद स्नान किया ॥ २७ ॥ नित्ययात्रा करके एक दिनका उपवास किया । तदुपरात् तीर्थश्राद्धादि कर्म करनेके बाद पञ्चतीर्थीं की ॥ २८ ॥ बादमें अतर्गृही, महायात्रा, दोनों मानसोंकी यात्रा तथा बयालीस और बाठ लिङ्गोंकी यात्रा की ॥ २९ ॥ छप्पन गणपालोंकी यात्रा, बाठ भैरवोंकी यात्रा, चौसठ योगिनियोंकी यात्रा, नव दुर्गाओंकी यात्रा, ॥३०॥ बाठ दिक्पालोंकी यात्रा और क्षेत्रकी प्रदक्षिणारूपिणी पञ्चक्रोशीकी यात्रा की ॥ ३१ ॥ इस प्रकार रामने उपयुक्त चौदहों यात्राओंको विविवत् पूर्ण किया । तदनन्तर काशीके वायव्यकोणकी सीमामें वरुणा नदीके तटपर श्रीरामने परम पवित्र तथा मनोहर रामेश्वर नामक महालिङ्ग स्थापित करके अपने नामसे भगवती भागीरथीके तटपर रामतीर्थ अर्दात् रामधाट भी स्थापित किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ राम यात्रा करने निकले हैं, यह समाचार सुनकर वायुपुत्र हनुमानजी भी वहाँ आ पहुंचे ॥ ३४ ॥ वहाँ उन्होंने सीता तथा रामको प्रणाम करके गंगामें स्नान किया । फिर जाह्वीके किनारे उक्तोंने

घटुं ववंध गंगायास्तटे रम्यं दृष्टमयम् । काश्यामद्यापि तज्जाम्ना घटोऽस्ति परमः शुभः ॥३६॥  
 तथा चकार रामोऽपि घटुवंधनमुत्तमम् । दृश्यते प्रस्यहं यत्र काश्यां रामः ससीतया ॥३७॥  
 चकार पंचगंगायां कार्तिकस्नानमुत्तमम् । काशीवासं वर्षमेकं चकार धर्मतत्परः ॥३८॥  
 तीर्थवासार्थिनः सर्वान् सन्तर्प्य च पृथक् पृथक् । रत्नंहिंरण्यैर्वासीभिरश्चाभरणधेनुभिः ॥३९॥  
 विचित्रैश्च दशाऽप्त्रैः स्वर्णरौप्यादिनिर्मितैः । अमृतस्वादुपकान्तैः पायसैश्च सशक्तैः ॥४०॥  
 सगोरसैरन्नदानैर्धन्यदानैरनेकधा । गन्धचन्दनकपूरेस्ताम्बूलैश्चारुचामरैः ॥४१॥  
 सतूलैमृदूपर्यैकैर्दीपिकादर्पणासनैः । शिविकादासदासीभिवाहनैः पशुभिर्गृहैः ॥४२॥  
 चित्रध्वजपताकाभिरुल्लोचैश्चंद्रचारुभिः । नानावर्तमहाश्रम्पुः सध्वजारापणादाभः ॥४३॥  
 वर्षाशनप्रदानैश्च । गृहोपस्करसंयुतैः । उपानत्पादुकाभिश्च यतेश्चापि तपस्विनः ॥४४॥  
 योग्यैः पटुकुलैश्च मृदूलैश्चित्रकम्बलैः । दण्डैः कमण्डलयुतंरजनैमृगसम्भवैः ॥४५॥  
 कोपानैरुच्चमर्चैश्च । परिचारककाश्चनैः । मठैविद्यार्थिनामन्नेरातथ्यथैः महाधनैः ॥४६॥  
 वहुधीपधदानैश्च । भिषजां जीवनादिभिः । महापुस्तकसभारलेखकानां च जीवनैः ॥४७॥  
 रसायनैरमूलैश्च । पत्रदानैरनेकशः । ग्राम्ये प्रपाथद्रावणैह मन्त्रेऽग्नाष्टकेन्धनैः ॥४८॥  
 छत्राच्छादनकाश्चयैर्वर्षाकालोचित्वद्वु । रात्रा पाठप्रदापैश्च शादाभ्यजनकादाभः ॥४९॥  
 पुराणपाठकांश्चापि प्रतिदेवालयं धनैः । देवालये नृत्यगातकरणार्थरनेकशः ॥५०॥  
 देवालये सुधाकार्यैर्जीर्णोद्वारैरनेकशः । चित्रलेखनमूलैश्च रङ्गशालादमण्डनैः ॥५१॥  
 आरातिकैर्गुम्बुलैश्च । दशांगादिसुधृपकैः । कपूरवर्तिकाश्चैश्च दवाचार्यरनेकशः ॥५२॥

एक कल्याणकारी तीर्थ बनाया ॥ ३५ ॥ गंगाजीके तटपर उन्होंने सून्दर पत्त्वरोंका एक घाट बनवाया, जो कि अभी भी काशीमें हनुमानघाटके नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ उसा प्रकार रामचन्द्रन भी उत्तम घाट बनवाया, जो कि आज दिन भी काशीमें रामघाटके नामसे बत्तमान है । पश्चात् रामने साताक साव पञ्चगङ्गाम स्नान किया । उस समय कार्तिकका उत्तम मास था । इस प्रकार रामने दधमर काशाम धमतत्पर हाकर निवास किया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ पश्चात् समस्त तीर्थवासियोंको पृथक् पृथक् रत्न, सूत्रण, वस्त्र, अश्व, आभरण, गाय, साना-चाँदिके विचित्र पात्र, अमृततुल्य पकवान तथा शक्तरामित्रित दुग्धदानसे प्रसन्न किया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ गारसयुक्त अन्नदान तथा धान्यदानसे भी उन्हें संतुष्ट किया । बहुतोंका सुगन्धित चन्दन, कम्बल, ताम्बूल, मनाहर चमर, कोमल रुईसे भरे हुए गहे-तकिए, दीवट, दर्पण, आसन, पालका, दास-दासी, वाहन, पशु तथा भवन दकर प्रसन्न किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ बहुतोंको चित्र-विचित्र ध्वजा-पताका, चन्द्रमाकी चाँदनाक समान निमल चाँदना, शामियाना, बड़े-बड़े श्रेष्ठ व्रत करके ध्वजारोपण, वर्षाशनदान तथा गृहस्थांका सामग्रा दकर प्रसन्न किया । विप्रोंको उपानह तथा सन्यासी यतियों और तपस्वियोंको खड़ाऊं, उनके यात्र्य कामल रेशमा वस्त्र, कम्बल, दण्ड-कमण्डलु, वित्र-विचित्र मृगचर्म, कोपीन, ऊंचे-ऊंचे खटोले, सेवक, मठ, उसकी रक्षाके लिए तथा विद्यार्थी और अतिथि-सत्कारके लिए सुवर्ण तथा बहुत-सा घन देकर संतुष्ट किया ॥ ४३-४६ ॥ वैद्योंको उनका जावकाके साधनभूत बहुतसे औषध दान देकर, लेखकोंको जीविकाके साधनभूत बहुतसे पुस्तकसमूह देकर, बहुतोंका बहुमूल रसायन दान देकर और बहुतोंके लिए अन्नक्षेत्र खोलकर संतुष्ट किया । बहुतोंका ग्रामकृतुम पौसरक वास्ते घन देकर तथा बहुतोंको हेमन्तके योग्य काष्ठ आदिके वास्ते द्रव्य देकर प्रसन्न किया ॥ ४७ ॥ ४८ । बहुतोंको वर्षाकालोचित छत्र तथा आच्छादन देकर आनन्दित किया । बहुतोंको रात्रिके समय पढ़नेके लिए दीपादिका प्रबन्ध कर दिया । बहुतोंको शरीरमें अध्यज्ञ (मालिश) करनेके लिए तेल आदि सुगन्धित द्रव्योंका दान देकर राजी किया ॥ ४९ ॥ हर एक देवालयमें पुराणपाठ करनेवालोंको घन देकर संतुष्ट किया । देवालयोंमें अनेक नृत्य-गौत करवाये । उनका जीर्णोद्वार करवाकर चूना पुतवा दिया । उनमें बहुतेरे चित्र बनवा दिये । उनमें केसर आदि रङ्ग तथा माला आदिका प्रबन्ध करवा दिया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ देवपूजाके

पञ्चामृतानां स्नपनैः सुगन्धस्नपनैरपि । देवार्थं मुखवासैश्च देवोद्यानैरनेकशः ॥५३॥  
 महापूजार्थं माल्यादिगुम्फनार्थं ख्विकालतः । शंखभेरीमृदंगादिवाद्यनार्देः शिवालये ॥५४॥  
 घणटाभृक्कुम्भादिस्नानोपस्करमाजनैः । श्रेतमार्जनवस्त्रैश्च सुगन्धैर्यक्षकर्दमैः ॥५५॥  
 जपहोमैः स्तोत्रपाठैः शिवनामोच्चभाषणैः । रामक्रीडादिसंयुक्तैश्चलनैः सप्रदक्षिणैः ॥५६॥  
 एवमादिभिरुद्धण्डैः क्रियाकाण्डैरनेकशः । वर्षमेकमुषित्वा तु कृत्वा तीर्थान्यनेकशः ॥५७॥  
 दीनानाथांश्च सन्तर्प्य नत्वा विश्वेश्वरं विभूम् । ब्रह्मचर्यादिनियमैर्वातुकालागमेन च ॥५८॥  
 सत्यसम्भाषणेनापि तीर्थमेवं प्रसाद्य च । नत्वा पुनर्विश्वनाथं कालराजं गणाधिपम् ॥५९॥  
 अन्नपूर्णां दण्डपाणिं दृष्ट्वा स्तुत्वा प्रणम्य च । अनुजातः शिवेनाथं विमानेन रघूत्तमः ॥६०॥  
 यवावाकाशमार्गेण गंगाया दक्षिणे तटे । कर्मनाशां नर्दी दृष्ट्वा च्यवनस्याश्रमं ययौ ॥६१॥  
 रामचन्द्रः पुष्पकस्थः स्नात्वा नत्वा मुनीश्वरम् । रामतीर्थं च रामेशं चकार तत्र राघवः ॥६२॥  
 निजवाणकृतां रेखां दर्शयामास तान् जनान् । काश्या अप्यथिकान्यत्र दत्त्वा दानन्यनेकशः ॥६३॥  
 ययौ यानेन दिव्येन स्वर्णभद्रस्य संगमम् । यानि यानि हि तीर्थानि राघवश्च गमिष्यति ॥६४॥  
 उत्तरोत्तरस्तेषु दानाधिक्यं करिष्यति । यत्र यत्र रघुश्रेष्ठो गमिष्यति सप्तीतया ॥६५॥  
 तत्र तीर्थान्यनेकानि भविष्यन्ति महान्ति च । शेषोऽपि तेषां संरूपां हिवर्कुनात्र धमो भवेत् ॥६६॥  
 तेषु तीर्थानि श्रेष्ठानि पठ्ज्ञेयानि मनीषिभिः । वन्धूनां चैव चत्वारि सीतायाः पञ्चमं स्मृतम् ॥६७॥  
 पष्टुमज्जनिपुत्रस्य सर्वत्रैवं विनिश्चयः । रामः स्नात्वा स्वर्णभद्रगगयोः संगमे मुदा ॥६८॥  
 त्रिरात्रं समतिक्रम्य गण्डकीसंगमं ययौ । कस्मिंस्तीर्थे त्रिरात्रं च पञ्चरात्रमथ कन्चित् ॥६९॥

लिए आरती, गुग्गुल, दण्डांग, धूप, दीप, कपूर आदि अनेक वस्तुयें दिलवायी ॥५२॥ देवताओंके लिए पंचामृतके स्नानका प्रबन्ध, सुगन्धित गुलाबजल आदिसे स्नानका प्रबन्ध, मुखवासार्थं पान आदिका प्रबन्ध, तथा उनके लिए उद्यान आदिका प्रबन्ध भी करवा दिया ॥५३॥ सब शिवालयोंमें त्रिकाल पूजाके लिए माला गूँथनेका प्रबन्ध, शंख, नगाढ़ा, मृदंग आदि वाञ्छोंका प्रबन्ध एवं घडी घंटा कलश गेहूँवा तथा स्नानके सामानका प्रबन्ध कर दिया । मार्जनके लिए श्वेत वस्त्र तथा सुगन्धित द्रव्य चन्दन, बेसर, अगर, तगर, कपूर आदिके लेपनका भी स्थायी प्रबन्ध करवा दिया । उसी प्रकार देवालयोंमें जप, होम, स्तोत्रपाठ, उच्च शिवनामोच्चारण, प्रदक्षिणा तथा चैवर लेकर रामक्रीडा आदि अन्यान्य क्रियाएँ करते हुए रामने काशीमें एक वर्ष विताया । वहाँके अनेक तीर्थ किये । उन्होंने दीनानाथ विश्वेश्वर भगवान् शिवको संतुष्ट किया । ऋतुकालमें भी ब्रह्मचर्य धारणकर तथा सत्यभाषणका अनुष्ठान करके तीर्थके नियमोंका पालन किया । अन्तमें विश्वनाथको, कालभेरवको, गणाधिपको, अन्नपणको तथा दण्डपाणिको वारंवार नमस्कार करके तथा उनकी स्तुति करके उनसे जानेकी आज्ञा मार्गी । उन्हें अनुजात होकर रघूत्तम राम विमानपर सवार हुए ॥५४-६०॥ और आकाशमार्गसे गङ्गानदीके दक्षिण तटकी ओर चल दिये । रात्रेमें उनको कर्मनाशा नदी मिली । बादमें च्यवनमुनिके बाख्यमपर पहुँचे ॥६१॥ पुष्पक विमानसे उतरकर रामचन्द्रजीने स्नान करके मुनिके दर्शन किये और वहाँ अपने नामसे रामेश्वर तथा रामतीर्थ स्थापित किया ॥६२॥ वहाँ अपने साथवालोंको अपनी बनायी हुई धाणकी रेखा दिखलायी । अन्तमें वहाँपर काशीमें भी अधिक दान-पुण्य करके द्रव्य विमानके द्वारा शोणभद्र तथा गङ्गाके सङ्घमपर गये । उसी प्रकार आगे भी राम जिन-जिन तीर्थोंमें जायेंगे, वहाँ-वहाँ उत्तरोत्तर अधिक धान करेंगे । जहाँ जहाँ राम सीताके साथ पधारेंगे, वहाँ-वहाँ अनेक वडे-वडे तीर्थं बनेंगे । जिनकी संरूपाको शेषनाग भी नहीं बता सकते ॥६३-६६॥ परन्तु विचारशील लोगोंको उनमें भी छः तीर्थोंको मुख्य समझना चाहिये । चार चार भाइयोंके, पाचवाँ सीता तथा छठाँ हनुमानका । इनके विषयमें कभी भी संदेह नहीं करना चाहिये । श्रीराम शोणभद्र तथा गङ्गाके सङ्घममें स्नान करनेके पश्चात् वहाँ तीन रात्रि निवास करके प्रसन्न मनसे

सप्तरात्रं क्वचिच्चापि पक्षमेकमथ क्वचिन् । अष्टादशैकविंशद्वा त्रिमासं च क्वचित्प्रभुः ॥७०॥  
 चकार वासं तीर्थेषु धर्मान् कुर्वन् यथा सुखम् । गंडकीमंगमे स्नान्वा नेपाले जगदीश्वरम् ॥७१॥  
 दृष्टा हरिहरक्षेत्रं ययौ रघुकुलोद्धः । एवं कुर्वन् स तीर्थानि सर्वाणि रघुनन्दनः ॥७२॥  
 पुनः पुनः संगमं च ययौ जाह्नविदक्षिणे । वैकुण्ठनगरं गत्वा जरासंधपुरं ययौ ॥७३॥  
 वैकुण्ठाया जले स्नान्वा ततो रामो ययौ गयाम् । फल्गुनद्यागतटे पूर्वं मुक्त्वा तद्यानमुक्तमस् ॥७४॥  
 नत्वा विष्णुपदं दिव्यं पुनर्यानान्तिकं ययौ । तां निशां समतिक्रम्य प्रभाते रघुनन्दनः ॥७५॥  
 स्नातुं फल्गुनदीतोये ययौ तीर्थं द्विजैः सह । एतस्मिन्नन्तरे साता सखीभिः परिवेष्टिता ॥७६॥  
 ययौ स्नातुं फल्गुनद्यां स्नान्वा पूज्य सुवासिनीः । सैकते सा क्षणं तस्थौ पूजनार्थं महेश्वरीम् ॥७७॥  
 बालुकापञ्चपिंडैश्च दुर्गा कर्तुं समुच्छता । गृहीत्वा बामहस्तेन साद्रीं सा सिकतां तदा ॥७८॥  
 सब्येन कृत्वा पिंडं तु यावत्सा पाणिना भुवि । स्थापयामास तावत् दर्श जगतीतलात् ॥७९॥  
 विनिर्भातं दशरथशशुभ्रम् । दक्षिणं निजहस्तान्तरं गृहीत्वा पिण्डगुलमम् ॥८०॥  
 गच्छन्तं भूतलं रम्यं तदृष्ट्वा कौतुकं पुनः । द्वितीयं स्थापयामास भुवि पिंडं तु सैकतम् ॥८१॥  
 सोऽपि नीतः पूर्ववच्च हृष्टमष्टोत्तरं शतम् । ददौ पिंडान् कौतुकेन ततः श्रान्ता विदेहजा ॥८२॥  
 मनसा पूज्य दुर्गा मा ययौ यानं त्वरान्विता । तदृवृत्तं न सखीभिस्तु ज्ञातं रामेण वाऽपि न ॥८३॥  
 तयाऽपि कथितं नैव किं रामो मां वदिष्यति । इति भीत्या ततो रामः पंचतीर्थं विगाह्यच ॥८४॥  
 प्रेतपर्वतमासाद्य पिण्डदानमथाकरोत् । कनिष्ठिकाया निष्कास्य निजनामांकितां शुभाम् ॥८५॥  
 कांचनीं मुद्रिकां रम्यां दक्षिणाभिमुखस्तदा । अपहतेति मंत्रेण चकार भुवि राघवः ॥८६॥

गंडकीके सङ्गमकी ओर सिधारे । श्रीराम प्रभुने किसी स्थानपर तीन रात, कहीं पाँच रात, कहीं सात रात, कहीं एक पक्ष, कहीं अठारह दिन, कहीं इनकीस दिन और कहीं तीन मास पर्वन्त सुखसे निवास किया । गंडकीके सङ्गममें स्नान करके श्रीहरि नेपालमें पशुपतिनाथके दर्शनार्थं गये ॥६७-७०॥ बादमें रघुकुलभूषण राम हरिहरक्षेत्र गये । इस प्रकार रघुनन्दन राम तार्थ करते समय बीच बीचमें बार-बार गङ्गाके दक्षिण सङ्गमपर पदारते थे । बादमें वैकुण्ठ नगर होते हुए जरासन्धके राजगृह नगर गये ॥७१-७३॥ पश्चात् वैकुण्ठके जलमें स्नान करके गयाजी गये । फल्गु नदीके पूर्वीप तटपर विमानको छोड़कर दिव्य विष्णुपदके दर्शनार्थं गये । दर्शन करनेके बाद पुनः यानके पास लौट आये और रात्रिको वहाँ अतीत करके सबेरे ज्ञात्याणोंके साथ फल्गुनदीके पवित्र तीर्थमें स्नान करने गये । इतनेमें सखियोंसे धिरी हुई सीताजी फल्गुनदीपर स्नानार्थं पधारीं । वहाँ उन्होंने स्नान करके सोहागिन स्त्रियोंकी पूजा की । पश्चात् देवी महेश्वरीकी पूजा करनेके लिए सैकत-प्रदेशमें जाकर बालुके पाँच पिण्डोंसे दुर्गाजीकी प्रतिमा बनानेको उद्यत हुई । वायें हाथमें नीली बालुका लेकर उन्होंने दाहिने हाथसे पिण्ड बनाकर ज्यों ही पृथ्वीपर रखना चाहा, ज्यों ही उन्हें पृथ्वीतलसे निकलता हुआ अपने ससुर महाराज दशरथका सुन्दर हाथ दिखायी दिया । उनका दाहिना हाथ सीताके हाथसे उस उत्तम पिण्डको लेकर पुनः घरतीमें प्रविष्ट हो गया । यह देखकर सीताके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ । बादमें फिर सीताने पिण्ड बनाकर जमीनपर रखा, उसको भी पूर्ववत् वह हाथ ले गया । इस प्रकार सीताने एक-एक करके एक सौ आठ पिण्ड दुर्गाकी पूजाके लिये रखे और उन सबको ससुरका हाथ ले गया । यह देखकर सीता हार गयीं ॥७४-८२॥ अन्तमें उन्होंने दुर्गाकी मन ही मन पूजा की और विमानके पास लौट आयीं । उस वृत्तान्तको न तो सखियें जान सकीं और न राम ही जान पाये ॥८३॥ सीताने भी राम हमको क्या कहेंगे, इस ढरके मारे उस वृत्तान्तको छिपा रखा । बादमें रामने जब पञ्चतीर्थ करनेके बाद प्रेतशिलापर जाकर पिण्डदान दिया और उन्होंने अपने हाथका अनामिका अङ्गुलीसे रामनाम खुरी हुई सुन्दर सुवर्णकी अङ्गूठी निकालकर दक्षिण-की ओर मुख करके 'अपहृता' इत्यादि मंत्रसे जमीनपर तीव्र रेखाएं खींची, जो कि वहाँ अभी भी स्पष्ट

रेखाश्रयं तदद्यापि दृश्यते तत्र वै स्फुटम् । आस्तीर्य स कुशांस्तत्र पिण्डान् सक्तुमयाञ्छुभाना ॥८७॥  
 तिलाज्यमधुमयुक्तान् दातुं रामः समुद्यतः । सव्येन पाणिना पिण्डं गुहीत्वा रघुनन्दनः ॥८८॥  
 यावत्पश्यति भूम्यां तु न ददर्श पितुः करम् । तदाश्रयेण विप्रास्ते राममृचुस्त्वरान्विताः ॥८९॥  
 निष्कामत्यत्र सर्वेषां पितॄणां दक्षिणाः कराः । न हृश्यते तव पितुः कारणं नात्र विज्ञहे । ९०॥  
 रामोऽपि विस्मयाविष्टश्चकितः प्राह लक्ष्मणम् । जानीषे कारणं किंचिदत्र त्वं बुद्धिमानसि ॥९१॥  
 स ग्राह राघवास्माभिर्यदा गोदावरीं गतम् । इग्नुदीफलपिण्याकपिण्डदाने तदा करः ॥९२॥  
 अस्माभिः स्वपितुर्दृष्टः सोऽत्र नैव प्रदृश्यते । ममापि जातमाश्र्वं सीतां त्वं प्रष्टुमर्हसि ॥९३॥  
 तच्छ्रुत्वा जानकी शीघ्रं प्राह किंचिद्द्वयातुरा । भयाऽपराधितं किंचित्तत्क्षमस्व रघूत्तम ॥९४॥  
 तचस्या वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तां पुनः । वद तथ्यं न भेतव्यं कारणं किं ममातिकम् ॥९५॥  
 यथा वृत्तं तया सर्वे राघवाय निवेदितम् । तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह कः साक्षी तव कर्मणि ॥९६॥  
 सा प्राह चूतवृक्षोऽस्ति दृष्टः स नेत्युवाच ह । तदा शसः सीतया स फलहीनः स कीकृतः ॥९७॥  
 भव मे वचनाच्चूत यतो मिथ्या त्वयेरितम् । पुनः सा राघवं प्राह फलगुः साक्ष्यं प्रदास्यति ॥९८॥  
 साऽपि रामेण पृष्ठाऽथ नेत्युवाच भयातुरा । साऽपि शसा रामपत्न्याऽधीमुखी मम वाक्यतः ॥९९॥  
 त्रह यस्मान्मृपा चोक्तं त्वया सत्येषि कर्मणि । ततः सीता पुनः प्राह साक्ष्यं मे ऽत्र निवासिनः ॥१००॥  
 दास्यंति मे द्विजाः सर्वे तदा मन्निकटस्थिताः । तेऽपि पृष्ठा राघवेण नेत्युचुर्भयविहृलाः ॥१०१॥  
 दशः साक्ष्यं तर्हि रामः शापं नस्तु प्रदास्यति । निवारिता कथं नेयं तदा सीतेति चिन्त्यते ॥१०२॥  
 ताँस्तदा जानकी शापं ददौ तीर्थनिवासिनः । युष्माकं नात्र संतुस्तिः कदा द्रव्यैर्भविष्यति ॥१०३॥

दिखायी देती हैं । पञ्चात् उन्होंने कुशा बिछाकर उसपर तिल धूत मधुआदिसे युक्त सकतुका पिंड रखना प्रारम्भ किया । रामने जब दाहिने हाथमें पिण्ड लेकर जमीनकी ओर देखा तो उन्हें अपने पिताका हाथ नहीं दीखा । वहाँके ब्राह्मण भी आश्र्वयान्वित होकर रामसे कहने लगे—॥ ८४-८५ ॥ यहाँ सब लोगोंके पितरोंके दाहिने हाथ पिंड लेनेके लिये निकलते हैं, पर आपके पिताका हाथ क्यों नहीं निकला । इसका कारण समझमें नहीं आता ॥ १० ॥ तब रामने विस्मित होकर लक्ष्मणसे पूछा—हे लक्ष्मण ! तुम बुद्धिमान् हो, क्या कुछ इसका कारण जानते हो ? ॥ ११ ॥ लक्ष्मणने कहा—हाँ भाई ! जब हम लोग गोदावरी गये थे, तब तो इग्नुदीफलके पिसानका पिण्डदान देते समय अपने पिताका हाथ दिखाई दिया था, वह यहाँ नहीं दिखाई देता । इस बातका हमको भी आश्र्वयं है । आप इसका कारण जानकीसे तो पूछें ॥ १२ ॥ १३ ॥ यह सुनकर जानकीजी घबड़ा उठीं और बोलीं—हे रघुराज ! आप क्षमा करें । मुझसे कुछ अपराध हो गया है ॥ १४ ॥ यह सुनकर रामने कहा कि घबराने तया डरनेकी कोई बात नहीं है । जो हो, सो साफ-साफ कहो ॥ १५ ॥ तब जानकीने जो घटना घटी थी, सो स्पष्ट कह सुनायी । यह सुनकर रामने पूछा—इस बातका साक्षी कौन है कि हमारे पिताने तुम्हारे हाथसे पिण्डदान ग्रहण किया है ? ॥ १६ ॥ सीताने अपना गवाह पासके आश्रवृक्षको बताया, परन्तु उससे पूछनेपर वह इनकार कर गया । तब सीतानं उसको शाप दिया कि अरे दुष्ट ! तू झूठ बोला है, इसलिए मगधदेशमें तू फलशून्य होकर रहेगा । तब सीताने कलगुनदीको अपना साक्षी बताया ॥ १७ ॥ १८ ॥ परन्तु रामके पूछनेपर वह भी भयसे इनकार कर गया । इसपर सीताने उसको भी शाप दिया कि तू सत्य बातमें भी झूठ बोली है, इसलिए तू अधोमुखी ( अन्तमुखी ) होकर बहेगी । तब सीताने कहा कि मेरी साक्षी यहाँके रहनेवाले उस समय मेरे पास लड़े ब्राह्मण देंगे । उन्होंने भी विहृल होकर रामके पूछनेपर ना कर दिया ॥ १९-२० ॥ वे लोग विचारने लगे कि “यदि ऐसा था तो तुम लोगोंने सीताकी उस समय पिण्ड देनेसे रोका क्यों नहीं ? ऐसा कहकर कहीं सत्य कहनेपर राम हमको शाप न दे दें” सीताने उनको भी शाप दिया कि जाओ, तुमलोग द्रव्यसे कभी तृप्त न होकर आरेमारे छिरेंगे । तब जानकीने

द्रव्यार्थं सकलान् देशान् भ्रमध्वं दीनरूपिणः । ततः सा जानकी प्राह ओतुः साक्ष्यं प्रदास्यति ॥१०४॥  
 सोऽपि पृष्ठो नेत्युच्चाच रामं सीता शशाप ताम् । पुच्छाग्रं स्वपुरः कृत्वा पदा मन्निकटोऽपि सन् ॥१०५॥  
 मृषेरितं यतस्तस्मात्पुच्छे ह्यस्पृश्यतां भज । ततः सा जानकी प्राह गौर्मे साक्ष्यं प्रदास्यति ॥१०६॥  
 साऽपि पृष्ठा नेत्युच्चाच रामं सीता शशाप ताम् । अपवित्रा भवास्ये त्वं मम वाक्येन धेनुके ॥१०७॥  
 ततः सीताश्वत्थवृक्षं साक्ष्यार्थं प्राह राघवम् । स पृष्ठो नेत्युच्चाचाथ तं सीताऽथाशपत्कुधा ॥१०८॥  
 भवाचलदलस्त्वं हि मद्विराज्यश्वत्थपादपि । पुनः सीता पर्ति प्राह मम साक्षी प्रभाकरः ॥१०९॥  
 स पृष्ठः प्राह तथ्यं हि तुष्टिर्जाता पितुस्तव । एतस्मिन्ननंतरे तत्र विमानेनार्कवर्चसा ॥११०॥  
 राजा दशरथो राममागत्यालिङ्ग्य वै हृषम् ॥

प्राह त्वया तारितोऽहं नरकादतिदृस्तरात् । मैथिल्याः पिण्डदानेन जाता मे तृमिरुचमा ॥१११॥  
 तथापि लोकशिक्षार्थं गयाश्राद्धं त्वमाचर । पितरं प्राह रामोऽपि किमर्थं हि त्वयाऽत्र वै ॥११२॥  
 त्वरया सिकतापिण्डः संगृहीतो वदस्त्र माम् । स प्राहात्र गयायां तु वहुविघ्नानि राघव ॥११३॥  
 भवन्ति श्रादूसमये कृता तस्मात्त्वरा मया । इति रामं समाभाष्य गृहीत्वा राघवादपि ॥११४॥  
 किञ्चित्कव्यं विमानेन ययौ दशरथस्तदा । ततो रामः प्रेतगिरी पिण्डदान विधाय च ॥११५॥  
 गत्वा प्रेतशिलायां च दत्त्वा काकबलिं ततः । धर्मारण्यं ततो गत्वा कृत्वेकोनपदेषु हि ॥११६॥  
 सकुना च तिलाज्यैश्च पायसैश्च सशक्तैः । पृथग्वै पिण्डदानानि वटश्राद्धं विधाय च ॥११७॥  
 अष्टतीर्थी ततः कृत्वा ततः संध्यां स्थलत्रये । कृत्वा यथाविधानेन दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥११८॥  
 गदाधरं ततः पूज्य महाविभवपूर्वकम् । सेचयामास तोयैश्च चूतवृक्षं सकीकटम् ॥११९॥  
 एको मुनिः कुंभकुण्ड्यहस्तशूतस्य मूले सलिलं दधार ।  
 आग्रहं सिन्हः पितरश्च तुमा एका क्रिया द्रव्यर्थकरी प्रसिद्धा ॥१२०॥

बिलारको साक्षी देनेके लिए कहा । उसने भी पूछनेपर ना कह दिया । सीताने उसे भी शाप देते हुए कहा कि उस समय मेरे समक्ष पूँछ किये खड़े रहनेपर भी जो तूने ना कर दिया है । इसलिए जा तेरी पूँछ अछुत हो जायगी । तब जानकीजीने गीको साक्षी देनेके लिए कहा ॥१०२-१०६॥ रामके पूछनेपर उसने भी ना कह दिया । सीताने कहा-हे धेनु ! मेरे शापसे तेरा मुख अपवित्र हो जायगा ॥१०७॥ पश्चात् सीताने पीपलके वृक्षको साक्षी देनेके लिए रामके सम्मुख उपस्थित किया । जिसका नाम अश्वत्य था, परन्तु जब वह भी इन्कार कर गया तो सीताने क्रोध करके शाप दिया कि तू आजसे अचलदल हो जायगा । तब अन्तमें सीताने कहा कि मूर्य मेरी साक्षी देंगे । रामके पूछनेपर सूर्यने कहा कि यह बात सत्य है । इस कार्यसे आपके पिता अवश्य सन्तुष्ट हुए हैं । इतनेमें सूर्यके समान कान्तिमानु विमानपर सवार होकर स्वयं महाराज दशरथ वहाँ आ पहुँचे । रामको हृष आलिङ्गन करके वे बोले-हे राम ! तुमने यथार्थमें हमको तार दिया है । मैथिलीके पिण्डदानसे हमें बड़ी ही तृतिं मिली है ॥१०८-१११॥ तो भी लोकशिक्षाके लिए तुम गयाश्राद्ध अवश्य करो । रामने पितासे पूछा कि आपने यहाँ इतनी जल्दी बालुकापिंड क्यों ग्रहण किया ? इसका क्या कारण है ? दशरथने कहा-हे राम ! गयामें पिंडदानके समय बड़े-बड़े विघ्न उपस्थित होते हैं । इसीलिए मैंने त्वरा को थी । इतना कहकर राजा दशरथ रामके हाथसे भी कुछ क्रव्य ( पितृ-अन्न ) ग्रहण करके विमान द्वारा वहाँसे चले गये । पश्चात् रामने प्रेतपर्वतपर पिण्डदान दिया ॥११२-११५॥ वहाँसे वे प्रेतशिला गये । वहाँ काकबलि देनेके बाद धर्मवन गये । वहाँ एकोनपद स्वानमें तिल-पायस तथा शकरासे युक्त सकुने पृथक्-पृथक् करके अनेक पिंड दिये और वटश्राद्धा भी सम्पादन किया ॥११६॥ ११७॥ तदनन्तर अष्टतीर्थी की । तीनों नियत स्थानोंमें सन्ध्यावन्दन करनेके बाद विघ्नवत् बहुतसे दान दिये ॥११८॥ अनेक विभवोंसे गदाधरकी पूजा की और मगधदेशस्य आग्रहवृक्षका जलसे सेचन किया ॥११९॥ कहा भी है-किसी

कृत्वा विष्णुपदे पूजां विमानारोपणादिभिः । मासत्रयमतिकम्य गयायां रघुनन्दनः ॥१२१॥  
 विमानेन ययौ प्राचीं दिशं संतोषयन् जनान् । फलगुनद्यास्तटे पूर्वे विमानं यत्र सस्थितम् ॥१२२॥  
 तत्र रामगयानाम्नी भूमिविप्रैरुदीर्यते । रामेश्वरो रामतीर्थं वर्तते तत्र पावनम् ॥१२३॥  
 रामोऽपि फलगुनद्याश्च गङ्गायाः संगमं ययौ । गयावहिः फलगुरेव ज्ञेया सा तु महानदी ॥१२४॥  
 ततो ययौ शुद्धलस्य नूतनाश्रममुत्तमम् । यस्मिन्नुदग्वहा गङ्गा जाह्नवी पापनाशिनी ॥१२५॥  
 ततोऽप्ये जानकी ज्ञात्वा भूमौ दिव्यं प्रदास्यति । तस्या दिव्यस्थले रामस्तीर्थमादौ चकार सः ॥१२६॥  
 वंधूनां च पृथक् तत्र संति तीर्थानि सर्वतः । सीतया च कृतं तत्र स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥१२७॥  
 ज्ञात्वा भविष्यत्यग्रे मत्तीर्थं चेति सविस्तरम् । यदा भूमौ प्रदास्यामि दिव्यं तीर्थं तदाऽस्तु मे ॥१२८॥  
 रामस्तो विमानेन गतश्चोत्तरवाहिनीम् । नाम्ना पुरो तथा गङ्गां यत्रास्ति परमार्थद्रा ॥१२९॥  
 पर्वतो यत्र गङ्गायामस्ति विलवेश्वरोऽपि च । ततः श्रोवैजनायेशं नत्वा रावणनिमित्तम् ॥१३०॥  
 ततः शनैर्विमानेन पश्यन्नानास्थलानि सः । ययौ भागीरथीमध्याद्यत्र मिन्ना सिता पुनः ॥१३१॥  
 प्रयागाद्योजनशतमाने देशे रघूद्रहाः । ततो गङ्गाऽन्वितसंयोगसहस्रे पुष्पकेन सः ॥१३२॥  
 गत्वा स्नात्वा ततो यत्र कालिन्दीसंगताऽर्थं । तत्र गत्वा रघुश्रेष्ठस्ततः पश्यन् स्थलानि सः ॥१३३॥  
 नानापुष्यानि तीर्थानि दृष्टा श्रीपुरुषोत्तमम् । पूर्वसागरतीरस्थं दक्षा दानान्यनेकशः ॥१३४॥  
 ततः शनैः पुष्पकेण दृष्टा नानाविधान् सुरान् । दृष्टा नाना नदीः सर्वा नानादेशान्विलंघ्य च ॥१३५॥  
 गोदातीरे स्वनाम्ना तु कृत्वा गिरिमनुत्तमम् । सप्तगोदावरीभेदसंगमेषु महोदधौ ॥१३६॥

एक मुनिने कुणायुक्त हाथमें जलका घड़ा लेकर आम्रवृक्षके मूलमें जल दिया । उससे आम्रवृक्ष सिंच गया और पितर भी तृप्त हो गये । इसीके आधारपर “एका क्रिया द्वयंकरी” की कहावत प्रचलित हुई ॥१२०॥ इसी प्रकार प्रतिदिन विष्णुपदकी पूजा करते और विमानपर चढ़कर धूमते-फिरते हुए रामने गयामें एक वर्ष व्यतीत किया ॥१२१॥ पश्चात् सब लोगोंको आश्वासन दे तथा विमानपर सवार होकर रघुनन्दन पूर्वकी ओर चल दिये । फलगुनदीके किनारे जहाँ रामका विमान खड़ा हुआ था ॥१२२॥ उस जगहको वहाँके विप्र रामगया कहने लगे । पवित्र रामेश्वर नामका रामतीर्थ अभी भी वहाँ विद्यमान है ॥१२३॥ राम वहाँसे चलकर फलगु तथा गंगाके सङ्गमपर आये । गयाके बाहरी भागमें फलगु नदी है । उसका विस्तार बहुत बड़ा है ॥१२४॥ बादमें मुद्रल शृणिके नवीन आश्रमकी ओर गये । जहाँपर पाप हरण करनेवाली गंगा उत्तरवाहिनी होकर बहती है ॥१२५॥ आगे चलकर एक जगह जहाँ कि उन्हें विश्वास था कि यहाँ जानकी भूमिमें प्रवेश करके दिव्य रूप धारण करेंगी, अपने नामका एक उत्तम तीर्थं स्थापित किया ॥१२६॥ उसके बाद लक्षण आदि भाइयोंके नामसे भी अनेक तीर्थं स्थापित किये । सीताने भी वहाँ, यह विचारकर कि भविष्यमें मेरे नामका यहाँ बड़ा भारी तीर्थं होगा, एक अपने नामका तीर्थं स्थापित किया । उन्होंने यह विचारा कि जब मैं दिव्य रूप धारण करूँगी, तब यहाँ दिव्य तीर्थं होगा ॥१२७॥१२८॥ पश्चात् राम विमानमें बैठकर उस जगह गये, जहाँ कि कल्याणकारिणी उत्तरवाहिनी नामकी गंगा तथा एक नगरी विद्यमान थी ॥१२९॥ और जहाँपर बीच गंगामें विलवेश्वर नामका पर्वत खड़ा है । वहाँसे आगे चलकर श्रीरामने रावण द्वारा स्थापित वैद्यनाथजीका दर्शन किया ॥१३०॥ तदनन्तर विमानमें बैठकर अनेक बनोंकी शोभा देखते हुए वहाँ गये, जहाँसे कि श्वेतजल युक्त गंगा बीचो-बीचसे दो भागोंमें बैट गयी हैं ॥१३१॥ वह स्थान प्रयागसे सौ योजनकी दूरीपर था । पश्चात् राम विमानके द्वारा वहाँ जा पहुँचे, जहाँ कि गंगा सहस्रमुखी होकर समुद्रमें मिली हैं ॥१३२॥ उस जगह गंगा-समुद्रसङ्गममें स्नान करनेके बाद कालिन्दी-समुद्रके सङ्गममें स्नान किया । वहाँपर रामने अनेक मनोहर पूष्पित बनोपवन देखे, अनेक तीर्थोंके दर्शन किये और साथ ही पूर्वी सागरके तटपर हित भगवान् परम पुरुषोत्तमके भी दर्शन किये तथा अनेक दान दिये ॥१३३॥१३४॥ वहाँसे चलकर अनेक देवताओंके दर्शन करते हुए अनेक नदियोंको लौधकर गोदावरीके

स्नात्वा दक्षिणमांण ततो रामो यथा पुनः । पूर्वदेशे नृपतिमिर्मानितः पूजितोऽपि च ॥१३७॥  
गृहीत्वा स्वकरं तेभ्यस्तैः सहैव शनैः शनैः । रिमानेन सुखेनैव तीर्थान्यन्यानि सेवितुम् ॥१३८॥  
श्रीरामो याम्यदिग्जानि दक्षिणाभिसुखो यथा । एवं प्रोक्ता पूर्वदेशयात्रा रामेण या कृता ॥१३९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे पूर्वदेशतोर्यद्यात्रावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

### सप्तमः सर्गः

( श्रीरामके द्वारा दक्षिणभारतकी तीर्थयात्रा )

श्रीरामदास उवाच

ततो रामः समुल्लंघ्य मत्स्यतीर्थं मनोरमम् । तीर्त्वा महानदीं कृष्णां पश्यन् पुण्यस्थलानिः ॥१॥  
ततो यथौ नारसिंहं रामः पानकनामकम् । कृष्णाऽठिवसगमे स्नात्वा दक्ष्या दानानि विलम्बः ॥२॥  
पश्यन्नानास्थलान्येव यथौ श्रीशंखस्विन् । स्नात्वा स नीलगङ्गायां दृष्टा श्रीमल्लिकार्जुनम् ॥३॥  
तत्रैव कृष्णा सा ज्ञेया नीलगङ्गेति नामनः । श्रीशंखशिखरं दृष्टा पुनर्जन्मनिवारकम् ॥४॥  
शिखरेश्वरस्य शिखराद्व्रक्षमकुण्डे विगाह्य च । भीमकुण्डे ततः स्नात्वा तथा निर्वृतिसंगमे ॥५॥  
तुंगभद्रासंगमेऽपि महानदीमरोवरे । विगाह्य भवनाशिन्यां ततो दृष्टा द्यहीवलम् ॥६॥  
नारसिंहं ततो नत्वा कृत्वा स्तंभप्रदक्षिणाः । गत्वा पुष्पगिरी तत्र पिनाकीमरगाह्य च ॥७॥  
पश्यन् पुण्यस्थलानीशान् दृष्टु । पंपासरोवरम् । किञ्चिकधायां ततो गत्वा सुग्रीवायैः सुपूजितः ॥८॥  
सुग्रीवायैर्वानरैश्च विमानेन विहायसा । प्रवर्षणगिरी स्त्रीयगुहां रम्यां प्रदर्शयन् ॥९॥  
वैदेहीं कोतुकाद्रामः किञ्चित्कृत्वा स्मिताननम् द्वितीये भीमकुण्डयस्त्वा गत्वा पडाननम् ॥१०॥  
स्नात्वाऽगस्त्यकुण्डमध्ये पश्यस्तीर्थान्यनेकशः । कनकगिरिस्थं शशुं नत्वा संपूज्य राघवः ॥११॥

किनारे आये । वहाँ उन्होंने अपने नामका एक उत्तम पर्वत नियत किया । वादमें सागरके साथ गोदावरी-सङ्गममें स्नान किया । पश्चात् वे दक्षिणमांणसे पूर्वको ओर आ गये । वहाँ अन्य राजाओंसे पूजित तथा सम्मानित होकर और उनसे कर लेते हुए उनको भी साथ लेकर धीरे-धीरे विमानके द्वारा अन्यान्य तीर्थोंको देखनेकी इच्छासे दक्षिण भारतकी ओर चले । इस प्रकार रामकी पूर्वप्रदेशकी यात्रा समाप्त हुई ॥१३५-१३६॥  
इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकाया पूर्वदेशयात्रावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदासने कहा—वहाँसे राम मनोहर मत्स्यतीर्थ होते हुए महानदी तथा कृष्णाको पार करके अन्यान्य पवित्र स्थानोंको देखते हुए पानक नृसिंहतीर्थ गये । पश्चात् कृष्णा तथा समुद्रके सङ्गममें स्नान करके उन्होंने अनेक दान पुण्य किये ॥ १ ॥ २ ॥ वहाँसे विविध दर्शनोंके सौन्दर्य देखते हुए राम श्रीशंख पर्वतपर पधारे । वहाँ नीलगंगामें स्नान करके श्रीमल्लिकार्जुनके दर्शन किये ॥ ३ ॥ वहाँपर कृष्णा नदीका ही नाम नीलगंगा पढ़ गया है । पुनर्जन्मके निवारक श्रीशंखशिखरको देखकर शिखरेश्वरके शिखरसे निकले हुए लहरकुण्डमें स्नान किया । इसके अतिरिक्त भीमकुण्ड, निर्वृतिसङ्गम, तुङ्गभद्राके सङ्गम, महानदीके सरोवर और भवनाशिनीमें स्नान किया । वहाँ महाप्रतापी नरसिंहजीका दर्शन किया तथा स्तंभकी प्रदक्षिणा की । वहाँसे आगे पुष्पगिरिपर जाकर पिनाकिनी नदीमें स्नान किया ॥ ४-७ ॥ वादमें अनेक आश्रमों तथा विविध पुष्पवनोंको देखते हुए पंपासरोवर और वहाँसे किञ्चित्कथा गये । वहाँ सुग्रीव आदिने रामका विविवत् पूजन-सत्कार किया ॥ ८ ॥ वहाँसे सुग्रीव आदि वानरोंको साथ ले तथा विमानपर आलड़ होकर आकाशमांणसे प्रवर्षण गिरिपर पधारे । वहाँ जानकीको अपनी निवासगृहका दिखलाकर श्रीराम कुछ हैंसे । फिर भीमकुण्डमें स्नान करके पडानन कार्तिकेय स्वामीका दर्शन करनेके लिए गये ॥ ९ ॥ १० ॥ अगस्त्यकुण्डमें

र्यारभद्र ततो दृष्टा नन्त्वाऽदिवेंकटं भुति । गोविंदराजं तं नन्त्वा त्रृमिपत्तनसस्थितम् ॥१२॥  
 स्नात्वा कपिलधारायां तीरथशाद् विश्वाय च । ततः शेषाचलं गत्वा स्नात्वा पुष्करिणीजले ॥१३॥  
 वेंश्टेशं पूजयित्वा पंचतीर्थीं विगाह्य सः । सुरण्मुखहरीतीरसंस्थं श्रीकालहस्तिनम् ॥१४॥  
 पूजयित्वा ययौ कांचीं रामः शिवहरिप्रियाम् । एकांवरेश्वरं पूज्य सर्वतीर्थे विगाह्य च ॥१५॥  
 कामाक्षीमेविकां नन्त्वा स्नात्वा वेगवनीजले । नन्त्वा वरदराजं च पक्षितीर्थं ततो ययौ ॥१६॥  
 पूषाविधारुनामानी पश्चिणीं पूज्य मीनया । पुष्पकेण ततः श्रीघ्र श्वीरनद्यां विगाह्य च ॥१७॥  
 नन्त्वा त्रिविक्रमं तत्र ततोऽगादरुणाचलम् । मुक्तिर्यत्स्मरणादेव नन्त्वा तमसुगाचलम् ॥१८॥  
 मणिमुक्तानदीतीरे वृद्धाचलमगात्ततः । वृद्धाचलेशं संपूज्य वटपालं ततो ययौ ॥१९॥  
 वटपालेश्वरं पूज्य ततः श्रीमुष्टिमध्यगान् । तत्र यज्ञवराहं च संपूज्य जगदीश्वरम् ॥२०॥  
 चिदम्बरमथागच्छदर्शनादेव मुक्तिर्य । लिखिता यत्र शेषेग शिलायां ताण्डवाकृतिः ॥२१॥  
 कांचीं च ततस्तीर्थां मिंहक्षेत्रं ततो ययौ । नन्त्वा ब्रह्मपुरेशं च वैद्यनाथं प्रणम्य सः ॥२२॥  
 श्वेतारण्यं ततो गत्वा शंखमुख्यां विगाह्य च । छायावनं ततो दृष्टा ययौ गौरीमयूरकम् ॥२३॥  
 वेदारण्यं ततो गत्वा नन्त्वा मध्याजुनं शिवम् । स्नात्वाऽथ वृद्धकावेरीं कुम्भकोण विलोक्य च ॥२४॥  
 श्रीनिवासं ततो दृष्टा दृष्टा वृन्दावनं शुभम् । सारनाथं ततो दृष्टा श्रीवत्सं च ददर्श सः ॥२५॥  
 प्रयागमाध्वं नन्त्वा गत्वाऽम्र शिरसः स्थलम् । भित्तावाकाशनीलाभं गत्वाऽथ कमलालयम् ॥२६॥  
 त्यागेश्वरं समम्भ्यर्थं गयातीर्थे विगाह्य च । दक्षिणद्वारकायां च श्रीगोविंदं प्रणम्य सः ॥२७॥  
 जैपालाख्यं पुरं गत्वा गत्वा चाभयदेश्वरम् । विष्णेश्वरं नमस्कृत्य पुरा संस्थापितं इवयम् ॥२८॥  
 स्नात्वा वै नवपापाणे ययौ देव्याश्च पत्तनम् । स्नात्वा वेतालतीर्थे वै तीत्वैष्ठं सागरस्य च ॥२९॥

स्नान करके अनेक तीर्थ देखे । कनकगिरिपर विराजमान शम्भुका दर्शन करके उनकी पूजा की ॥ ११ ॥ बादमें वीरभद्रका दर्शन करके पूर्णीपर प्रसिद्ध अग्निवेङ्गुटको नमस्कार किया । तदनन्तर त्रृप्तिपत्तन ( तिरुपति नगर ) में स्थित गोविन्दराजके दर्शन किये ॥ १२ ॥ वहाँ कपिलधारामें स्नान करके तीरथशाद् किया । वहसे शेषाचलपर जाकर पुष्करिणीके जलमें स्नान किया ॥ १३ ॥ वेङ्गुटेश भगवानकी पूजा-अर्चा करनेके बाद पंचतीर्थमें स्नान किया ॥ बादमें मुवण्मुखहरीके तीरपर विराजमान श्रीकालहस्तीश्वरका पूजन करके राम शिव तथा विष्णुकी प्रिय शिवकांची और विष्णुकांची गये । वहाँ एकांवरेश्वरकी पूजा करके सभी तीर्थोंमें अवगाहन किया ॥ १४ ॥ तब कामाक्षी देवीको नमस्कार करके वेगवतीके पवित्र जलमें स्नान किया । वहसे आगे वरदराजका दर्शन करके पक्षितीर्थ गये ॥ १५ ॥ १६ ॥ वहाँ पूर्वा तथा विघाता नामके दो पक्षियोंकी पूजा करके सीताके साथ विमानपर बैठकर श्रीघ्र ही क्षीरनदीपर पवारे, वहाँ स्नान कर और त्रिविक्रमका दर्शन करके अरुणाचल गये । स्मरणमात्रसे मुक्ति देनेवाले अरुणाचलको नमस्कार करके मणिमुक्ता नदीके तटपर स्थित वृद्धाचलपर गये । वहाँ वृद्धाचलेश्वरकी पूजा करके वटपाल गये ॥ १७-१८ ॥ वहाँ वटपालेश्वरकी पूजा करके मुष्टितीर्थ गये । वहाँ यज्ञवराहकी पूजा करके दर्शनमात्रसे निर्वण पद देनेवाले चिदम्बरेश्वरके दर्शनार्थं पवारे । वहाँपर शिलामें शेषनामकी लिखी हुई तांडवचित्रावली देखी ॥ २० ॥ २१ ॥ पश्चात् कावेरीको पार करके सिंहक्षेत्र गये । बादमें ब्रह्मपुरेश और वैद्यनाथको प्रणाम करके श्रीराम श्वेतारण्य पवारे वहाँ शह्नमुखीमें स्नान किया । वहाँसे छायावन होकर गौरीमयूर गये । वहाँसे वेदारण्य जाकर मध्याजुन शिवका दर्शन किया । पश्चात् वृद्धकावेरीमें स्नान करके कुम्भकोणम् देखा ॥ २२-२४ ॥ वहाँसे आगे श्रीनिवासका दर्शन करके चित्ताकर्षक वृन्दावनकी ओर गये । तदनन्तर सारनाथका दर्शन करके श्रीवत्सके दर्शनार्थं आगे बढ़े ॥ २५ ॥ वहाँ प्रयागमें वेणीमाधवका दर्शन करके आम्रशिरस नामके स्थानपर गये । वहाँकी भीतमें आकाशके समान लीलाकमलालय देखा ॥ २६ ॥ बादमें त्यागेश्वरकी पूजा करके गयातीर्थमें स्नान किया और दक्षिण द्वारका और श्रीगोविन्दको प्रणाम किया ॥ २७ ॥ वहाँसे जैपाल नामके नगरमें जाकर

स स्नात्वा भैरवे तीर्थे प्रापैकांतस्थित निजम् । अवरुद्ध विमानाश्रयात्पद्माद्यां सर्वैर्जनैः सह ॥३०॥  
 गत्वा लक्ष्मणकुंडेऽथ स्वकुंडेऽपि विगाह्य च । अग्नितोर्थे ततः स्नात्वा धनुष्कोद्यां विगाह्य च ॥३१॥  
 स्नात्वा जटायुतीर्थे हि गत्वा तं गधमादनम् । आशौ नत्वा विश्वनाथं पुराऽतीतं हनूमता ॥३२॥  
 रामेश्वरं ततो नत्वा कृत्वा गंगाभिषेचनम् । काचकुभादिकं त्यक्त्वा धनुष्कोद्यां रथूल्लमः ॥३३॥  
 कोटितीर्थं धनुष्कोद्यां चकार कूपमुत्तमम् । क्षेत्रपापप्रशांत्यर्थं दृश्य श्रीसेतुमाघवम् ॥३४॥  
 नानादानादिकं कृत्वा मासमेकं विलंघ्य च । वाहनारुद्देवानां महोत्साहान्विधाय च ॥३५॥  
 क्षेत्रपापप्रशांत्यर्थं कोटितीर्थं विगाह्य च । नत्वा द्वारस्थगणपं तीत्वैर्घं जलधेः पुनः ॥३६॥  
 विहायसा विमानेन स दर्भशयनं ययौ । स्नात्वा निक्षेपिकातोयैस्ताम्रपर्यविधसंगमे ॥३७॥  
 गत्वा स्नात्वा रामचंद्रो ददौ दानान्यनेकशः । ततोऽव्येस्तारमस्थं तं स्कन्दं संपूज्य राघवः ॥३८॥  
 ताम्रपर्णीतटेनैव पश्यन्पुण्यस्थलानि सः । नव्येकटनाथांस्तान्त्वा तोताद्रिमाययौ ॥३९॥  
 कन्याकुमारिका दृष्टा सिन्धुतीरनिवासिनीम् । प्रतीक्षतां स्थीयमार्गं विभ्रंशीं मालिकां करे ॥४०॥  
 तामाह रघुवीरश्च वरं वरय सुव्रते । सा प्राह राघवं नत्वा चिरमस्मि व्रतस्थिता ॥४१॥  
 अहं मुनिसुता पित्रा सुरेंद्राय विनिश्चिता । विश्वाहार्थं समानीतः सुरेंद्रो योजने स्थितः ॥४२॥  
 तत्र यात्रोद्यमं श्रुत्वा मया चित्ते विनिश्चितम् । आगमिष्यति रामोऽत्र वरयिष्याम्यहं तदा ॥४३॥  
 पित्रा मन्निश्चयं ज्ञात्वा सुरेंद्रो विनिवर्तितः । मोऽपि मत्खेदचित्तस्तु योजनेऽद्यापि वर्तते । ४४॥  
 विवाहोपकरणादि मन्मात्रा यत्कृतं प्ररा । पित्रा तत्सागरे क्षिप्तं क्रोधाविष्टेन राघव ॥४५॥

अभयदेश्वरका अचंत किया । पश्चात् रामचन्द्रने पूर्वसमयमें अपने द्वारा स्यापित विघ्नेश्वरका दर्शन किया ॥ २८ ॥ वहाँके नवपाषाणसरमें स्नान करके देवीनगर गये । फिर वेतालतीर्थमें स्नान करके सागरके अथाह जल-प्रवाहको पार करके ॥ २९ ॥ एकान्तमें स्थित भैरवतीर्थ गये । वहाँसे पैदल चलते हुए सबके साथ आगे बढ़े । आगे जाकर लक्ष्मणकुंड, रामकुंड, अग्नितीर्थ, धनुष्कोटितार्थ और जटायुतीर्थमें स्नान किया । वहाँसे गंधमादन पवंतपर गये । वहाँ पूर्वसमयमें हनुमानजीके द्वारा लाये हुए विश्वनाथका दर्शन किया ॥ ३०-३२ ॥ पश्चात् रामेश्वरको नमस्कार करके उन्हें गङ्गाजलसे स्नान कराया । बादमें रामने खाली काँचके घड़ोंको धनुष्कोटि तीर्थमें फेंक दिया ॥ ३३ ॥ उस धनुष्कोटि तीर्थमें रामने कोटितीर्थ नामका एक कूप खुदवाया । बादमें क्षेत्रपापकी शांतिके लिए श्रीसेतुबंध माघवका दर्शन किया ॥ ३४ ॥ वहाँपर अनेक दानपुण्य करते हुए रामने एक मास निवास किया । अनेक वाहनारुद्द देवताओंका महोत्सव भी वहाँ मनःया ॥ ३५ ॥ पश्चात् पुनः क्षेत्रपापकी शांतिके लिए कोटितीर्थमें स्नान किया । द्वारपाल गणनाथको नमस्कार कर तथा विमानके द्वारा समुद्र पार करके दर्भशयन नामके तीर्थको गये । वहाँ निक्षेपिकाके जलमें और ताम्रपर्णी तथा सागरके संगममें स्नान किया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ भी अनेक दान दिये । पश्चात् रामने समुद्रके तटपर विराजमान कार्तिकेय स्वामीको पूजा की ॥ ३८ ॥ बादमें ताम्रपर्णीके किनारे-किनारे राम अनेक पवित्र स्थानोंको देखते तथा नववेकटेश्वरोंकी पूजा करते हुए तोताद्रि गये ॥ ३९ ॥ पश्चात् सिंधुतीर-निवासिनी कन्याकुमारीके दर्शन किये, जो कि हाथमें माला लिये उन्हीं ( राम ) की राह देख रही थीं ॥ ४० ॥ रामजीने उससे कहा-हे सुक्रते ! वर माँगो । तब उसने रामको नमस्कार करके कहा-हे राघव ! मैं बहुत दिनोंसे द्रव घारण करके आपकी प्रतीक्षामें यहाँ खड़ी हूँ ॥ ४१ ॥ मैं एक मुनिकन्या हूँ । मेरे पिताने मुझे सुरेन्द्रको देना निश्चित किया और उनको विवाहके लिए बुलाया भी था । जो कि अब भी यहाँसे एक योजनकी दूरीपर विद्यमान है ॥ ४२ ॥ परन्तु मैंने जब आपकी तीर्थयात्राका समाचार सुना तो मनमें यह निश्चय कर लिया कि राम जब यहाँ यात्राके निमित्त आयेंगे, तब मैं उन्हींसे विवाह करूँगा ॥ ४३ ॥ पिताने जब मेरा यह हृषि निश्चय देखा तो सुरेन्द्रको लौटा दिया । वह नेरे लिए हुँखित होकर एक योजनपर अब भी खड़ा है ॥ ४४ ॥ हे राघव ! मेरी माताने विवाहके लिए जो सामग्री एकत्रित की थी, वह सब मेरे

अद्यात्प इश्यते पश्य तरंगनिंगेतं वहिः । अद्य त्वया तारिताऽहं मां दासीं कर्तुमर्हसि ॥४६॥  
ज्ञात्वा तस्या ह्यभिप्रायं तामाह रघुनन्दनः । एकपत्नीवतं मेऽस्मिञ्चन्मन्यस्ति कुमारिके ॥४७॥  
अग्रे कृष्णावतारे त्वं भज मां नात्र सशयः । तद्रामवचनादेव यमैश्च नियमैरपि ॥४८॥  
यावद्रामः स्थितो भृम्यां तावद्वत्वा कलेवरम् । तपोवलेन देहांते जांघवंती जनिष्यति ॥४९॥  
जांघवंतीति नाम्ना सा कृष्णपत्नी भविष्यति । रामो ययौ सुरेंद्र च पयोणीं संविगाह्य सः ॥५०॥  
आद्यनंतं ततो गत्वा ताम्रपर्णीतटे स्थितम् । विनिद्रितं शेषपृष्ठे लक्ष्मीगरुडसेवितम् ॥५१॥  
ज्ञातव्या ताम्रपर्णी सा त्वन्या पश्चिमवाहिनी । अनन्तशयनं गत्वा पद्मतीर्थे विगाह्य च ॥५२॥  
शंखतीर्थे मत्स्यनद्यां विगाह्य सीतया प्रभुः । ततो गत्वा विमानेन धर्माधर्मसरोवरे ॥५३॥  
स्नात्वा जनार्दनं गत्वा पश्चिमे ह्यविधरोधसि । दर्शेऽथ पौर्णिमायां च गंगाधाराविधसगम ॥५४॥  
स्नात्वा जनार्दनं पूज्य नारीराज्यं विलोक्य च । अग्रे श्रीरामचंद्रः स न ययौ लोकशिक्षया ॥५५॥  
परिवृत्य ततो रामो घृतमालां विगाह्य च । कृतमालां ततः स्नात्वा सिन्धुनद्यां विगाह्य च ॥५६॥  
गत्वा गजेन्द्रमोक्षं च ताम्रपर्णीतटस्थितम् । ताम्रपर्ण्युद्मे त्वात्वा गत्वा मैरालतीर्थकम् ॥५७॥  
गत्वा चंद्रकुमाराख्यं गिरि श्रीरघुनन्दनः । ततो ययौ विमानेन दृष्टा दक्षिणकाशिकाम् ॥५८॥  
नत्वा काशोविधनाथं चंपकारण्यमाययौ । चित्रगंगाजले स्नात्वा नत्वा हरिहरी शुभ्मी ॥५९॥  
ततो रामो विमानेन मधुपुर्या विवेश सः । वेगवत्या जले स्नात्वा नत्वा तं सौन्दरेश्वरम् ॥६०॥  
मीनाक्षीमविकां नत्वा वेंकटं द्राविडे गिरी । कावेरीमध्यनिलयं श्रीरगशयनं ययौ ॥६१॥  
मातृभूतेश्वरं नत्वा नत्वा तं जंबुकेश्वरम् । रंगनाथं नमस्कृत्य ह्यविनाशीं ततो ययौ ॥६२॥

पिताने कुद्ध होकर समुद्रमें फेंकवा दी ॥ ४५ ॥ वह सामयी आज भी तरंगोंके द्वारा लहरा-लहराकर बाहर आ रही है । हे प्रभो ! आज यहां आकर आपने मुझको तार दिया है । अब आप दया करके मुझे अपनी दासी बना लं ॥ ४६ ॥ उसके अभिप्रायको जानकर रघुनन्दन रामने कहा—हे कुमारिके ! इस जन्ममें तो मैने अविच्छल एकपत्नीवत धारण कर रखवा हूँ ॥ ४७ ॥ आगे चलकर कृष्णावतारमें मैं तुझे अवश्य प्राप्त होऊँगा । इसमें संदेह नहीं है । रामचन्द्रके कथनानुसार जवतक राम पृथ्वीपर रहे, तवतक वह यम-नियमपालनपूर्वक जीती रही । तदनन्तर अपने तपोवलसे जरीर छोड़कर जाविवानके यहाँ उत्पन्न होकर जाम्बवती नामकी कृष्णपत्नी बनी । वहाँसे राम सुरेन्द्र गये तथा पयोणीमें स्नानकर ताम्रपर्णीकि तटपर स्थित आद्यानन्तीर्थपर पधारे, जहाँ भगवान् विष्णु लक्ष्मी तथा गरुडसे सेवित होकर शेषनागपर शयन कर रहे थे ॥ ४८-५१ ॥ उनके दर्शन करके पश्चिमवाहिनी ताम्रपर्णीकि तटपर गये । वहाँ स्नान करके पद्मतीर्थपर अनन्तशयनके दर्शनाथ गये ॥ ५२ ॥ सोता महित भगवान् ने शाङ्खतीर्थं जाकर मत्स्यनदीमें स्नान किया और बादमें वहाँसे विमानपर सवार होकर धर्माधर्मनामके सरोवरपर गये । वहाँ स्नान करके पश्चिम समुद्रतटपर विराजमान जनार्दनके दर्शन किये । अमावस्या तथा पूर्णिमाको गंगा तथा समुद्रके सङ्गमपर स्नान करके उन्होंने जनार्दन भगवान् की पूजा की । उसके आगे स्त्रीराज्य देखकर श्रीराम लोगोंको शिक्षा देनेके निमित्त आगे नहीं बढ़े ॥ ५३-५४ ॥ वहाँसे लौटकर रामने घृतमाला, कृतमाला तथा सिंधुनदमें स्नान किया ॥ ५६ ॥ वहाँ ताम्रपर्णीकि तटपर स्थित गजेन्द्रमोक्ष गये । जहाँसे ताम्रपर्णी निकली है, उस जगह स्नान किया । वहाँसे मैराल तीर्थ गये ॥ ५७ ॥ वहाँसे चन्द्रकुमार पर्वतपर गये । पश्चात् विमानके द्वारा दक्षिणकाशी गये ॥ ५८ ॥ वहाँ विश्वनाथका दर्शन करके चम्पकारण्य पधारे । वहाँ चित्रगङ्गामें स्नान करके दर्शनमात्रसे कल्याण करनेवाले हरिहरका दर्शन किया ॥ ५९ ॥ बादमें रामने विमानपर वैठकर मधुपुरीमें प्रवेश किया । तदनन्तर वेगवतीके पवित्र जलमें ध्वनगाहन करके जगदिख्यात सौन्दरेश्वरके दर्शन किये ॥ ६० ॥ तदनन्तर मीनाक्षी देवीके दर्शन किये । द्रविडगिरिपर वेंकटेश्वरके दर्शन किये और कावेरीके मध्यमें निवास करनेवाले श्रीरगशयनका दर्शन किया ॥ ६१ ॥ पश्चात् मातृभूतेश्वरका दर्शन करके जंबुकेश्वरके दर्शनाथं पधारे । वहाँसे रङ्गनाथ जाकर

श्रीरंगपत्तनं गत्वा स्नात्वा हैमवतीजले । शालिग्रामं नमस्कृत्य रामनाथपुरं यथो ॥६३॥  
 स्नत्वा कुमारधारायां सुब्रह्मण्यं प्रपूज्य च । उड्पाठ्यं ततः कृष्णं नत्वा शृंगाभ्यं यथो ॥६४॥  
 तुंगानदातटे शृंगिगिरौ नत्वा त शारदाम् । कुम्भकाशीं ततो गत्वा गत्वा क्रोटीश्वरं शिवम् ॥६५॥  
 नत्वा मूर्कांविकां देवीं नत्वा मुण्डेश्वरं हरम् । गुणवतेश्वरं नत्वा नत्वा धारेश्वरं ततः ॥६६॥  
 गौरेश्वरं नमस्कृत्य नत्वा सर्गेश्वरं शिवम् । गोकर्णं च ततो गत्वा तं प्रणम्य महावलम् ॥६७॥  
 हरीहरेश्वरं गत्वा पञ्चस्तीर्थान्प्रत्यनेकशः । जामदग्न्यं महेन्द्राद्रौ नत्वा भीमेश्वरं यत्पौ ॥६८॥  
 धौमं महावलं नत्वा यथो कोलपुरं ततः । करवीरपुरं गत्वा कृष्णावेण्योस्तु संगमे ॥६९॥  
 स्नात्वा रामो विमानेन गदालक्ष्मीश्वरं यथो । स्नात्वा घटप्रभायां तु पञ्चन् पुण्यस्थलानि हि ॥७०॥  
 महादेवं नमस्कृत्य नत्वा महारिमीश्वरम् । कारानदीतटस्थं तं बक्रतुंडं विलोक्य च ॥७१॥  
 नौरानदीजले स्नात्वा नारसिंहं प्रयूज्य च । पांडुरंगं नमस्कृत्य चंद्रभागां विगाय्य च ॥७२॥  
 यथो भीमासंगमं तु चंदलां च ततो यथो । ततः प्रेमपुरं गत्वा नत्वा मार्त्तिर्मीश्वरम् ॥७३॥  
 नीलदुर्गां विलोक्याथ नाना पञ्चन्स्थलानि हि । तुलजापुरसंस्थां तां देवीं नत्वा यथो ततः ॥७४॥  
 माणिक्यामंविकां दृष्ट्वा पञ्चस्तीर्थानि राघवः । योगीश्वरीं वरामंवां दृष्ट्वा हृत्यापुरस्थिताम् ॥७५॥  
 वैद्यनाथं नमस्कृत्य वंजरासंगमं यथो । नागेशं च विलोक्याथ विमानेन स राघवः ॥७६॥  
 स्नात्वा पूर्णासंगमे तु गोदाया उत्तरे तटे । स्वनाम्नाऽथ पुरीं कृत्वा मुद्रलाश्रममायथो ॥७७॥  
 वाणतीर्थं ततः स्नात्वा मिथुफेनासुसंगमे । गोदानाभाववज्जकेऽथ स्नात्वा नत्वा त्रिविक्रमम् ॥७८॥  
 कृत्वा परां स्वनाम्ना तु पुरीं गोदावरीतटे । अंविकां तु नमस्कृत्य चंडिकां परिपूज्य च ॥७९॥

उनकी पूजा की । बादमें अविनाशी तीर्थकी ओर गये ॥ ६२ ॥ श्रीरंगनगरको देखनेके बाद हैमवतीके पवित्र जलमें जाकर स्नान किया । पश्चात् शालिग्रामको नमस्कार करके रामनाथपुर पवारे ॥ ६३ ॥ वहाँ कुमारधारामें अवगाहन करनेके अनन्तर मुब्रह्मण्यपदेवीकः श्रीतिपूर्वक पूजा की । पश्चात् उडुरी नामक कृष्णकी पूजा करके शृङ्गारप आश्रमकी ओर चले ॥ ६४ ॥ वहाँ तुङ्गभद्रा नदीमें स्नान करके शृङ्गिगिरिपर विराजमान शारदादेवीके दशन किये । पश्चात् कुम्भकाशी होते हुए कोटीश्वर गये ॥ ६५ ॥ वहाँसे मूर्कांविकां देवीके दर्शन करते हुए मुण्डेश्वर शिवके दर्शनार्थ पवारे । पश्चात् गुणवतेश्वर और उसके उपरान्त धारेश्वरके दर्शन किये ॥ ६६ ॥ फिर गौरेश्वर तथा सर्गेश्वरके दर्शन किये । फिर गोकर्णेश्वर, जामदग्न्य तथा महेन्द्र पवंतपर विराजमान भीमेश्वरके दर्शन किये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ तदुपरान्त धीम और महावलीका दर्शन करके श्रीराम कोलापुर पवारे । पश्चात् करवीरपुर जाकर कृष्णा और देणाके सङ्गममें स्नान किया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर विमानारुद्ध होकर राम गशलधर्मीश्वरके दर्शनार्थ पवारे । वहाँ घटप्रभामें स्नान करके वहाँके अन्यान्य पुण्यस्थल देखे ॥ ७० ॥ फिर महादेवको नमस्कार करके मल्लारीश्वरके दर्शनार्थ गये । बादमें कारानदीके तटपर विष्णुमान जगद्विलयात बक्रतुंडके दर्शन किये ॥ ७१ ॥ बादमें नीरा नदीमें स्नानकर तथा नरसिंहका पूजन करके पांडुरङ्गका पूजन और चंद्रभागामें स्नान किया ॥ ७२ ॥ तदनन्तर भीमानदीके सङ्गम तथा चन्दलामें स्नान किया । फिर प्रेमपुरमें जाकर उन्होंने मार्त्तिर्म प्रभुका दर्शन किया ॥ ७३ ॥ वहाँ नीलदुर्गाका दर्शन करके बहुतसे स्थानोंका अवलोकन किया । पश्चात् तुलजानगरमें जाकर वहाँ देवीके शुभ दर्शन किये और बादमें आगे बढ़े ॥ ७४ ॥ आगे जाकर माणिक्य अंद्राके दर्शन करके अन्यान्य पवित्र तीर्थोंमें श्रीरामने भ्रमण किया । पश्चात् अंद्रापुरमें विराजमान योगीश्वरी अम्बाका दर्शन किया ॥ ७५ ॥ बादमें वैद्यनाथको नमस्कार करके वंजरासंगमपर पवारे । वहाँसे विमान द्वारा नागेश्वरके दर्शनार्थ गये ॥ ७६ ॥ पूर्णकी संगममें स्नान करके गोदावरीके उत्तरी किनारेपर अपने नामसे रामने एक पुरी वसायी । वहाँसे मुद्रल शृष्टिके आश्रमपर होते हुए वाणतीर्थ गये । वहाँ स्नान करके सिन्धुफेनाके मनोहर संगमपर गये । तत्पश्चात् गोदावरी और अब्जक नदीमें स्वान करके त्रिविक्रमके दर्शन किये ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ वहाँपर भी गोदावरीके तटपर

आत्मतीर्थेततः स्नात्वा नत्वा विज्ञानमीश्वरम् । महालक्ष्मीं विलोक्याथ बडवासंगमं ययौ ॥८०॥  
 प्रतिष्ठानं विलोक्याथ स्नात्वा वृद्धैलसंगमे । शिवनंदासंगमेऽथ नृसिंहं परिपूज्य सः ॥८१॥  
 स्त्रीयनाम्ना रुधातीर्थे प्रवरासंगमं ययौ । सिद्धेश्वरं नमस्कृत्य निवासाख्यं पुरं ययौ ॥८२॥  
 नृश्राम्यं पुरं गत्वा पश्यन्नानास्थलानि सः । ययौ गोदातटेनैव पुण्यस्तंभं रघूद्वहः ॥८३॥  
 गत्वा कद्रुसंगमे तु विनतासंगमं ययौ । जनस्थानं ततो गत्वा ययौ त्र्यवकमीश्वरस् ॥८४॥  
 दक्षिणात्यैर्नृपतिभिर्मानितः पूजितोऽपि च । गृहीत्वा करभारं स्वं तेभ्यस्तैः सहितो ययौ ॥८५॥  
 एवं दक्षिणयात्रेयं या कृता राघवेण वै । सा मया विस्तरेणैव कथिता त्र्यवकावधि ॥८६॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे दक्षिणतोर्थयात्रावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

### अष्टमः सर्गः

( राम द्वारा भारतवर्षके पश्चिमी प्रदेशकी तीर्थयात्रा )

विष्णुदास उवाच

गुरो जातोऽस्ति संदेहो मम चित्ते वदाम्यहम् । स त्वया छिद्यतां स्वामिन् साधवो हि कृपालवः ॥ १ ॥  
 यानारुद्धा न कर्तव्या यात्रा चेति श्रुतं मया । कथं यानेन रामेण कृता यात्रा त्वयेरिता ॥ २ ॥  
 इति जातोऽस्ति संदेहो मम तं त्वं निवारय । इति शिष्यवचः श्रुत्वा गुरुः प्राहाथ तं पुनः ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

पदा यात्रा न कर्तव्या छत्रचामरधारिणी । राजा द्वीपाधिपत्येन कार्या मांडलिकेन तु ॥ ४ ॥  
 पृथिवीश्वस्य देवस्य लग्नोद्युक्तवरस्य च । तथा मठाधिपस्यापि गमनं न पदा स्मृतम् ॥ ५ ॥  
 तस्मान्नात्र त्वया कार्यः संदेहो राघवं प्रति । आज्ञया रामचंद्रस्य कृपयाऽपि च तैर्जनैः ॥ ६ ॥

अपने नामकी पुरी बसायी । फिर अम्बिका तथा चंडिकाकी पूजा की ॥ ७९ ॥ पश्चात् आत्मतीर्थमें जाकर स्नान किया । बादमें विज्ञानेश्वरका दर्शन करके बडवासंगमपर स्नान किया ॥ ८० ॥ फिर प्रतिष्ठानपुरको देखकर वृद्धैलसंगममें स्नान किया । शिवनन्दाके संगममें स्नान करके उन्होंने नृसिंहकी पूजा की ॥ ८१ ॥ तदनन्तर अपने नामके रामतीर्थको देखकर प्रवराके संगमपर गये । वहाँ सिद्धेश्वरको नमस्कार करके निवासाख्यपुर गये ॥ ८२ ॥ वहाँसे नूपुरनगर गये तथा और भी बहुतसे स्थान देखे । गोदावरीके तटपर होते हुए रघूद्वह राम पुण्यस्तम्भ गये ॥ ८३ ॥ वहाँसे कद्रुके संगमपर गये । वहाँसे आगे विनताके संगमपर गये । वहाँसे जनस्थान और वहाँसे त्र्यवकावधि गये ॥ ८४ ॥ रास्तेमें दक्षिणात्य राजाओंके द्वारा सम्मानित और पूजित होते हुए राम उनसे अपना कर उगाहते और उनको साथ लेते हुए आगे बढ़े ॥ ८५ ॥ इस प्रकार त्र्यवकावधि की हुई रामकी दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा मैने तुमको कह सुनायी ॥ ८६ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे 'जपोत्तना'भाषाटीकार्यां दक्षिणतोर्थयात्रावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मेरे हृदयमें एक संशय है । वह मैं आपके सम्मुख कहता हूँ । आप उसको दूर करें । योंकि साधु-महात्मा स्वभावसे कृपालु होते हैं ॥ १ ॥ मैने सुना है कि सवारोपर बैठकर यात्रा नहीं करनी चाहिये । फिर आपने जो कहा कि श्रीरामने विमानपर सवार होकर यात्रा की, सो वरों ? ॥ २ ॥ यही मुझे संदेह है, इसे आप निवृत्त करें । शिष्यके वचनको सुनकर गुहने कहा ॥ ३ ॥ श्रीरामदास बोले—शास्त्रमें वह भी लिखा है कि ऐसे छत्रचमरधारी पुरुषको पैदल यात्रा नहीं करनी चाहिए, जो किसी द्वीपका अधिपति राजा हो । हाँ, मांडलिक अर्थात् किसी एक मंडलके राजाको तो पैदल ही यात्रा करना उचित है ॥ ४ ॥ बड़े पृथ्वीपतिको, देवताको, जिसका विवाह होना हो ऐसे वरको तथा मठाधीशको पैदल चलकर यात्रा नहीं करनी चाहिए ॥ ५ ॥ अतः तुमको श्रीरामकी विमान द्वारा यात्रामें किसी प्रकारका संदेह नहीं

अधिष्ठिरं पुष्पकं तु को वेदेश्वरचेष्टितम् । इदानीं रामचन्द्रस्य भृणु तां प्राक्तनीं कथाम् ॥७॥  
 अयं ब्रह्मकाद्रामचन्द्रस्तु पुरा यत्र तु निद्रितम् । सीताया पर्वते तत्र गत्वा स्थित्वा दिनत्रयम् ॥८॥  
 सप्तशृंगगिरौ गत्वा गत्वाऽगस्तेस्तु चाश्रमम् । सुतीक्ष्णस्याश्रमं गत्वा ययौ चैलपुरं ततः ॥९॥  
 घृण्येश्वरं नमस्कृत्य शिवतीर्थे विगाह्य च । हृष्टा रम्य देवगिरि विरजाक्षेत्रमाययौ ॥१०॥  
 मातापुरस्थां देवीं तां नत्वा पश्यन्स्थलानि सः । देववाटे नारसिंह नत्वा रामथ सीताया ॥११॥  
 चकार विधिवत्स्नानं पयोष्ण्यां वैधुभिर्जनैः । स्नात्वा ताप्युद्गुमं रामः स्वनाम्ना पर्वतोत्तमम् ॥१२॥  
 गत्वा स्नात्वाऽथ रेवायामोकारं परिपूज्य च । पश्चिमाभिमुखः पश्यन्नानापुण्यस्थलानि हि ॥१३॥  
 ताप्याश्च संगमे स्नात्वा नर्मदायाश्च संगमे । महानदीजले स्नात्वा प्रभासं च ततो ययौ ॥१४॥  
 पञ्चसरस्वतीनां च संगमेषु विगाह्य च । सौराष्ट्रस्यं सोमनाथं दृष्टा स भ्रमतीं नदीम् ॥१५॥  
 पश्यन्नानास्थलान्यैवं शंखोद्वारं ययौ ततः । गोमत्यां विधिवत्स्नात्वा द्वारावत्यां विवेश सः ॥१६॥  
 अनादिसिद्धां सप्तसु पुरीषु प्रथिनां शुभाम् । हृष्टा कृत्वा तीर्थिं विधिं दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥१७॥  
 पश्यन्स्तीर्थानि सर्वाणि पुण्यानि रघुनंदनः । पाश्चिमात्यैनृपतिभिर्मानितः पूजितोऽपि च ॥१८॥  
 गृहीत्वा करभारं स्वं तेष्यस्तैः सहितो ययौ । सरस्वत्यास्तटेनैव पश्यन्पुण्यस्थलानि सः ॥१९॥  
 पुष्पकस्थः शनैः सीतां दशंयन् कौतुकानि च । ययां पुष्पकरतीर्थं वै नृपैः सर्वत्र संवृतः ॥२०॥  
 विमाने प्रत्यहं रामः कोटिशो ब्राह्मणान् सदा । भोजयामास दिव्यान्नैः पायसैः शर्करादिभिः ॥२१॥  
 विमाने ये स्थिताः पूर्वमयोष्यापुरवासिनः । तथा ये पूर्वदेशीया दक्षिणात्या नृपाश्च ये ॥२२॥  
 याश्चिमात्या नृपा एवं ते बलं द्वाहनैः सह । रामेणातिथिवत्सर्वे वस्त्रान्नाभरणादिभिः ॥२३॥

करना चाहिए । उन्हीं रामचन्द्रकी आज्ञाके अनुसार और लोग भी विमानपर सवार हुए ॥६॥ ईश्वरकी चेष्टा-की कौन समझ सकता है ? अब तुम श्रीरामकी प्राचीन कथा सुनो ॥७॥ अयं ब्रह्मक वामसे चलकर श्रीराम उत्त पर्वतपर गये, जहाँ सीताके साथ उन्होंने प्रथम निद्रा ली थी । वहाँपर उन्होंने तीन रात्रि निवास किया ॥८॥ सप्तशृंग पर्वतपर जाकर अनेक मनोहर स्थानोंमें भ्रमण किया । वहाँसे अगस्त्य मुनिके आश्रमको गये । बाटमें सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रममें पधारे । पश्चात् चैलपुर गये ॥९॥ वहाँ घृण्येश्वरको नमस्कार किया, शिवतीर्थमें स्नान किया, रमणीक देवगिरि देखा और वहाँसे विरजाक्षेत्रमें गये ॥१०॥ वहाँ मातापुरनिवासिनी देवीको नमस्कारकर अनेक स्थानोंको देखते हुए देववाटमें जाकर नरसिंहको प्रणाम किया । सीता सहित रामने बाटमें जाकर पयोषणी नदीमें विधिवत् स्नान करके बन्धुसहित तापीके उद्धमस्थानमें स्नान किया । पश्चात् रामनामके पर्वतपर जाकर रेवामें स्नान करके ओंकारेश्वरकी पूजा की और पश्चिमकी ओरके अनेक स्थान देखे, जो कि बड़े पवित्र थे ॥११-१३॥ तदनन्तर तापी तथा नर्मदाके संगममें स्नान करके महानदीके जलमें स्नान किया और वहाँसे प्रभासक्षेत्र गये ॥१४॥ वहाँ पञ्चसरस्वतीके संगममें स्नान करके सौराष्ट्र (गुजरात) देहमें सोमनाथजीका दर्शन किया । वहाँसे भ्रमती नदी गये । रास्तेमें अनेक स्थलोंको देखते हुए शंखोद्वार भी थे । वहाँ गोमतीमें विधिपूर्वक स्नान करके द्वारावती (द्वारिका) में प्रवेश किया ॥१५॥१६॥ जो कि कात पूरियोंमें अनादिसिद्ध, प्रसिद्ध और बड़ी ही सुन्दर पुरी है । वहाँ तीर्थविधि सम्पन्न करके अनेक दान दिये ॥१७॥ इस प्रकार अनेक तीर्थोंको देखते तथा पश्चिमके राजा-महाराजाओंसे सम्मानित और पूजित होते तथा उन्हें अपना कर लेते और उनके साथ पुण्य स्थानोंको देखते हुए राम सरस्वतीके किनारे-किनारे जाने वडे । पुष्पकपर स्थित राम महारानी सीताको रास्तेमें अनेक कौतुक दिखाते तथा राजाओंको साथ दिये हुए पुष्पकरराज जा पहुँचे ॥१८-२०॥ रामचन्द्रजी विमानपर भी प्रतिदिन करोड़ों ब्राह्मणोंको सुन्दर और दिव्य झज्ज मालपूजा बादि तथा मिथीयुक्त खोर भोजन कराते थे ॥२१॥ इतना ही नहीं, बल्कि जो जो ब्रह्मीष्यापुरवासी लोग विमानपर पहलेसे ही गवै हुए थे तथा अन्य भी जो दक्षिण देशके

पूजिता मानिता आसन् सादरं ते यथासुखम् । न कथिद्भिन्नपाकं हि चकार पुष्पके नरः ॥२४॥  
 चिंता काष्ठरुणादीनां जलस्यापि न कस्यचित् । एका चिंता तु तत्रास्ति भुद्धोधो मे कथं भवेत् ॥२५॥  
 वाञ्छन्ति सर्वे तत्रैकं भिषकं चूर्णं प्रदास्यति । निद्रायास्तत्र दारिद्र्यं वाद्यधोषैर्निरंतरम् ॥२६॥  
 श्रामस्तत्र महानासीद्विमाने वारयोषिताम् । गीतैनेत्रकटाक्षैश्च क्रीडाभिर्वचनादिभिः ॥२७॥  
 मणिदीपदिनं रात्रिं न जानाति स्म तत्र वै । गच्छदिने कदा यानं याति रात्रावपि क्वचित् ॥२८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे शिष्यं पुष्करस्थैर्जनेस्तदा । महानादः श्रुतो रम्यो मंजुलः श्रुतितोषकृत् ॥२९॥  
 वारस्त्रीनृपुरोङ्गुतः क्वणत्कंकणजोडपि च । करताडनगीतादिमृदंगपणवोङ्गवः ॥३०॥  
 नववाद्यमसुङ्गतो घटीयंत्रसमुङ्गवः । यानवंटाकिंकिणीनां पताकारवसंभवः ॥३१॥  
 वारांगनाकटिटकिंकणीसंभवोऽपि च । वारणाश्वायुधोप्रादिमयूरकपिसम्भवः ॥३२॥  
 वीरेभ्यो वेदधोषेभ्यः शिष्येभ्यश्च समुत्थितः । नटनाटकवंदिभ्यो मागधेभ्यः समुत्थितः ॥३३॥  
 गोदोहसंभवश्चापि द्यजाभहिषिदोहजः । दधिमंथनसंभूतः शिशूनां रोदनोङ्गवः ॥३४॥  
 शिशुभंचकसंबद्धशृंखलाभ्यः समुत्थितः । नानात् योङ्गवश्चापि पिष्टचकसमुङ्गवः ॥३५॥  
 वृतपाच्चितपकवान्नप्रकारकरणोङ्गपः । नारदादिमुनिश्रेष्ठघृतवीणादिसंभवः ॥३६॥  
 पुराणकथनोङ्गतो हरिकीर्तनसंभवः । रामनामसहस्रादिस्तोत्रपाठसमुङ्गवः ॥३७॥  
 नारीपूरणपेषणकार्ये कंकणसंभवः । पादप्रक्षालनाद्यादिनानाकार्यसमुङ्गवः ॥३८॥

राजा लोग, पूर्वदेशके राजा लोग तथा पश्चिम देशके राजागण थे । उन सबका भी सेनाओं और वाहनों सहित रामने विघ्नवत् अन्न-वस्त्र-आभरण आदिसे खूब सत्कार किया । उन्हें पूर्ण आदर और सुख दिया । पुष्पक-विमानपर कोई भी मनुष्य पृथक् भोजन नहीं बनाता था । सब रामहीके भोजनालयमें भोजन करते थे । इसलिए न तो किसीको काष्ठ तथा तृणकी चिंता थी और न जलकी । यदि वहाँ किसीको कोई चिन्ता थी तो केवल यही कि अच्छी भूख केसे लगे । जिससे कि खूब अच्छा-अच्छा भोजन करें ॥२२-२५॥ वहाँ सब लोग वैद्यसे चूर्ण पानेकी इच्छा रखते थे । वहाँ दरिद्रता थी तो केवल निद्राकी । क्योंकि हर समय नाना प्रकारके वाजोंकी ध्वनि हुआ करती थी ॥२६॥ वहाँ यदि कोई भय था तो केवल वारांगनाओंका । विमानस्थ लोगों को वेश्याओंके गीत, नेत्रकटाक्ष, अनेक क्रीडाओं, मधुर वज्जनों तथा मणिमय दीपोंके कारण रात-दिन एक-सा प्रतीत होता था । यान कभी दिनमें यात्रा करता था और कभी रातमें ॥२७॥२८॥ इतनेमें हे शिष्य ! पुष्करतीर्थके लोगोंको एक बड़ा कोमल, भनोहर और श्रवणसुखकारी धोष सुनायी पढ़ा ॥२९॥ जिसमें वेश्याओंके नूपुर बजते थे, कंकण बजते थे, तालिये बजती थीं, गीत हो रहा था, मृदङ्ग तथा नगाड़े आदि वाद्यसमूह बज रहे थे, धंटिये बज रही थीं, यानके घटे बज रहे थे और झंडे फड़फड़ा रहे थे ॥३०॥३१॥ वारांगनाओंकी कोमल कमरमें बैधी हुई लुद्धांटिकाएं बज रही थी और हाथी चिंगाड़ रहे थे । धोड़े हिनहिना रहे थे । आयुध खनखना रहे थे । ऊंट गलगला रहे थे । मोर केका बाणी बोल रहे थे ॥३२॥ योद्धा लोग हाँकें लगा रहे थे । वेदधोष हो रहा था । छात्रगण अध्ययन कर रहे थे । नटोंका नाटक हो रहा था । चारण तथा भाट बिहूदावली बखान रहे थे ॥३३॥ गौओंके दोहनका घर्घर शब्द हा रहा था । वकरियों तथा भेसोंके दोहनका शब्द भी सुनायी दे रहा था । छाठ बिलोनेका घरर-घरर निनाद हो रहा था । बाल्क रो रहे थे । बाल्कोंके झूलोंकी सिकड़ियों का शब्द हो रहा था । अनेक बाजे बज रहे थे । आटा पीसनेकी चविकयोंको घरघराहट हो रही थी ॥३४॥३५॥ धीमें पकाये जाते तथा तले जाते पकवानोंका छूँ छूँ शब्द हो रहा था । नारदादि मुनियोंकी वीणादिका मधुर शब्द हो रहा था ॥३६॥ पुराण बांचे जा रहे थे । हरिकीर्तनकी ध्वनि हो रही थी । विष्णुसहस्रनाम तथा शिवमहिमनस्तोत्रादिके पाठका धोष हो रहा था । नारियोंके कोई वस्तु कूटने तथा मेहदी आदि पीसनेके समय कंकणका शब्द हो रहा था । उनके पाद-प्रक्षालनके समय झाँझरका झंकार, कड़ोंकी कणकणाहट, छड़ोंका छनछनाहट, बिछुओंकी छमछमा-

एवं नानाविधं श्रुत्वा पुष्करस्था जना ध्वनिम् । निशांते पश्चिमामाशां किमेतदिति विहूलाः ॥३९॥  
 केचिद्बुर्वन्दिधंटास्वरोऽयं श्र्यते महान् । केचिद्बुर्विमानेन गच्छतींद्रो दिवं प्रति ॥४०॥  
 केचिद्बुः समायांति रंभाद्यप्सरसश्च स्वे । केचिन्मेघध्वनिं प्रोचुः केचिदैरावतं त्विति ॥४१॥  
 केचित्प्रोचुः समायाति सागरः किं लयं विना । केचित्प्रोचुस्त्वदं ज्ञेयं वायुपुत्रस्य शब्दितम् ॥४२॥  
 केचित्पत्तिराजस्य शब्दितं प्रोचुरुत्तमम् । केचित्प्रोचुश्च गधर्वा विमानस्था अटति स्वे ॥४३॥  
 केचित्प्रोचुर्नागकन्याः कुर्वन्तीदं सुगायनम् । कुर्वन्तश्चेति तकांश्च ददशुः पुष्पकं भद्रं ॥४४॥  
 रामभागतमाज्ञाय तोषपूर्णा वभूविरे । उपायनानि संगृष्टा प्रेमनिर्भरमानसाः ॥४५॥  
 प्रत्युज्ञमुस्तदा रामं दृष्ट्वा नत्वा रघूत्तमम् । मेनिरे जन्मसाफल्यं राघवेणातिमानिताः ॥४६॥  
 राघवोऽपि विमानाग्रथादवरुण्य द्विजोत्तमान् । प्रणिपत्य समाभाष्य प्रतिपूज्य सविस्तरम् ॥४७॥  
 तैस्तीर्थवासिभिर्युक्तो ययौ पुष्करमुत्तमम् । स्नात्वा सचैलं विधिना तीर्थश्राद्धं विधाय च ॥४८॥  
 दत्त्वा दानान्यनेकानि काश्याः कोद्यधिकानि तु । द्रव्यालंकारवस्त्राभैस्तोषयामास भूसुरान् ॥४९॥  
 तत्वस्तेरभ्यनुज्ञातो विमानेन ययौ पुनः । एवं पश्चिमयात्रा ते वर्णिता राघवस्य हि ॥५०॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे पश्चिमयात्रावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८॥

### नवमः सर्गः

( रामकी उत्तरभारतीय तीर्थयात्रा और वहाँसे लौटकर अयोध्या आगमन )

रामदास उवाच

उत्तराभिमुखो रामस्ततः पश्यन् स्थलानि सः । ययौ पर्वततीर्थं च ततो ज्वालामुखीं ययौ ॥ १ ॥

हठ तथा पायजेवका मनोहारी निनाद हो रहा था ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके शब्दोंसे मिश्रित तथा घनीभूत ध्वनिको रात्रिके शांत समयमें पश्चिमकी ओर सुनकर पुष्करनिवासी लोग चकित हो गये ॥ ३९ ॥ कोई कहने लगा कि नन्दीश्वरके घंटेका यह शब्द सुनाई देता है । कोई कहने लगा कि इन्द्र विमानपर बैठकर स्वर्गं जा रहे हैं ॥ ४० ॥ कोई कहने लगा कि रम्भादि अप्सराएं आकाशमें जा रही हैं । कोई मेघकी गर्जना बतलाने लगा । कोई ऐयाषतकी चिधाड़ कहने लगा ॥ ४१ ॥ कोई कहने लगा कि विना प्रलयकालके ही समुद्र उमड़ा आ रहा है । कोई कहने लगा कि वायुपुत्र हनुमानका गर्जन हो रहा है ॥ ४२ ॥ कोई कहने लगा कि पक्षिराज गरुड़का शब्द हो रहा है । कोई बोला कि ये तो गन्धवं लोग विमानपर बैठकर आकाशमें घूम-फिर रहे हैं ॥ ४३ ॥ कोई कहने लगा कि नागकन्याएं गान कर रही हैं । इस प्रकारके अनेक तकन्तिकं करते हुए वे लोग पुष्पकको देखने लगे ॥ ४४ ॥ बादमें जब रामचन्द्रजीको आते देखा तो सब लोग बढ़े ही प्रसन्न हुए । रामको देखकर सब लोग हाथमें अनेक तरहकी भेटे लेन्देकर प्रेमपूर्वक उनके सामने गये । श्रीरामको प्रणाम करके उन्होंने अपना जन्म सफल माना । श्रीरामने भी उन सबका सत्कार किया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ पश्चात् श्रीरामने विमानसे नीचे उत्तरकर द्विज लोगोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका नमस्कारपूर्वक पूजन किया और बादमें उन ताध्यवासियोंके साथ विस्तारसे वातीलाप करते हुए उत्तम पुष्कर नगरमें प्रवेश किया । वहाँ सबस्त्र स्नान करके विविवत् तीर्थश्राद्ध किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वहाँपर रामने काशीसे कोटिगुणा अधिक दान-पुण्य किया । द्रव्य, अलंकार, वस्त्र तथा अन्नादिसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया । बादमें उनसे आज्ञा लेकर वे विमान द्वारा आगे बढ़े । इस प्रकार है पावंतो ! मैंने रामकी पश्चिम भारतकी तीर्थयात्रा कह सुनायी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे 'उयोत्स्ना'भाषाटोकायां पश्चिमयात्रावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—बादमें श्रीराम अनेक स्थलों एवं उत्तरके पर्वतों तथा तीर्थोंको देखते हुए वहाँसे

पश्यन् स्थलानि संप्राप्त तमां श्रीमणिकर्णिकाम् । करतोयानदीतोये स्नात्वाऽग्ने न ययौ विश्वः ॥ २ ॥  
 तरणे दोषमाकर्ण्य पर्यवर्तत राघवः । कर्मनाशानदीस्पश्चात्करतोयाविलंघनात् ॥ ३ ॥  
 गंडकीवाहुतरणादूर्मः स्खलति कीर्तनात् । गत्वा देवप्रथागं चालकनंदातटेन वै ॥ ४ ॥  
 नरनारायणो गत्वा दर्शनान्मुक्तिदौ नृणाम् । बद्रिकाश्रमे रामः केदारेश गिलोक्य सः ॥ ५ ॥  
 हिमाद्री देवगंधर्वसेविते धातुमंडले । महापथं ततो गत्वा ययौ तन्मानसं सरः ॥ ६ ॥  
 यस्माद्विनिर्गता गंगा सरयुः पापनाशिनी । कंजानि यत्र हैमानि यत्र हंसाः सहस्रशः ॥ ७ ॥  
 रक्तनेत्रांग्रिवदना मुक्ताभक्षणतत्पराः । यत्प्रदेशे चित्रभूम्यां देवगंधर्वकिञ्चराः ॥ ८ ॥  
 अप्सरोभिस्तथा स्त्रीभिः क्रीडां कुर्वत्यहनिंशम् । तत्र स्नात्वा मानसेऽथ गत्वा चिन्दुसरोवरम् ॥ ९ ॥  
 स्नात्वा दानादिकं कुर्वता हिमालयगिरिस्थिताम् । दृष्टा ब्रह्मसभां दिव्यां मेरुस्थसदृशीं पराम् ॥ १० ॥  
 राघवः सीताया सर्वेऽखरुद्धा स पुष्पकात् । प्रणमतं सुरेंद्राद्यैरालिङ्गं चतुराननम् ॥ ११ ॥  
 ब्रह्मणा सहितान्देवान्पूजयामास विस्तरैः । विधिस्तं पूजयामास कामधेनुं न्यवेदयत् ॥ १२ ॥  
 विमानाग्रे कामधेनुं संस्थाप्य रघुनंदनः । सुरैर्ब्रह्मादिभिः साकं कैलासमगमतदा ॥ १३ ॥  
 राममागतमाज्ञाय कैलासे गिरिजापतिः । प्रत्युजगाम पार्वत्या रामचंद्रं वृषस्थितः ॥ १४ ॥  
 शश्वत्सागतमाज्ञाय राघवः पुष्पकाज्जवात् । अवरुद्धा नमस्कृत्य शिवेनालिङ्गितः स्थितः ॥ १५ ॥  
 उमाऽपि सीतामालिङ्गं दिव्यालंकारचंदनैः ।

पूजयामास वस्त्राद्यैः सर्वकोटिसमप्रभैः । ताटके नपुरे दिव्ये केयुरे चूडकद्वयम् ॥ १६ ॥  
 किंकिणीरवसंयुक्तरशनां चंद्रभास्करौ । सीमंतभूपणो हारान्मणिमुक्ताविचित्रितान् ॥ १७ ॥

ज्वालामुखी गये ॥ १ ॥ वहसि आगे बहुतेरे स्थानोंको देखते हुए श्रीमणिकर्णिका तीर्थंपर जा पढ़ेचे । वहाँ करतोया नदीमें स्नान किया, परन्तु उसको पार करके आगे नहीं गये ॥ २ ॥ श्रीराम करतोयाको पार करनेमें प्राय-श्रित सुनकर वहसि लौट पड़े । योंकि शास्त्रोंमें लिखा है—कर्मनाशा नदीके स्पश्चात्करते, करतोयाके लांघनेसे, गंडकीमें हाथोंद्वारा तेरनेसे तथा घमंका अपने मुखसे बखान करनेसे प्राणीका किया हुवा घमं नष्ट हो जाता है । वहसि वे देवप्रथाग गये । पश्चात् अलकनन्दाके किनारे-किनारे चलकर मनुष्योंको दर्शनमात्रसे मुक्ति देनेवाले नरनारायणका दर्शन किया । श्रीरामने बद्रिकाश्रमके बाद केदारभूरका दर्शन किया ॥ ३-५ ॥ इसके अनन्तर राम अनेक घातुओंसे मंडित हिमाद्रिपर गये, जहाँ कि अनेक देवता तथा गन्धर्व निवास करते हैं । बादमें महापथ गये और वहसि उस सर्वसिद्ध मानसरोवरपर पधारे ॥ ६ ॥ जहसि कि पापोंको नष्ट करनेवाली गंगा तथा सरयु निकली हैं । उस मानसरोवरमें अनेक सुवर्णकमल खिले हुए थे । वहाँ मोती चुगनेमें तत्तर, लाल नेत्र, लाल पग तथा लाल मुखवाले हजारों राजहंस निवास करते थे । उस प्रदेशकी चित्र-विचित्र भूमिपर अप्सराओं तथा स्त्रियोंके सहित अनेक देव-गंधर्व और किन्नरोंके समूह श्रीद्वारा कर रहे थे । उस मानसरोवरमें स्नान करके श्रीराम चिन्दुसरोवर गये ॥ ७-९ ॥ वहाँपर स्नान करके तथा अनेक दान देकर हिमालयपर गये । वहाँ मेरुपर्वतपर स्थित ब्रह्मसभाके समान एक दूसरी मनोहर ब्रह्मसभा देखी ॥ १० ॥ वहाँ राम सीता तथा अन्य सब लोगोंके साथ विमानपरसे उत्तर पड़े और इन्द्रादिकोंको साथ लेकर प्रणाम करते हुए चतुर्मुख ब्रह्माका आलिङ्गन किया । ब्रह्मा सहित अन्य सब देवताओंकी रामने विस्तारसे पूजा की । पश्चात् ब्रह्माने भी श्रीरामका विधिपूर्वक पूजन किया और उन्हें सादर कामधेनु समर्पित की ॥ ११ ॥ १२ ॥ बादमें रघुनन्दन सब देवताओं सहित ब्रह्माको तथा उस कामधेनुको विमानपर चढ़ाकर कैलास पर्वतपर पधारे ॥ १३ ॥ कैलासपर श्रीरामको आये सुनकर गिरिजाके पति शिवजी पार्वतीके साथ नन्दीश्वरपर सवार होकर रामचन्द्रको लेने आये ॥ १४ ॥ राम शिवजीको आते देखकर पुष्पकपरसे नीचे उत्तर गये और शिवजीको प्रणाम किया । शिवजीने रामका आलिङ्गन किया । पार्वतीने भी सीताका आलिङ्गन करके दिव्य चन्दन आदिसे पूजा की । तदनन्तर प्रसन्न होकर उमादेवीने सीता महारानीको सूर्यके समान दीप्तिवाले अनेक आभूषण और वस्त्र दिये ।

ददौ जनकनदिन्ये पार्वती तोषपूरिता । ततः शंभुस्तदा प्राह राघव पूज्य वैभवैः ॥१८॥  
 राम त्वज्ञाभिकमले ब्रह्माऽयं चतुराननः । ततो जातो विधेश्वाहं रोदनादुद्रसंज्ञकः ॥१९॥  
 पौत्रस्तव रघुश्रेष्ठ तवज्ञापरिपालकः । संहारः क्रियते राम आज्ञया तव सादरात् ॥२०॥  
 यदा मया तु प्रलये तदा पापं कव ते गतम् । यदशास्यवधाङ्गीतस्तीर्थयात्रां करोषि हि ॥२१॥  
 क्रीडेयं तव राजेन्द्र सुखं क्रीडस्व सीतया । क्रियते लोकशिक्षार्थं जानामि तव चेष्टिम् ॥२२॥  
 एवं नानाविधिस्तस्य चारित्यरीढ्य राघवम् । ददौ सिंहासनं छत्रं चामरे मंचकोत्तमम् ॥२३॥  
 पानपात्रं भोजनस्य पात्रं हैमं मनोरमम् । ककणे कुण्डले बाहुभूषणे मुकुटोत्तमम् ॥२४॥  
 रामं प्रस्थापयामास बद्ध्वा चिन्तामणि हृदि । हृदि चिन्तामणि दृष्टा राघवस्य विदेहजा ॥२५॥  
 प्राहातिलजिता रामं गौमें चिन्तामणिस्तव । तथेति राघवोऽप्युक्त्वा विमानेन जनैः सह ॥२६॥  
 यथौ नत्वा शंकरं द्वि कृत्वा यज्ञार्थद्वचनाम् । आकारयित्वाऽथ विधिं मासेकेनाध्वराय हि ॥२७॥  
 भागीरथ्यास्तटेनैव हरिद्वारं यथौ जवात् । कुरुक्षेत्रं विगाहाथ इन्द्रप्रस्थं ततो यथौ ॥२८॥  
 दृष्टा मधुवनं रम्यं यथौ वृन्दावनं ततः । गोकुलं वीक्ष्य रामस्तु गोवर्धनमगाञ्छनैः ॥२९॥  
 गत्वाऽथावंतिकां पुण्यां श्शिप्रातीरविराजिताम् । महाकालं पुरस्कृत्य पश्यस्तीर्थान्यनेकशः ॥३०॥  
 दृष्टा गजाह्वयं क्षेत्रं सागरं कृपमोक्ष्य च । यथौ स नैमिषारण्ये गोमत्यां स विगाह्य च ॥३१॥  
 सूतं पौराणिकं दृष्टा शीनकादीन् प्रपूज्य च । स्नात्वा तद्व्यवैवर्तसरस्यथ रघूत्तमः ॥३२॥  
 तमसां तां विगाहाथ ददर्श नगरीं निजाम् । राममागतमाज्ञाय सुमंत्रो वेगवत्तरः ॥३३॥

दो कण्ठफूल, दो सुन्दर चूड़िएं, छोटे-छोटे धुधुक्खोंके शब्दसे युक्त करवनी, चन्द्रमाके समान काँति-याले दो सीमन्तभूषण और मणि तथा मोतियोंके हार भी दिये । पश्चात् शिवजीने भी अनेक विभवोंसे रामका पूजन करके उनसे प्रश्न किया-॥१५-१६॥ हे राम ! आपके नाभिकमलसे ये चतुरानन ब्रह्मा हुए । इन ब्रह्मासे मैं पैदा हुआ और रोदन करनेके कारण मेरा नाम रुद्र पड़ा ॥१६॥ हे रघुश्रेष्ठ ! इस प्रकार मैं आपका पोत्र हुआ । हे राम ! आपकी आज्ञाका पालन करते हुए आपके आदशके अनुसार मैं प्रलयकालमें तीनों लोकोंका संहार करता हूँ । तब क्या यह पाप आपको नहीं लगता, जो आज आप साक्षात्त्वारायण होकर भी रावणवधसे ब्रह्महत्यारूपी लोकापवादके भयसे तीर्थयात्रा करने निकले हैं ? ॥२०॥ २१॥ अथवा ठीक ही है, मैं समझ गया । हे प्रभो ! आप यह सब लोकशिक्षाके लिये क्रीडामात्र कर रहे हैं । यदि ऐसा है तो आप भले ही सीताके सहित क्रीड़ा करें । लोकमर्यादाको स्थापित करनेके अतिरिक्त और कुछ भी आपकी क्रीड़ाका प्रयोजन नहीं है ॥२२॥ इस प्रकार अनेक रामचरित्रोंसे श्रीरामकी स्तुति करनेके बाद शिवजीने उन्हें सिंहासन, एक छत्र, दो चमर, एक उत्तम पलंग, पानका डिब्बा, भोजन करनेके लिए सुन्दर सानेका थाल, ककण, कुण्डल, कड़े और मुकुट दिये ॥२३॥ २४॥ तदनन्तर रामके गलेमें चिन्तामणि बांधकर उन्हें विदा किया । सीताने रामके हृदयपर चिन्तामणि देखकर उनसे कुछ लज्जापूर्वक कहा-अच्छा, यह चिन्तामणि आपको रही और यह कामण्ठु मेरी । श्रीराम भी 'वहुत अच्छा' कहकर वहाँसे सब लोगोंके साथ विमानपर सवार हो शकर भगवान्को नमस्कार करके चल दिये । चलते समय वे शंकर भगवान्को भावी यज्ञकी सूचना देते गये । ब्रह्माको भी एक मासके बाद होनेवाले यज्ञमें अयोध्या आनेके लिए कहा ॥२५-२७॥ वहाँसे भागीरथीके किनारे-किनारे हरिद्वार गये । वहाँसे जीध ही कुरुक्षेत्रमें स्नान करके इन्द्रप्रस्थ ( दिल्ली ) गये ॥२८॥ वहाँसे मनोहर मथुरापुरी देखकर वृन्दावन पधारे । गाकुल देखकर वे गोवर्धन पर्वतपर गये ॥२९॥ बादमें शनैः शनैः परम पवित्र अवन्तिका ( उज्जैन ) नगरीको गये, जो कि क्षित्रा नदीके किनारे पर विद्यमान है । वहाँ महाकालेश्वरका दर्शन-पूजन करके अनेक शुभ तीर्थ देखते हुए गजाह्वय ( हस्तिनापुर ) क्षेत्र तथा सागरकूपको देखते हुए गोमतीमें स्नान किया ॥३०॥ ३१॥ फिर पौराणिक सूतका दर्शन करके

अयोध्यां भृपयामास प्रोच्चैनानाविधर्घजैः । तोरणैश्च पताकाभिः पुष्पहारैर्मनोरमैः ॥३४॥  
 शोधयित्वा राजामार्गान् सेचयित्वा तु चंदनः । विकीर्णकुसुर्मदिव्यैर्वलिदीपैर्विराजितान् ॥३५॥  
 वारणेद्रं पुरस्कृत्य सेनया परिवेष्टिः । प्रत्युज्जगाम राजेन्द्रं पुष्पकस्थं त्वरान्वितः ॥३६॥  
 दण्डवत्प्रणिपत्याथ दत्त्वा चोपायनानि तत् । आलिंगितो राघवेण मेने स कृतकृत्यताम् ॥३७॥  
 ततो वाद्यनिनादैश्च नर्तनैर्वारयोषिताम् । वैद्योषैद्विजानां च रामतीर्थं ययौ शनैः ॥३८॥  
 स्नात्वा तत्सरयूतोये यत्र तीर्थं सुपृण्यदम् । स्वयमेव कृतं पूर्वं नित्यकर्मादिमादरात् ॥३९॥  
 वसिष्ठोक्तविधानेन कृत्वा चैकम्बुपोषणम् । दधिश्रादृं विधायाथ दत्त्वा दानान्वयनेकशः ॥४०॥  
 त्रुतीये दिवसे रामो विमानेन विहायसा । पुर्या विलंघ्य प्राकरान् हेमरत्नविनिर्मितान् ॥४१॥  
 अयोध्यां शोभितां रम्यां गोपुराङ्गालमंडिताम् । वीथीहड्समायुक्तां चतुष्पथविराजिताम् ॥४२॥  
 पश्यन् स्वीर्यं राजसभाद्वारं प्राप्य रघूतमः । यानं भूमंडलं प्राप्य सुखमासीत्स्थरं तदा ॥४३॥  
 ततः सुमंत्रपत्नीभिर्दध्योदनविनिर्मिताः । वलयः कांस्यपात्रस्था जलतैलघटास्तथा ॥४४॥  
 सीताराघवयोदेहादुत्तार्य शृतशस्तदा । नीत्वा त्यक्त्वा विदूरे तु स्नात्वा रामगृहं ययुः ॥४५॥  
 ततो रामो विमानाङ्गादवरुद्धं स चंधुभिः । नागरैस्तेनृपतिभिः सभायां संविदेश ह ॥४६॥  
 तस्थौ सिंहासने रामश्चिंतामणिविराजितः । तस्युर्नृपाः सभायां श्रीराघवेणातिमानिताः ॥४७॥  
 सीताऽपि निजगेहं सा विचित्ररत्ननिर्मितम् । कामधेनुं पुरस्कृत्य प्रविवेशातिहर्षिता ॥४८॥  
 ततो रामः कामधेनुसंभृतैतपाचितैः । परमान्नैः पद्मसंश्च भोजयामास भूसुरान् ॥४९॥

शौनकादि कृष्णियोंका पूजन और ब्रह्मवैवर्तं नामके सरोवरमें स्नान किया ॥३२॥ तमसा नदीमें अवगाहन करके राम अपनी नगरीको चल पड़े । उधर श्रीरामको आते सुनकर सुमंत्रने झटपट अनेक प्रकारकी बड़ी-बड़ी पताकाओं तथा छजाओंसे अयोध्या नगरीको सजवा दिया । अनेक तोरण बैधवा दिये ॥३३॥३४॥ राजमार्गोंकी साफ कराकर चन्दनके जलसे छिड़काव करा दिया । उनपर टिक्क और नाना रंगके फूल बिछवा दिये । जगह-जगह चौराहोंपर दीपक तथा पूजाकी सामग्री रखवा दी ॥३५॥ पश्चात् सुसज्जित वारणेन्द्र (हाथों) को आगे करके सेनासहित स्वयं पुष्पकस्थित राजा रामकी अगवानी करने गये ॥३६॥ उन्होंने उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके अनेक उपायन दिये । बादमें मंत्री सुमंत्र रामसे आलिंगित होकर अपने आपको कृतकृत्य समझने लगे ॥३७॥ तदनन्तर बाजे-गाजे, वारांगनाओंके नृत्य तथा न्नाहुणोंके वेदधोषके साथ राम धीरे-धीरे रामतीर्थपर गये ॥३८॥ वहाँ जाकर उन्होंने सरयुके जलमें स्नान किया । वह बड़ा पवित्र तथा उत्तम तीर्थ स्वयं रामके हो नित्यकर्मके लिये निर्मित हुआ था ॥३९॥ वहाँ उन्होंने वसिष्ठजीके कथनानुसार विधियत् एक उपवास किया, दधिश्रादृं किया तथा अनेक दान दिये ॥४०॥ तीसरे दिन श्रीराम विमानके द्वारा आकाशमार्गसे नगरीके सुवर्णनिर्मित प्राकारोंको लौधकर पुरद्वार तथा सुन्दर अटारियोंसे सुशोभित मनोहारणी अयोध्यामें पधारे । जो गलियों, सड़कों, बाजारों तथा चौराहोंसे बड़ी ही भली लग रही थी ॥४१॥४२॥ बहुत दिनों बाद आज उन्हें अपनी राजसभाके द्वारका दर्शन प्राप्त हुआ । वहाँ आकर वे यानपरसे उत्तर पड़े । विमान भी भूतलपर उत्तरकर सुखपूर्वक खड़ा हो गया ॥४३॥ तब सुमंत्रकी स्त्रियें दक्षि-ओदन-से युक्त काँसिके पात्रमें रखली हुई बलिएं तथा जल-तेलसे पूर्ण सैकड़ों घड़े सीता तथा रामके देहपरसे उत्तार तथा दूर ले जाकर छोड़ आयीं और स्नान करके रामके भवनमें गयीं ॥४४॥४५॥ श्रीराम भी विमानपरसे उत्तरनेके बाद नागरिकों तथा अन्य राजाओंके साथ सभाभवनमें पधारे ॥४६॥ चिन्तामणिसे सुशोभित हृदयवाले राम सिंहासनपर जा विराजे तथा उनसे सम्मानित होकर अन्य राजे भी यथास्थान बैठ गये ॥४७॥ महारानी सीता भी कामधेनुको लेकर प्रसन्नतापूर्वक चित्र-विचित्र रत्नोंसे निर्मित अपने महलमें शयीं ॥४८॥ पश्चात् श्रीरामने कामधेनुसे प्राप्त धृतसे निर्मित षड्समय उत्तम पकवानों द्वारा

अचांडालांस्तर्पयित्वा स्वयं कृत्वाऽशनं तदा । निद्रार्थं नृपतीन् याने स्थलमाज्ञापयत्तदा ॥५०॥  
पंचरात्रं नृपात् प्रीत्या स्थापयित्वा स्वसञ्चिधौ । वस्त्रालंकारतुरगैस्तोषयित्वा सविस्तरम् ॥५१॥  
तान् प्रोवाच रमानाथः प्रबद्धकरसंपुटान् । मम यज्ञांगतुरगै दृष्टा तत्पृष्ठगैः पुनः ॥५२॥  
आगन्तव्यं जानपदैः स्वसैन्यैर्नार्गरैः सह । इत्याज्ञां रघुवीरस्य द्यंगीकृत्य नृपेत्तमाः ॥  
ययुः स्वं स्वं पुरं देशं स्वबलेः परिवेष्टिताः ॥५३॥

सुग्रीवाद्यान्वानरांश परिवारसमन्वितान् । आज्ञापयित्वा सद्गानि स्थापयामास स्वांतिके ॥५४॥  
वाजिमेधानन्तरं हि प्रेषयिष्याम्यहं त्विति । ततो दुंदुभिनिवेषिं स्वपुर्यां घोषयत्तदा ॥५५॥  
अद्यारम्य जनैः सर्वेऽयोध्यानगरीस्थितैः । यैः कैश्चिदत्र पथिकर्मन्बपाकैर्न भुज्यताम् ॥५६॥  
यावत्करोम्यहं भूम्यां राज्यं सीतासमन्वितः । निजगार्हस्थ्यमालंव्य ये वर्तन्ते नरोत्तमाः ॥५७॥  
ते कृवन्तु सुखं पाकं स्वस्वगेहेषु भक्तिः । निर्बन्धो मम न ज्ञेयो वर्तितव्यं यथासुखम् ॥५८॥  
इत्याज्ञाप्य जनान् रामः सुखं तस्थौ स सीतया । अयोध्यायां तु सर्वत्र वेदघोषो गृहे गृहे ॥५९॥  
मंगलानि समुत्साहा नर्तनं वारयोषिताम् । वभूतुश्च पुराणानि कीर्तनानि हरेः कथाः ॥६०॥  
एवमासीत्सुसंतुष्टा साकेतनगरी शुभा । एवं प्रोक्तं मया शिष्य यात्राकाण्डमनुत्तमम् ॥६१॥  
ये श्रृण्वन्ति नरा भक्तया तेषां यात्राफलं भवेत् । यात्राधनार्जनोद्योगे यात्राकाण्डमिदं वरम् ॥६२॥  
पठित्वा ये तु गच्छन्ति सुखेनायांति ते गृहम् । ब्रह्महत्यादिपापानि कृतानि भानवैः सकृत् ॥६३॥  
यात्राकाण्डमिदं जप्त्वा शुद्धिस्तेभ्यो भविष्यति । सर्वतीर्थाविगाहैश्च यत्फलं परिकीर्तितम् ॥६४॥  
यात्राकाण्डमिदं श्रुत्वा तत्फलं प्रतिपद्यते । धनार्थी धनमाग्नोति कामी कामानवाप्नुयात् ॥६५॥

द्राघ्नोंसे लेकर चाण्डाल तकको यथोचित भोजन कराके तृप्त किया । बादमें राजाओंके साथ स्वयं भोजन करके राजाओंको शयनार्थं विमानमें तथा अन्यान्य महलोंमें जानेकी आज्ञा दी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस प्रकार पांच दिन तक उन लोगोंको बड़े ही प्रेम तथा सत्कारसे रामने अपने भवनमें रखा । बादमें वस्त्र, अलंकार तथा बश्व आदि दे और उन्हें भलीभाँति प्रसन्न करके अपने-अपने स्थानको जानेकी आज्ञा दी । जब वे हाथ जोड़कर जानेके लिए सम्मुख खड़े हुए, तब रमानाथ रामने फिरसे उन्हें यज्ञके सुअवसरपर यज्ञके अंगभूत अश्वके पीछे-पीछे चलनेके लिए सर्वेन्य और प्रजा सहित आनेके लिये कहा । वे राजे इस आज्ञाको स्वीकार करके अपनी-अपनी सेनाके साथ अपने-अपने देश तथा नगरकी ओर चल दिये । परिवार सहित सुग्रीव आदि वानरोंको रहनेके बास्ते बहुतसे भवन देकर अपने यहाँ रखा और कहा कि अश्वमेष्य यज्ञके पश्चात् तुम लोगोंको विदा करेंगे । बादमें श्रीरामने अपने नगरमें छिठोरा पिटवाकर कहुला दिया कि आजसे लेकर मेरे नगरवासियों तथा अन्य यात्री लोगोंको अलग भोजन बनाकर नहीं साना चाहिये । सब लोग तबतक हमारे भोजनालयमें भोजन करें, जब तक कि मैं भूमिपर राज्य करूँ । ही, जो गृहस्थाश्रमी हों, वे भले ही अपने-अपने घरोंमें भक्तिपूर्वक सुखसे भोजन बनाएँ । उनके लिये मेरा आश्रह नहीं है ॥ ५१-५८ ॥ यह आज्ञा देकर राम सीताके साथ सुख-पूर्वक रहने लगे । तबसे अयोध्या नगरीमें घर-घर वेदध्वनि होने लगी ॥ ५९ ॥ मंगलगान होने लगे, सोत्साह वारांगनाओंका नृत्य होने लगा तथा पुराणपाठ और हरिकथाएँ होने लगीं ॥ ६० ॥ इस प्रकार वह समस्त पुरो आनन्दित हो उठी । हे शिष्य ! मैंने तुमको भली भाँति उत्तम यात्राकाण्ड सुनाया ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस यात्राकाण्डको भक्तिपूर्वक श्रवण करेगा, उसे समस्त यात्रायें करनेका फल प्राप्त होगा । यदि मनुष्य यात्रामें जानेके समय अवश्य धन कमानेके लिये जाते समय इसको सुनकर जाय तो वह सुखपूर्वक और कृतार्थ होकर लौटेगा । यदि मनुष्यने ब्रह्महत्यादि जैसे धोर पाप किये हों तो वे भी इसको सुननेसे दूर हो जाते हैं और प्राणी शुद्ध हो जाता है । सब तीर्थोंकी यात्रा करनेसे जो फल होता है, वह इस यात्राकाण्डको पढ़ने तथा सुननेसे प्राप्त हो जाता है । धनकी इच्छावालेको धन और कामकी इच्छावालेको काम मिलता है ॥ ६२-६५ ॥ इस

पापी पूतो भवेत्सद्यो यत्राकाण्डश्रवादिना । यः कश्चिन्प्रातरुत्थाय कुतशौचविधिर्नरः ॥६६॥  
तीर्थानां च वरं काण्डमिदं पुण्यं पठिष्यति । तस्य रामश्च संतुष्टः पूरयिष्यति वाञ्छितम् ॥६७॥  
सर्वतीर्थावगाहस्य फलं तस्य भवेद्भ्रुवम् । यानि कानि च पापानि जन्मातरकुतानि च ॥६८॥  
तानि सर्वाणि न इयन्ति यात्राकाण्डश्रवादिना ॥६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतगंतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे  
रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

यात्राकांडे च सर्गां वै नव प्रोक्ता मनोषिभिः ।  
पंचत्रिशोत्तराः सप्तशतश्लोका भवापहाः ॥ १ ॥

कांडको सुननेसे पापी पुरुष भी पवित्र हो जाता है । जो प्राणी प्रातःकाल उठ तथा स्नानादि करके इस पवित्र  
यात्राकांडको पढ़ेगा तो श्रीरामकी अनुकूल्यासे उसके सब मनोरथ पूरे होंगे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उसे सब सीधोंकी  
यात्राका फल मिलेगा । जन्म-जन्मान्तरके जो कुछ पाप होंगे, वे सब इस यात्राकांडको सुननेसे ब्रवश्व नष्ट हो  
जायेंगे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतगंतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकांडे पं० राम-  
तेजपांडेयकृत 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां रामोत्तरयात्रा-नगरप्रदेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

इस यात्राकांडमें नौ सर्ग और भवभयको दूर करनेवाले ७३५ सात सौ पेंतीस श्लोक कहे गये हैं ॥ १ ॥

\* इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डं सनातनम् \*

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु



श्रीरामचन्द्रो विजयतेराम्

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽऽद्वया भाषाटीक्याऽऽटीकितम्

## यागकाण्डम्

### प्रथमः सर्गः

( अश्वमेध यज्ञके लिए सामग्री एकत्र करनेका निर्देश )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः सभामध्ये एकदा गुरुमन्त्रीत । कुम्भोदरमुनेवाङ्मयात्तीर्थयात्रा मया कृता ॥ १ ॥  
इदानीं तस्य वाक्येन वाजिमेघ करोम्यहम् । यज्ञोपकारणानि त्वं लक्ष्मणाय बदस्व हि ॥ २ ॥  
सुमुहूर्ते शुभे लग्ने श्यामकणांप्रिपुच्छकः । तुरङ्गो दिव्यवस्थार्थम् प्रियित्वा विमुच्यताम् ॥ ३ ॥  
पृथ्वीप्रदक्षिणार्थं हि तत्पृष्ठेऽयुतसंख्यया । सेनया सह शत्रुघ्नः सुमंत्रेण सहाचिरात् ॥ ४ ॥  
तद्रामवचनं श्रुत्वा वसिष्ठो मुनिसत्तमः । ज्योतिविंत्सहितो दृष्टा सुमुहूर्ते शुभोदयम् ॥ ५ ॥  
आज्ञापयत्स सौमित्रिं सभाया राजसन्निधी । सौमित्रेऽद्यदिनाज्ञेयो मुहूर्तः समेऽहनि ॥ ६ ॥  
दीक्षार्थं रामचन्द्रस्य वाजिमेधाख्यकर्मणि । रामतीर्थे यज्ञभूमिः शोधनीया हलादिभिः ॥ ७ ॥  
सुवर्णनिर्मितैर्दिव्यैत्राक्षणैः सह सत्त्वरम् । दशक्रोशमिताऽयोध्यावहिः सर्वत्र लक्ष्मण ॥ ८ ॥  
समा कर्करहीना तु लिप्ता चन्दनजातिभिः । मंडपश्च विधातव्यः सर्वत्राख्यापितः शुभः ॥ ९ ॥

श्रीरामदासने कहा इसके अनन्तर एक दिन सभामें रामचन्द्रजी गुह वसिष्ठसे कहने लगे—हे गुरो ! कुम्भोदर ऋषिके कथनानुसार मैंने तीर्थयात्रा की । अब उन्हींकी बातसे मैं अश्वमेध यज्ञ भी करना चाहता हूँ । यज्ञकी जो-जो आवश्यक वस्तुएँ हों, कृपया आप लक्ष्मणको बतला दीजिए ॥ १ ॥ २ ॥ किसी अच्छे मुहूर्त और शुभ लग्नमें श्याम रङ्गवाले जिसके कान, पैर और पूँछ हों, ऐसे घोड़ेको सुन्दर बस्त्रों और आनूषणोंसे सुसज्जित करके पृथ्वीप्रदक्षिणाके लिए छोड़ा जाय ॥ ३ ॥ तदनन्तर उस यज्ञीय घोड़ेकी रक्षा करनेके लिए दस हजार सेनाके साथ सुमन्त और शत्रुघ्न प्रस्थान करें ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजीकी इन बातोंको सुनकर वसिष्ठजीने ज्योतिवियोंके साथ अच्छे लग्न तथा अच्छे नक्षत्रसे संयुक्त एक बहिया मुहूर्त देखा और सभामें हा रामचन्द्रजीके सामने लक्ष्मणजीसे बोले—हे लक्ष्मण ! रामचन्द्रके यज्ञकी दीक्षा लेनेका शुभ मुहूर्त आजसे ठं के सातवें दिन है ॥ ५ ॥ ६ ॥ सबसे पहला काम यह है कि इस अश्वमेध यज्ञके लिए रामतीर्थका भूमि सुदर्शके बने हुए हल्लों द्वारा ब्राह्मणोंके साथ जोतकर शुद्ध की जाय । अयोध्याके चारों ओर दस कांस तककी जमीन परतालकर बराबर कर दी जाय और ऐसी साफ की जाय कि उसमें कहीं कुछ भी कङ्कङ्क-पत्थर न रहने

जम्बवाम्रादिनगानां च शास्त्राभिः कुसुमैरपि । पल्लवैश्व विचित्रैश्च कदलीस्तम्भमणिडतः ॥१०॥  
 समन्ततस्तोरणानि बन्धनीयानि यत्नतः । पुष्पहाराः फलादीनां मालाश्च विविधाः शुभाः ॥११॥  
 वेद्यः सहस्रशः कार्याः सुधया चेष्टकादिभिः । करणीयं महत्कुण्डं सत्सान्निध्येन मृत्यम् ॥१२॥  
 कुण्डोपरि महत् कार्यं गोमुखं च मनोरमम् । खदिरस्य विचित्रं हि वसोर्धारार्थमृतम् ॥१३॥  
 सितरक्तासितैश्चैव नीलपीतादिभिः शुभैः । नानादृष्टदचूर्णैश्च शुप्धातुविनिर्मितैः ॥१४॥  
 ननावर्णैर्विलेख्यानि स्वस्तिकानि समन्ततः । कमलानि विचित्राणि तथा अष्टदलानि च ॥१५॥  
 शङ्खचक्रगदापञ्चवल्लयश्च सहस्रशः । कुसुमानि विकीर्याणि यज्ञभूम्यां समन्ततः ॥१६॥  
 चतुर्विंश्चतुर्भुमाः कार्या यज्ञस्तम्भा महोच्छ्रुताः । विनिर्मिताः सुवर्णेन मुक्ताहारविगुणकिताः ॥१७॥  
 त्रितयं सर्वतोभद्रं कुण्डमध्येऽश्वदैवतम् । लेखनीयं तथा कुण्ड नानावर्णैर्विचित्रितम् ॥१८॥  
 द्रुतं कार्याणि पात्राणि यज्ञार्थं मम पश्यतः । हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथाऽध्वरे ॥१९॥  
 आसनानि ऋषीणां च निद्रार्थं च सहस्रशः । वासोगेहानि कार्याणि त्रृणैः पर्णैश्च खर्पैः ॥२०॥  
 पाकशाला विधातव्या कार्या शालाऽशनस्य च । ऋषिशाला विधातव्याः स्त्रीशालाश्च शुभावहाः ॥२१॥  
 यज्ञोपकरणानां च शाला परमसुन्दरी । सभाः कार्या नृपाणां च वरवस्त्रैर्विचित्रिताः ॥२२॥  
 आसनार्थं महार्हाणि वस्त्राणि च समन्ततः । आस्तीर्याणि तथा राजपृष्ठभागाश्रयाणि च ॥२३॥  
 पक्षिपिच्छैः सुकार्पासभेदैः सम्पूरितानि हि । कश्चिपूषबर्हणानि विचित्राणि महान्ति च ॥२४॥  
 स्थापनीयानि सदसि महार्हाणि तु लक्षण । स्थापनीयानि पानार्थं पात्राणि विविधानि च ॥२५॥  
 नानारसैः पूरितानि तथा पक्वफलादिभिः । नानासुगन्धद्रव्यैश्च रागैर्नानाविधैरपि ॥२६॥

पायें । फिर केसर-चन्दनसे लीपकर वह भूमि पवित्र करनी होगी । उस भूमिपर ऐसे मण्डप बनाये जाये, जो सुन्दर हों और कहींसे कटे-फटे न हों ॥ ७-९ ॥ जामुन-आम आदि वृक्षोंकी शाखाओं तथा फूलों-पतोंसे खूब अच्छी तरह सजाकर केलेके खम्भोंके फाटक बनाये जायें और मण्डपके चारों ओर फूलों और फलोंकी मालाएं लटकाई जायें ॥ १० ॥ ११ ॥ मण्डपके भीतर इंट और चूनेकी पक्की जोड़ाई करके एक हजार वेदियाँ बनवायी जायें । वहाँ ही मिट्टीका एक बड़ा भारी कुण्ड बनाया जाय । लेकिन वह मैं अपने सामने बनवाऊंगा । कुण्डके ऊपर खौरकी लकड़ीका एक सुन्दर गोमुख बनाया जाय, जो वसोर्धाराके काममें आयेगा । सफेद, लाल, काले, नीले और पीले पत्थरोंका चूर्ण तथा उपधातु ( गेहू-गंधक आदि ) के चूर्णोंसे जगह-जगह रङ्ग-बिरङ्गे स्वस्तिक लिखे जायें और अष्टदल कमल बनाये जायें ॥ १२-१५ ॥ जहाँ-तहाँ शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा फूल-पत्तियोंकी चित्रकारी की जाय ॥ १६ ॥ सोनेके चीबीस यज्ञस्तम्भ बनाये जायें, जो खूब ऊँचे हों और उनपर मोती-माणिक आदिका काम किया गया हो । कुण्डके पास अश्वदेवताके निमित्त सर्वतोभद्र बनाया जाय और वेदीके चारों ओर अच्छे-अच्छे चित्र बनाये जायें । यज्ञके लिए जितने पात्रोंकी आवश्यकता होगी, वे सब मेरे सामने बनाये जायेंगे । प्रायः वे सब पात्र सोनेके होंगे, जैसे वरुणदेवके यज्ञमें थे ॥ १७-१९ ॥ ऋषियोंको बैठने और सोनेके लिए पक्के, खपड़ोंके अथवा छप्परोंके हजार घर तैयार करने होंगे ॥ २० ॥ मण्डपकी एक ओर पाकशाला ( रसोईघर ) रहेगी, दूसरी ओर अशनशाला ( भोजनभवन ), तीसरी ओर ऋषि-शाला ( मुनियोंके ठहरनेकी जगह ) और एक ओर सुन्दर स्त्रीशाला ( स्त्रियोंके रहनेकी जगह ) बनेगी ॥ २१ ॥ एक बड़ा-सा और सुन्दर मकान यज्ञकी सब सामग्रियें रखनेके लिए बनेगा । अच्छे-अच्छे कपड़ोंसे सजाकर राजाओंके लिए कई महफिलें बनायी जायेंगी । बैठनेके लिए बड़िया-बड़िया कालीन-गलीचे आदि मंगाकर बिछाये जायेंगे । पद्मियोंके पखनों या रुद्धिसे भरी कितनी ही सुन्दर तकियाँ राजाओंको लगानेके लिए रखखी जायेंगी । सबको जल पीनेके लिए विविध प्रकारके पात्र रखले जायेंगे ॥ २२-२४ ॥ सभाभवनमें जल पीनेके लिए सुन्दर तथा बहुमूल्य बत्तन रखले जायेंगे । कितने ही पक्के हुए फलोंके शरबतसे भरे

मर्यैविचित्रैर्मधुरैस्तथा  
स्थापनीयाश्वन्दनैश्च      मादकवस्तुभिः । नानासुगंधतैलैश्च काचकुम्भाः सहस्रशः ॥२७॥

स्थापनीयाश्वन्दनैश्च      सुगंधैरक्षतादिभिः । नानोपस्करयुक्तानां ताम्बूलानां सहस्रशः ॥२८॥

स्थापनीयानि पात्राणि चामराणि सहस्रशः । व्यंजनानि विचित्राणि तथादर्शा विचित्रिताः ॥२९॥

स्थापनीयाश्व क्रीडार्थं क्रीडोपकरणानि च । स्थापनीयानि सदसि नृपाणां चित्रितानि च ॥३०॥

मृत्पात्रसम्भवाः कार्याः शतशः पुष्पवाटिकाः । जलयंत्राणि कार्याणि सर्वत्र विविधानि च ॥३१॥

नानाविचित्रवर्णानां वयसां पंजराः शुभाः । हेमरत्नमौक्तिकैश्च      प्रवालैर्वसनैर्वर्णः ॥३२॥

कमनीयाश्व भूषाभिस्तोयाज्ञायैः प्रपूरिताः । वंधनीया मंडपेषु नतिंतव्योऽप्सरोगणः ॥३३॥

धूपयंतु सुधृपाश्व सुगायंतु हि गायकाः । वादनीयानि वाद्यानि वहूनि विविधानि च ॥३४॥

पूजोपकरणाद्यैश्च पात्राणि पूरितानि हि । पृथक् पृथक् सभास्वेव स्थापनीयानि लक्षणः ॥३५॥

तथा शृष्टिसभायां तु दर्भाश्व समिधस्तथा । दण्डाः कमण्डलयुताः स्थापनीयाः सहस्रशः ॥३६॥

बहिर्वासाँश्च कौपीनान् बल्कलान्यज्ञिनानि च । पूजाद्रव्याणि हव्यानि जलकुम्भाः सहस्रशः ॥३७॥

शौचार्थं मृत्तिकाः शुदा दंतकाष्ठानि पादुकाः । गैरिका मुखशुद्रश्चर्थं नानावस्तूनि कल्पय ॥३८॥

तथा नारीसभायां तु पूजापात्राण्यनेकशः । सौभाग्यद्रव्यपूर्णानि सुगंधैः पूरितान्यपि ॥३९॥

वायनानि विचित्राणि स्थापनीयानि लक्षण । कवर्यः कञ्जलानां च पात्राणि कुंकुमानि च ॥४०॥

करंडस्थानि रम्याणि भूषणान्युज्ज्वलानि च । हरिद्रादीनि वस्तूनि कंचुकयो वसनानि च ॥४१॥

स्थापनीयानि व्यजनचामरादीनि सादरम् । सुहृदां लेखनीयानि पत्राणि च समंतरः ॥४२॥

हुए बड़े-बड़े कंडाल वहाँ उपस्थित रहे । अनेक प्रकारके इत्र, गुलाबजल, केवडाजल, कस्तूरी और केसरका चन्दन सबको लगानेके लिए तैयार रखना चाहिए ॥ २५ ॥ २६ ॥ विचित्र प्रकारके स्वादिष्ट मद्य तथा अनेक मादक वस्तुएँ जुटाई जायें । बहुत किसके सुगन्धित तेलोंसे भरे हुए कौचके हजारों घड़े सदा तैयार रहे । बहुतसे वर्तनोंमें सुगन्धित चन्दन और अक्षत रखें रहें । विविध सामग्रियोंके साथ हजारों तश्तरियोंमें पानके बीड़े लगा-लगाकर रखें जायें ॥ २७ ॥ २८ ॥ हजारों चमर हाँकनेके लिए मैंगा लेने चाहियें । खानेके लिए तरह तरहके पकवान सर्वदा तैयार रहें । मुँह देखनेके लिए अच्छे-अच्छे दर्पण मैंगवा लिये जायें । खेलनेके लिए जितनी भी सामग्रियाँ हो सके, मैंगवाकर रख ली जायें । देश-विदेशके राजाओंके चित्र मैंगवाकर सभाभवनमें चारों ओर टाँग दिये जायें ॥ २९ ॥ ३० ॥ बहुतसे फूलोंके गमले मैंगवाकर वहाँ-पर रखें जायें । थोड़ी-थोड़ी दूरपर हजारों फोहारे बनाये जायें, जिनसे सदा जलकी बारा बहती रहे । लाल, पोले, हरे तथा बैंगनी आदि रङ्गोंवाले पक्षियोंके पिजड़े लाकर मण्डपमें चारों ओर लटका दिये जायें और हीरा, मोती, पत्ता और मैंगा आदिके जड़ाऊ वस्त्रों द्वारा वे सजाये जायें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ पिजड़ोंमें उन पक्षियोंके भोजन करनेकी सब सामग्री भरी रहे । वहाँपर नाचनेके लिए सुन्दर-सुन्दर वेश्यायें बुलायी जायें । धूप देनेवाले लोग सुगन्धित धूप देनेके लिए नियुक्त किये जायें । गानेवाले गाना गायें क्षौर बजानेवाले विविध प्रकारके बाजे बजायें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सब राजसभाओंमें अलग-अलग पूजन करनेको सामग्रियोंसे पूर्ण बर्तन रखें रहें । शृष्टिसभाओंके लिए कुशा, दण्ड, कमण्डलु तथा समिधाका विशेष प्रबन्ध रहे । ऊपर पहननेके लिये वस्त्र और नीचे पहननेके लिये कौपीन, बल्कल वस्त्र, मृगचर्म, पूजनकी सब सामग्रियाँ, हवन करनेकी सब वस्तुएँ, जलसे भरे हुए हजारों घड़े आदि वहाँपर ला-लाकर रखें जायें । हाथ पवित्र करनेके लिए शुद्ध मृत्तिका, दातौन, खड़ाऊ तथा मुखशुद्धिके लिये बहुतसे मंजन आदि वहाँपर रखें रहें ॥ ३५-३६ ॥ इसी तरह नारीसभामें भी पूजाके बहुतसे पात्र रहने चाहियें । सोहागके लिये शुभसूचक रोली-सेंदुर आदि सुगन्धित वस्तुयें भी रखली रहें । सुन्दर दर्पण लाकर रखें जायें । कागजके कुमकुमभरे बर्तन आदि भी वहाँ उपस्थित रहें ॥ ३९ ॥ ४० ॥ बहुत-सी वाँसकी बती हुई सन्दूकोंमें सुन्दर और चमचमाते हुए आभूषण रखें रहें । हल्दी-रोली आदि चीजें और कंचुकी आदि वस्त्र लाकर रखें जायें । पंखे और चमरादिक

गममुद्रांकितान्यथा तथा दूता महाजवाः । जनकाय प्रेषणीयाः कैकेयन् उपसन्निधौ ॥४३॥  
 गम्भ्यायाः सुभित्रायाः पितरं प्रति लक्ष्मण । श्यामांश्रिः इयामकर्णश्च इयामपुच्छः सितः शुभः ४४॥  
 महार्हभरणेवंस्त्रैदिव्यवीर्यमनेन च । शोभनीयश्चामराद्यमुक्ताहारं मनोरमैः । ४५॥  
 हर्माभिः शुखलाभित्र वेणीवंधविभृषणैः । तस्य भाले हेमपत्रे लेखनोयं स्फुटाक्षरैः । ४६॥  
 कोमलेन्द्रस्य रामस्य यज्ञांगतुर्गो द्युयम् । ज्ञेयः सवैनृपैमुक्तः कर्तुं भूम्याः प्रदक्षिणाम् ॥४७॥  
 यस्यामिन यारं तेनाश्चो वंधनीयोऽयमुत्तमः । नोचेत् कोशांश्च निजान् पुरस्कृत्य वलैः सह ॥४८॥  
 स्वकुदुम्बैर्नांगर्णेत्र तथा जानपदैः सह । आगंतव्यं नृपतिभिर्ज्ञांगाश्चानुवर्तिभिः ॥४९॥  
 यज्ञभूमिमयोऽध्यायां युद्धैर्जित्वा महोद्धतान् । एवं पत्रं वंधयित्वा मुक्तामणिचित्रितैः ॥५०॥  
 अवनंस्तेः शोभयित्वा सिद्धः कार्यश्च मंडपे । सिद्धः कार्यः स शत्रुघ्नः सैन्येन परिवेष्टितः ॥५१॥  
 रथाहृष्टोऽश्चरथार्थं सुमन्त्रेण समन्वितः । नानापुण्यनदीनां च जलकुंभान् सहस्रशः ॥५२॥  
 नानादेवान्मृदश्चापि शत्रुघ्नेनानयस्य द्वि । शोभनीया पुरी रम्या पताकाध्वजतोरणैः ॥५३॥  
 देवालये मुधा देया तथा प्रासादमस्तके । देवालयाभ्यन्तरे द्वयं चित्रशाला मनोरमाः ॥५४॥  
 लेखनीया विधानव्या रत्नदीपाः सदैव हि । पूजोपकरणादीनि प्रतिदेवालयेष्वपि ॥५५॥  
 अथापयस्व ममस्तानि वाद्यान्याज्ञापयस्व भोः । राजमार्गाः शोधनीयाः सेचनीयाश्च चदनैः ॥५६॥  
 सांधगार्जिपु सर्वत्र चित्राणि विविधानि च । लेखनीयानि रम्याणि मुक्ताहाराः समंततः ॥५७॥  
 प्रवालमणिवैदूर्यकाश्मीरस्फटिकादिभिः । नानाविधाश्च कुसुमैर्हरिः पक्षफलादिभिः ॥५८॥  
 वधनीयाश्च सर्वत्र जालरंध्रेविशेषतः । एवं यद्यन्मया प्रोक्तं तत्कुरुत्वाविचारतः ॥५९॥

लाकर रक्षे जायें और अपने मित्रोंकी आयी हुई चिट्ठियाँ त्रमणः बहाँ रक्खी रहें ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ आज ही रामचन्द्रजीका मुहर लगा हुआ पत्र लेकर दूत मिथिलेश जनक, कोसल तथा केक्य आदि राजाओंके पास जायें । तदनन्तर व्याम पुच्छ तथा श्याम पैरवाले घोड़ेको ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वह मूल्य वस्त्रों और आभूषणोंसे सजाया जाय । उसे सोनेकी जंजीरे और वेणीवंध आदि गहने पहनाए जायें । एक सूचणापत्रपर ये बातें साफ अक्षरोंमें लिखकर घोड़ेके माथेपर बाँध दिया जाय-॥ ४५ ॥ ४६ ॥ “कोसलेन्द्र महाराज रामचन्द्रका यह यज्ञाव घोड़ा भूमिकी प्रदक्षिणा करनेके लिए छोड़ा गया है । सब देश-देशान्तरके राजाओंको जात हो कि जिसमें बल हो, वह इस सुन्दर घोड़ेको बाँध ले । नहीं तो अपने देशवासियों, अपनी सेना तथा कुटुम्बियोंके साथ इस घोड़ेके पीछे-पीछे चलता हुआ हमारी यज्ञभूमि अर्थात् अयोध्यामें आकर मुझसे मिले” ॥ ४७-४९ ॥ इस आशयका पत्र लटकाया जाय । रास्तेमें जो जो उहण्ड राजे मिलें, उनसे युद्ध करकरके उन्हें परास्त किए जाय । अनेक प्रकारके झाड़-फानूस आदिसे सजा करके एक सिद्धमंडप बनाया जाय । इसके अनन्तर अपनी पूरी सेनाके साथ शत्रुघ्नजी सुमन्त्रको साथ लिये हुए घोड़ेपर सवार होकर उस यज्ञीय घोड़ेकी रक्षा करनेके किए प्रस्थान करें । उसके पश्चात् बहुत-सी पवित्र नदियोंकी मृत्तिका और हजारों घड़ोंमें जल भर-भरकर शत्रुघ्नजीके द्वारा मौंगवाया जाय ॥ ५०-५२ ॥ अयोध्यामें जितने भी देवालय हों, उन सबको चूनेसे पुतवाया जाय । सब मकानोंकी भी सफाई की जाय । देवालयोंके भीतर नाना प्रकारकी चित्रकारियाँ की जायें । हर एक देवालयमें हर रोज पूजन करनेकी सामग्रियाँ भेजी जायें ॥ ५३-५५ ॥ हे लक्ष्मणजी ! आज ही आप सब प्रकारके बाजे मौंगाकर रखनेकी आज्ञा दे दीजिए । अयोध्याके सब राजमार्ग खूब अच्छी तरह साफ किये जायें और उनपर चन्दनका छिड़काव किया जाय । राजमार्गके सब बड़े-बड़े महलोंकी दावारोंपर विविध प्रकारके चित्र बनानेकी आज्ञा दे दी जाय । जगह-जगहपर मौतियोंको मालायें लटकायी जायें ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ प्रवालमणि, वैदूर्यमणि, काश्मीर और स्फटिकादि मणियोंकी मालायें, फूलोंकी मालायें तथा पके फलोंकी मालायें हर एक मकानोंपर लटकाई जायें । इस प्रकार मैंने जो कुछ बतलाया है, उसे कर

तद्गुरोर्वचनं श्रत्वा तथेन्पुक्त्वा स लक्षणः । कारयामास तत्सर्वं गुरोर्वाक्याच्छताधिकम् । ६०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतं श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे  
यागोपकरणनिवेदनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

### द्वितीयः सर्गः

( यज्ञमें सावधानी रखनेके लिए रामका लक्षणको आदेश )

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः समीतस्तु मुहूर्ते सप्तमेऽहनि । नवनीतोद्वर्तनाद्यैः स्नात्वा कृत्वांजनादिकम् ॥ १ ॥  
तूर्यनादैद्विजानां च वेदघोषैर्विशेषतः । पौरस्त्रीणां गायनैश्च पौराणां च जयस्त्वनैः ॥ २ ॥  
आगत्य मंडपे रम्ये तस्थौ चित्रासनोपरि । ददौ कौशेयवस्त्राणि गुरुं रामस्त्वरुन्धतीम् ॥ ३ ॥  
पौरांश्च पौरपत्नीश्च मातृश्चाथ सुवायिनीः । श्वश्रूशापि द्विजान् सर्वान् जनकं सुहृदस्तथा ॥ ४ ॥  
बंधूंश्च बंधुपत्नीश्च वयस्यांश्च ततः परम् । मंत्रिणश्चाथ वीरांश्च दासदासीजनांस्तथा ॥ ५ ॥  
नटनर्तकवंद्यादीन् वारस्त्रीश्च ततः परम् । आचांडालादिकान् दस्या ततः सीतां ददौ वरम् ॥ ६ ॥  
हेमतन्तुसमुद्भूतं मुक्तामाणिकभगुफितम् । रत्नकाश्मीरनीलाद्यैर्मध्ये मध्ये विचित्रितम् ॥ ७ ॥  
मुक्ताप्रवालघोषार्थमणिभिः सर्वतो वृतम् । आदर्शविम्बसदृशं विद्युत्तेजोपमं महत् ॥ ८ ॥  
ततः स्वयं रामचन्द्रः पौत्रकौशेयमुत्तमम् । हेमतंत्वंकिंतं नानावल्लीपुष्पविचित्रितम् ॥ ९ ॥  
दधारान्यत्तत्तरीयं वासोऽलंकारमंडितः । व्यंजिताशेषगात्रश्रीमणिद्वयविराजितः ॥ १० ॥  
केयूरकुण्डलैर्मुक्ताहारैश्च कटकंर्युतः । ततो वसिष्ठवर्यस्तं मुक्तानां स्वस्तिकोपरि ॥ ११ ॥  
निवेश्य राघवः सीतामाहूय बदुकैर्निजैः । निवेश्य रामवामांगे मुनिभिः परिवेष्टिः ॥ १२ ॥  
रामेण कारयामास विघ्नेशादिप्रपूजनम् । पुण्याहादित्रयं चापि ददौ दीक्षां ततस्तयोः ॥ १३ ॥

आओ । तुम उनके विषयमें कुछ भत सोचो-विचारो । मैंने स्वयं सब सोच लिया है । इस प्रकार गुरुवरकी आज्ञा पाकर लक्षणने सिर झुकाकर स्वीकार किया और सब काम उससे भी सौगुना बढ़ा-बढ़ाकर किया, जैसा कि गुरु वसिष्ठजीने कहा था ॥ ५८-६० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे भाषाटीकायां यागोपकरणनिवेदनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदासने कहा — इसके बाद सातवें दिन सीताजीके साथ-साथ रामचन्द्रने मक्खन आदिका उबटन लगाकर स्नान किया, अंजन लगाया और तुड़ही आदि बाजों, वेदमंत्रों, नगरकी स्त्रियोंके गोतों और पुरवासियोंकी जयध्वनिके साथ ॥ १ ॥ २ ॥ आकर उस सुन्दर मंडपमें एक चित्रासनपर बैठे । तब गुरु वसिष्ठ तथा अरुन्धतीको उन्होंने सुन्दर-सुन्दर रेशमी वस्त्र दिये । इसके अनन्तर पुरवासियोंको, पुरवासिनी नारियोंको, माताओंको, बहुओंको, साधुओंको, नगरनिवासी सब विप्रोंको, मित्रोंको, वान्धवोंको, परिवारके लोगोंकों, बान्धवोंको, नारियोंको, समवयस्क मित्रोंको, मंत्रियोंको, सेनापतियोंको, संनिकोंको, दास-दासियोंको, ॥ ३-५ ॥ नटों-नर्तकोंको, बन्दोजनोंको, वेश्याओंको और चाण्डालसे लेकर ऊंच जाति तकके प्रत्येक मनुष्यको अच्छे-प्रच्छे कपड़े देकर जिसमें सुनहले तारका काम बना हुआ था, मोती-माणिक आदिके झुब्बे चारों ओर लटक रहे थे, ऐसे नीलम तथा पुखराज आदि मणियोंसे सुसज्जित एक सुन्दर वस्त्र सीताजीको दिया ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब दर्पणकी तरह चमकती हुई एवं विजलीकी तरह जिसमें तेज था और सुबणके तारका जगह-जगह बेल-बूटा बना हुआ था, ऐसे एक वस्त्रको लेकर रामचन्द्रजीने स्वयं पहिना ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऊपरसे एक उपरना धारण किया । तरह-तरहके आभूषण पहने । जब रामचन्द्रजीके कानोंमें कुण्डल झूलने लगे, मोतीकी मालाएँ गलेमें पड़ गयीं और हाथोंके सब गहने हाथोंमें पहन लिये गये । तब वसिष्ठजीने मोतियोंके चौकके ऊपर रामचन्द्रजी तथा

ध्वजारोपविधानेन स्थापयित्वा ध्वजोत्तमान् । रामेण वरयामास गुरुः पोडश ऋत्विजः ॥१४॥  
 चासपुस्त्र सजातोऽध्वर्युः सकलकर्मावद् । ब्रह्माऽभूच्च स्वयं ब्रह्मा होता गाधिसुतो खभूत् ॥१५॥  
 उद्भाताऽभूच्छउनदो गुरुर्यो जनकस्य च । यमो वभूव शमिता कश्यपाद्या मुनीश्वराः ॥१६॥  
 वृणीगा वाजिमेधे हि राघवेण महात्मना । ऋत्विजः पोडश शुभास्तयाऽन्ये सवकर्मसु ॥१७॥  
 पृथक् पृथक् संवृणीताः शतशस्ते मुनीश्वराः । कुण्डेऽग्निस्थापनं कृत्वा पात्राण्यासाद्य विस्तराद१८॥  
 इयामकर्णं जयित्वा मोचयामास भूतले । सव्यं प्रदक्षिणां कर्तुं तस्य संरक्षणाय हि ॥१९॥  
 रथारुदं सुमंत्रेण सैन्येनायुतसंखया । शत्रुघ्नं प्रेपयित्वाऽथ तूणीं तस्थौ द्विजैर्गुरुः ॥२०॥  
 यज्ञवाटे मुनिगणापूरिते सरयूटे । रामोऽपि सीतया तूणीं तस्थौ मृष्ट्वन् कथाः शुभाः ॥  
 कृष्णाजिनधरो दांतः कुशपाणिः कृतोचितः । कोटिष्ठर्यप्रतीकाशस्तस्यौ स गुरुसन्निधौ ॥२२॥  
 तदोक्तायां प्रवृत्तायां आतरः पुष्करस्त्रजः । स्नाताः सुवाससः सर्वे रेजिरे सुष्टुपलंकृताः ॥२३॥  
 तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककंत्र्यः सुवाससः । दीक्षाशालामुपाजग्मुश्चालिपा वस्तुपाण्यः ॥२४॥  
 तदा निनेदुवाद्यानि ननृतुर्वारयोपितः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायाता मुनीश्वराः ॥२५॥  
 दिने दिनेऽश्वमेधस्य वार्ता श्रुत्वा सहस्रशः । कश्यपोऽत्रिभरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥२६॥  
 मार्कण्डेयो मृकण्डश्च च्यवनो मुद्गलोऽसितः । जामदग्न्यो देवलश्च व्यासो नारायणः क्रतुः ॥२७॥  
 विभांडको नारदश्च तुम्बुरुगालिंगो मुनिः । शिवदासो भानुदासो हरिदासो महातपाः ॥२८॥  
 शिववर्मा रुद्रवर्मा शिवशर्मा मुनोश्वरः । एकशृंगश्वतुःशृङ्गः सप्तशृङ्गस्त्रिशृङ्गकः ॥२९॥  
 तिलभांडा भृगुश्चैव भार्गवो वाक्पतिस्तथा । धौम्यः कण्वश्चैकपादस्त्रिपादश्चोर्ध्ववाहुकः ॥३०॥

सीताजीको बिठलाया और अपने शिष्यों तथा कृष्णियोंके साथ-साथ सबसे पहले रामचन्द्रजीके हारा गणेश-गोरी आदिका पूजन तथा पुण्याहवाचन कराया और सीता तथा रामचन्द्रजीको यजकी दीक्षा दी । ध्वजारोपणकी जो विधि हाती है, उसके अनुसार ध्वजारोपण और रामचन्द्रजीके हारा सोलह ऋत्विजोंका वरण कराया ॥ १०-१४ ॥ सम्पूर्ण कर्मोंके ज्ञाता वसिष्ठ स्वयं अव्ययुं बने । स्वर्वं ब्रह्माजो ब्रह्मा बने और होता बने विश्वामित्रजो । शतानन्द उद्भाता बने, जो जनकजोंके गुह्ये । इसके अनन्तर कश्यपादि मुनियोंको रामचन्द्रजीने कृतिवक्त् बनाकर वरण किया ॥ १५-१७ ॥ इनके अतिरिक्त भी संकड़ों कृष्णियोंका रामचन्द्रजीने अन्यान्य कायोंको करनेके लिए वरण किया । उन सबने यथासमय कुण्डमें अग्निस्थापन करके यजके पात्रोंको अपने-अपने स्थानपर रक्खा, विधिपूर्वक श्वामकर्णं धोड़का पूजन कराया और पृथ्वीकी दक्षिणावतं परिक्रमा करनेके लिए उसे छोड़ दिया ॥ १८ ॥ १९ ॥ उसकी रक्षाके लिए सुमन्तके साथ शत्रुघ्नको भेजकर भगवान् रामचन्द्रजी अपने गुरुजनोंके पास चुपचाप जा बैठे । उस यजभूमिमें जहाँ हजारों ऋषि आकर बैठे हुए थे, रामचन्द्रजी भी सीताजीके साथ एक किनारे बैठकर शुभ कथायें सुनने लगे । उस समय रामचन्द्रजी केवल काले मृगका चमं धारण किये और हाथमें कुशा लिये हुए एक साधारण वेशमें थे । फिर भी उनमें करोड़ों सूर्योंका तेज या और वे गुरु वसिष्ठके पास बैठे थे ॥ २०-२२ ॥ यजकी दीक्षा हो जानेपर सब आता फूलकी मालायें तथा अच्छेअच्छे कपड़े पहने बहुत ही सुन्दर दीख पड़ते थे । उनकी स्त्रियाँ भा गलेमें सोनेके कण्ठे और शरीरमें सुन्दर वस्त्र पहने हैंसती-खेलती अनेक वस्तुओंका उपहार लिये हुए उसी यजशालामें आ पहुँचीं ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर बाजे बजे और वेशायें नाचने लगीं । उसी समय बहुतसे कृष्णिगण आ पहुँचे । अश्वमेध यजकी खबर पाकर हजारों महर्षिनण आ-आकर एकत्रित होते जा रहे थे । जैसे—कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, मार्कण्डेय, मृकण्ड, च्यवन, मुद्गल, असित, जामदग्न्य, देवल, व्यास, नारायण, कतु, विभांडक, नारद, तुम्बुरु, गालव, शिवदास, भानुदास, महातपस्वी हरिदास, शिववर्मा, रुद्रवर्मा, मुनोश्वर शिवशर्मा, एकशृंग, त्रिशृङ्ग, चतुःशृङ्ग, सप्तशृङ्ग ॥ २५-२६ ॥ तिलभांड,

ऊर्ध्वपादश्रो ऊर्ध्वनेत्रश्रो ऊर्ध्वस्य खिं शिरास्तथा । वृद्धं गौतमनामाऽथ पर्णादश्रद्धसज्जकः ॥३१॥  
 ऋष्यशृणो मतं गोऽथ जावालिः कुंभमंभवः । दधीचिः शौनकः सूतः सुतीक्ष्णो लोमशस्तथा ॥३२॥  
 वाल्मीकिश्चापि दुर्वासा मुनिवेदनिधिर्महान् । एते चान्ये च मुनयः खाशिष्यतनयादिभिः ॥३३॥  
 केचित्पर्णाशनाः केचिद्वायुभक्षास्तथाऽपरे । कुशाग्रजलपानाश्र केचित्यक्ताशनास्तथा ॥३४॥  
 भिक्षाशनास्तथा केचित् परदत्ताशनाः परे । अयाश्वाग्रतिनः केचित्यक्तसंभाषणाः परे ॥३५॥  
 केचिद्वल्कलसंवीताः केचित्कापायवस्त्रिणः । मृगचर्मधराः केचित् केचिदाकाशवस्त्रिणः ॥३६॥  
 वृक्षपछुववस्थाश्र केचित्पंचाग्निसाधकाः । धूम्रपानव्रताः केचित् केचित्यक्तेषणाः परे ॥३७॥  
 एवं नानावनारामगिरिदुर्गाश्रमादिषु । वासिनस्ते समायाताः सदाराश्र सवालकाः ॥३८॥  
 सशिष्या रामचन्द्रस्य द्रष्टु यज्ञोत्सव वरम् । दशदिग्भ्यो मुनिश्चेष्टाः कोटिश्च दिने दिने ॥३९॥  
 तान्सर्वान् रामचन्द्रोपि प्रत्युत्थानासनादिभिः । मधुपर्कादिपूजाभिस्तोष्यामास सादगम् ॥४०॥  
 यज्ञवाटे महारम्ये कामधेनुं रघूत्तमः । पूजयामास विधिवद्वस्त्रैरभरणेरपि ॥४१॥  
 सुवर्णशृंगभूषाभिः किंकिणीन् पुरादिभिः । एवं तां शोभयित्वाऽथ प्रार्थयामास राघवः ॥४२॥  
 धेनो सागरसंभूते त्वमन्नानि द्विजादिकान् । दातुमहस्यध्वरे मे प्रसीद जगदंविके ॥४३॥  
 एवं संप्रार्थ्य तां कामधेनुं रामः प्रणम्य च । ववन्ध पाकशालायां पद्मकूलासनोपरि ॥४४॥  
 अथ सा सुरभिस्तुष्टा पड़सान्नानि सादरात् । ददौ जनकनन्दिन्यं सा देवाध्वरकर्मणि ॥४५॥  
 नामिनकायं च तत्रासीत् पाकशालासु चैकदा । इच्छाशनैः सदा पुष्टा वभूवुर्मुक्तिसत्तमाः ॥४६॥

भृगु, भार्गव, वृहस्पति, धीम्य, कण्व, एकपाद, त्रिपाद, ऊर्ध्वपाद, ऊर्ध्वनेत्र, ऊर्ध्वस्य, त्रिशिरा, वृद्धगौतम, पर्णाद, चंद्रसंज्ञक, ॥३०॥३१॥ ऋष्यशृण, मतङ्ग, जावालि, अगस्त्य, दधीचि, शौनक, सूत, सुतीक्ष्ण, लोमश, वाल्मीकि, दुर्वासा, ये एकसे एक विद्वान् मुनिगण तथा और भी कितने ही ऋषि अपने स्त्री-पुत्रों तथा शिष्योंके साथ आते जा रहे थे ॥३२॥३३॥ उनमें वहुतसे ऐसे थे, जो केवल पत्ते खाकर रहते थे । कोई वायु पीकर रहते थे । कोई कुण्डके अग्रभागमें जल लेकर पीते और उसीसे काल यापन कर रहे थे । कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने भोजनको त्याग ही दिया था ॥३४॥ कुछ ऋषि भिक्षान्न खाते थे, कोई दूसरेके बनाये भोजनको करते थे (अपने हाथसे आग नहीं ढूते थे) और कितने ही ऐसे थे, जो किसीसे माँगना पसन्द नहीं करते थे । कोई कोई तो किसीसे संभाषण ही नहीं करते थे ॥३५॥ कुछ मुनि बल्कल वस्त्र पहने हुए थे, कोई गेहूआ कपड़ा धारण किये थे, कोई मृगचर्म पहने थे और कोई दिगम्बर (नंगे) थे ॥३६॥ कुछ महर्षि वृक्षके पत्तोंसे शरीर ढाके हुए थे, कोई पञ्चामि तापनेवाले थे, कोई धूम्रपान (गजि और चरस) का व्रत लिये थे और कोई-कोई ऐसे थे, जिनकी सब प्रकारकी इच्छाएँ समाप्त हो गयी थीं ॥३७॥ इसी प्रकार कितने ही जङ्गलों, बगीचों, पर्वतों, किलों और आधरमोंके निवासी ऋषि अपनी स्त्री तथा वच्चोंके साथ वहाँ आ पहुँचे थे ॥३८॥ रामचन्द्रके उस अश्वमेष्यजको देखनेके लिए दसों दिशाओंसे करोड़ों ऋषि इसी तरह अपने शिष्यादिकोंके साथ वहाँ प्रतिदिन आ रहे थे । रामचन्द्र भी उनका प्रत्युत्थान, आसन, मधुपर्कादिसे पूजन तथा आदर करते थे ॥३९॥४०॥ उसी यज्ञभूमिमें रामचन्द्रजीने विविपूर्वक अनेक वस्त्रों और आभूषणोंसे कामधेनुका पूजन किया । उसकी सींगें सोनेसे मढ़ाई तथा किंकिणी और नूपुर आदि पहनाये । इसी तरह उसको अलंकृत करके रामचन्द्रजीने प्रार्थना की—॥४१॥४२॥ हे क्षीरसागरसे उत्पन्न होनेवाली कामधेनो ! तुम हमारे अतिथिरूपमें आये हुए ज्ञाहृणोंको अन्नादिके दानसे तृप्त रखना । हे जगदम्बिके ! तुम मेरेपर प्रसन्न होओ ॥४३॥ इस प्रकार विनती करके एक गलीचा विछाकर भोजनशाला (रसोईघर) में ले आकर कामधेनुको बीघ दिया ॥४४॥ इसके पश्चात् उस सुरभीने प्रसन्न होकर आदरपूर्वक छहों रसके अन्न सीताको दिये । तबसे पाकशालामें न तो कोई भट्टी जलती थी जीर न कोई पदार्थ बनाया जाता था । लेकिन

यान्यान्कामान् रामचंद्रश्चिन्तयामास चेतसि । तांस्तानुभौ मणी शीघ्रं कल्पयामासतुर्द्रुतम् ॥४७॥  
 तथा सीताऽपि यान् कामांश्चिन्तयामास चेतसि । कामधेनुर्दौ तांस्ताज्ञीघ्रं त्रैलोक्यदुर्लभान् ॥४८॥  
 सर्वत्र यज्ञवाटे हि द्विजाद्यैश्च समंतरः । पंक्तिषु भूमिजादीनां परिवेषणकर्मणि ॥४९॥  
 खोणां कंकणनादश्च शुश्रुवे नुपुरध्वनिः । अथ रामश्च सौमित्रिं समाहृयेदमव्रवीत् ॥५०॥  
 सीमाचारान्समाहृय मम वाक्याच्च सादरम् । आज्ञापयस्व शीघ्रं त्वं शासनं यन्मयोच्यते ॥५१॥  
 ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः । यःकश्चिद्वा समायाति पथिकः स ममाज्ञया ॥५२॥  
 निवारणीयो युध्माभिर्व कदाप्यध्वरे मम । ममाज्ञां न प्रतीक्षध्यं कोपः कार्यो न कस्यचित् ॥५३॥  
 इति रामवच्चः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । सीमाचारान् समाहृय राघवोक्तं न्यवेदयत् ॥५४॥  
 ततो रामः पुनः प्राहः समाहृयाथ लक्ष्मणम् । ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः ॥५५॥  
 मुनीनां दयिता वालाः शिष्याः सम्बन्धिनस्तथा । पौरा जानपदस्थास्तु तेषां संवधिनः स्त्रियः ॥५६॥  
 दासीदासजनाः सर्वे यद्यद्वांछिति लक्ष्मण । मामपृष्ठा तु तत्तेषां दातव्यं द्यविचारितम् ॥५७॥  
 अन्त्यजावधि सर्वान्हि तोपयध्वं निरन्तरम् । न केपामभिलापा च विफला हि विधीयताम् ॥५८॥  
 अयोध्यां कामधेनु च जानकी कौस्तुभं माणिम् । चितामणिं पुष्पकं च राज्यं कोशादिकं च मे ॥५९॥  
 एतेष्वपि च यो यद्वै याचायिष्यति तत्त्वया । न दत्तं चेति वै श्रुत्वा ममातोषो भवेच्चयि ॥६०॥  
 अतो जात्वा भयं मत्तो ददस्व द्यविचारतः । याज्ञामङ्गः कृतश्चेद्दिः मच्छिरोहा भविष्यति ॥६१॥  
 सदा स्मर गिरं मे त्वमिमां लक्ष्मणं सादरम् । इति रामकृतां शिक्षामंगीकृत्य स लक्ष्मणः ॥६२॥  
 तथा चकार तत्सर्वं यथा रामेण शिक्षितम् ॥६३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे  
लक्ष्मणाज्ञाकरणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

बहुपर आये हुए सब श्रुति इच्छाभोजन कर-करके प्रसन्न हो रहे थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिन-जिन वस्तुओंको रामचन्द्रजीने अपने मनमें चाहा, उन सबको उनके दो मणियों ( कौस्तुभमणि तथा चिन्तामणि ) ने बातकी बातमें पूर्ण कर दिया ॥ ४७ ॥ इसी तरह सीताजीने जो कुछ चाहा, सो कामधेनुने त्रैलोक्यकी दुर्लभ वस्तुओंको भी देकर उनकी इच्छा पूरी की । यज्ञभूमिके चारों ओर जब ज्ञाहणोंकी मण्डली भोजन करनेके लिए बैठती थी और स्त्रियाँ उनको भोजन परोसनेके लिए आती थीं, तब उनके भूयणोंकी मंजुल छ्वनि सुनायी देती थी । इसके तदनन्तर रामचन्द्रजीने लक्ष्मणको बुलाकर इस प्रकार समझाया— ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हमारी यज्ञभूमिके आसपास रहनेवाले निवासियोंको सादर बुलाकर हमारी तरफसे यह समझा दो कि आजसे लेकर जो कोई ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, सन्यासी, मुनियोंकी पत्नियाँ, उनके बच्चे, शिष्य, सम्बन्धी, पुरवासी, देशनिवासी और उनके सम्बन्धी, जो कोई यहाँ आ जाय, उसे कोई न रोके । उसका सत्कार करनेके लिए मेरी आज्ञाकी प्रतेक्षा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ५१—५३ ॥ रामचन्द्रजीकी आज्ञानुसार लक्ष्मणजीने सब आस-पासके निवासियोंको जाकर समझा दिया । कुछ देर बाद रामचन्द्रजीने फिर लक्ष्मणको बुलाकर कहा कि मुनियोंकी स्त्रियों तथा बच्चों आदिको अथवा दास-दासीगणको जिस किसी वस्तुकी आवश्यकता हो, वह बिना हमसे पूछे उनके इच्छानुसार देते जाओ ॥ ५४—५७ ॥ चाण्डालसे लेकर विप्रतक प्रत्येक प्राणीवो सन्तुष्ट करो । किसीको किसी प्रकारका कष्ट न होने पाये । किसीकी कोई अभिलाषा विफल न हो । अयोध्या, कामधेनु, सीता, कौस्तुभमणि, पुष्पक विमान, राज्य तथा कोशादिक इन सब वस्तुओंको भी देनेसे यदि तुमने इनकार किया तो मैं तुम्हारे ऊपर बहुत नाराज होऊँगा । इसलिए मेरे क्रोधसे डरते हुए बिना किसी प्रकारका विचार किये सब अभ्यागतोंको उनकी अभिलिष्ट वरतुयें देते जाओ । तुम किसीकी माँग खाली करोगे तो तुम्हें मेरा सिर काढनेका पातक लगेगा ॥ ५८—६१ ॥ हे लक्ष्मण ! सदा मेरी इन बातोंका हथाल

## तृतीयः सर्गः

( रामके यज्ञीय अश्वका सब ओर घूमकर अयोध्या लौटना )

श्रीरामदास उवाच

अथ मुक्तस्तदा बाजी राघवेण महान्मना । यज्ञांगः श्यामकर्णः स पूर्वदेशं ययौ जवात् ॥१॥  
 शत्रुघ्नेन च सैन्येन प्राप्तो भागीरथीतटम् । एतस्मिन्बन्तरे रामः स्वप्रतापं प्रदर्शयन् ॥२॥  
 चकार कौतुकं तत्र शत्रुघ्नस्य पुरो महत् । ब्रह्मावतं महादेशं त्यक्त्वा गङ्गातटं प्रति ॥३॥  
 यावत्प्राप्तः श्यामकर्णस्तावदासीद्वैर्विना । गङ्गायां च महापूरो यत्र नौकाझपि कुण्ठिता ॥४॥  
 शत्रुघ्नेनापि तद्दृष्टा कुण्ठितां गतिमीक्ष्य च । कालातिकमभीत्या स निजचित्ते व्यचित्यत् ॥५॥  
 आदावेवापि मे विघ्नमुत्पन्नं गमने मद्दृश् । ग्रासे प्राथमिके यद्वन्मश्चिकापतनं तथा ॥६॥  
 तर्हीदानीं रामचन्द्रप्रतापेनास्तु मे गतिः । निश्चित्येत्थं स शत्रुघ्नो रथस्थो जाह्नवीतटे ॥७॥  
 स्थित्वा प्रोवाच गङ्गांस प्रतिपूज्य सविस्तरम् । शृणवत्सु सर्वलोकेषु मुनिदेवगणेषु च ॥८॥  
 देवि गङ्गे महापुण्ये यदि सत्यं रघूत्तमे । दीयतां तदि पंथा मे शीघ्रं मैन्ययुतस्य च ॥९॥  
 इति शत्रुघ्नवचनं श्रुत्वा सा जाह्नवी तदा । स्ववेगं खंडयामास स्वोदरं चाप्रदर्शयत् ॥१०॥  
 पद्मिवाजी तदा शीघ्रं परं तीरं ययौ क्षणात् । तथा सैन्येन शत्रुघ्नः ससुमन्त्रः समाययौ ॥११॥  
 मागधारुयं महादेशं स एव कीकटः स्मृतः । पूर्ववल्च महापूरो जाह्नव्यां संबभूव इ ॥१२॥  
 प्रतापं रामचन्द्रस्य सर्वेर्दुर्ध्वा महाद्वृतम् । चक्रस्ते जयशब्दांश्च सीतारामारुयया मुहुः ॥१३॥  
 श्यामकर्णस्ततः शीघ्रं ययौ पूर्वदिशं प्रति । मगधेशो नृपश्चाथ श्रुत्वा तुरगमागतम् ॥१४॥  
 प्रत्युज्जगाम सैन्येन पुरस्कृत्याथ वारणम् । निनायाश्चं पठित्वा तद्वालपत्रं पुरं निजम् ॥१५॥

रखना भूलना नहीं । रामचन्द्रजीकी शिक्षाको अङ्गीकार करके लक्षणजीने बैसा ही किया; जैसा रामने कहा था ॥६२॥६३॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते यागकाण्डे लक्षणाजाकरणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

श्रीरामदासजी फिर कहने लगे—रामचन्द्रजीके द्वारा छोड़ा हुआ वह यज्ञका अङ्गस्वरूप श्यामकर्ण घोड़ा अयोध्यासे बड़े वेगके साथ पूर्व दिशाकी ओर चला ॥१॥ चलते-चलते शत्रुघ्न, सुमन्त तथा विशाल सेनाके साथ वह अश्व जाकर भागीरथी गंगाके तटपर पहुँचा । इधर रामचन्द्रजीने अपनी महिमा दिखानेकी इच्छासे शत्रुघ्नजीके सामने एक विचित्र कौतुक उपस्थित किया । वह यह कि ब्रह्मावतं देशको लालिकर गङ्गातट पहुँचते-पहुँचते उनके पास जो कुछ भी धन था, वह सब समाप्त हो गया । गङ्गाकी बाढ़से एक स्थानपर उनकी नौका भी रुक गयी ॥२-४॥ शत्रुघ्नने उस दारुण समयको देखा तो देर हो जानेके भयसे मन ही मन सोचने लगे—ओह ! पहली ही यात्रामें इतना बड़ा विघ्न आ पहुँचा । यह वही कहावत चरितार्थ हुई कि "पहले ही ग्रासमें मृत्यु आ गिरी" ॥५॥६॥ अब मुझे इस समय केदल रामचन्द्रजीके प्रतापका भरोसा है । उसीसे मेरा निरतार होगा । इस प्रकार निश्चय करके शत्रुघ्नजो रथपर बैठे ही बैठे जाह्नवीके तटपर जाकर कहने लगे— ॥७॥ हे महापुण्यशालिनी गंगे । हे देवि ! यदि भगवान् रामचन्द्रजी सच्चरित्र हों तो आप सेनासहित मुझे रास्ता दे दोजिए ॥८॥९॥ इस प्रकार शत्रुघ्नके वचनको सुनकर गङ्गाजीने वेगको मन्द करके अपने मध्य भागसे शत्रुघ्नको रास्ता दे दिया ॥१०॥ तब क्षणभरमें घोड़े और पैदल सैनिक चलकर गङ्गाके उस पार पहुँच गये । इस तरह सर्वे शत्रुघ्न सुमन्तके साथ महादेश मगधमें जा पहुँचे, जिस देशको कीकट भी कहते हैं । उन लोगोंके पार उतर जानेके बाद गङ्गाका प्रवाह पूर्ववत् वेगवान् हो गया ॥११॥१२॥ मगधनिवासी लोग रामचन्द्रके अद्भुत प्रतापको समझकर सीतारामके नामका जयजयकार करने लगे ॥१३॥ वहाँसे अश्वमेथ यज्ञके लिए छोड़ा हुआ श्यामकर्ण घोड़ा पूर्व दिशाकी ओर चला । राजा मगधेश घोड़ेको आया हुआ सुनकर हाथीकी सवारीपर चढ़ तथा सेनाको लेकर अगवानीके लिए गये । घोड़ेके मस्तकमें बैधे हुए पत्रको पहकर उसको नगरमें ले गये

पूज्यादरात्ससैन्यं तं शत्रुघ्नं विभवैर्निजैः । समस्तं निजकोशादि समर्प्य मगधाधिषः ॥१६॥  
 पौरान् जानपदान्स्वस्थीः सुहृत्तनयमंत्रिणः । पौरपत्नीर्जानपदपत्नीर्विप्रान् पुरोधसम् ॥१७॥  
 प्रेपयामास साकेते वाहनैरध्वरं प्रति । स्वयं सैन्येन तुरगच्चरणाननुलक्ष्य च ॥१८॥  
 शत्रुघ्नवाग्नुवर्ती बद्धहस्तपुटो ययौ । एवं सर्वेऽपिराजानो ज्ञातव्याः सर्वदिक्षिताः ॥१९॥  
 न केनापि श्यामकणो बद्धो नृपतिना भूषि । इन्द्राद्यैर्निर्जरैर्नापि नासुराद्यैः कदाचन ॥२०॥  
 ततो वाजी पूर्वदेशानंगवंगकलिंगकान् । तथा नानाविधान्देशान् विलंघ्य जलधेस्तटम् ॥२१॥  
 दृढा नृपकुलैर्युक्तो दक्षिणाभिशुखो ययौ । गोदावरीं नदीं तीत्वा देशमाध्रं च द्राविडम् ॥२२॥  
 अतिक्रम्यारवाराख्यं देशं समतिक्रम्य च । काञ्चीप्रदेशान्सकलान्यश्यन्नानाविधाञ्छुभान् ॥२३॥  
 काञ्चीर्णं समतिक्रम्य चोलदेशं विलंघ्य च । सेतुबंधं ततो दृढा पश्चिमाभिशुखो ययौ ॥२४॥  
 तात्र पणों विलंघ्याथ समतिक्रम्य केरलान् । द्विष्टप्रकारान् देशांश्च गोकणं च ततो ययौ ॥२५॥  
 कृष्णातीरप्रदेशांश्च समतिक्रम्य घोटकः । कर्णाटकं महादेशं समतिक्रम्य सत्वरम् ॥२६॥  
 कोंकणं समतिक्रम्य तत्तदेशनृपैः सह । भीमान्देशान् सकलाञ्श्यामकणः शुभावहः ॥२७॥  
 पश्यन् ययौ महाराष्ट्रं गांवर्मीं तां विलंघ्य च । विदर्भं समतिक्रम्य ययावाभीरमंडलम् ॥२८॥  
 मालवं समतिक्रम्य तीत्वा पुण्यां महानदीम् । तीत्वा स अमर्तीं पुण्यां समतिक्रम्य गुर्जरम् ॥२९॥  
 प्रभासं च ततो गत्वा ययावानर्तमुत्तमम् ।  
 सौवीरान् समतिक्रम्य ययौ वाजी स मायुरान् । सौराष्ट्रान्समतिक्रम्य मरुदेशं ययौ हयः ॥३०॥  
 धन्वदेशमतिक्रम्य ययौ सारस्वतानथ । मत्स्यान् देशानतिक्रम्य ययौ वाजी स माठरान् ॥३१॥  
 शूरसेनानतिक्रम्य पांचालांस्तुरगो ययौ । कुरुक्षेत्रं ततो गत्वाऽन्तिक्रम्य कुरुजांगलान् ॥३२॥  
 देशं केकेयमुललंघ्य ययौ काश्मीरमुत्तमम् । भिल्लदेशं गौडदेशं शकदेशं ययौ हयः ॥३३॥  
 यवनांस्ताप्रदेशांश्च समतिक्रम्य वेगतः । पश्यन्नानाविधान् देशान् करतोयातटेन वै ॥३४॥

और वहे आदरके साथ अपनी संपत्तिसे शत्रुघ्नकी पूजा की । समस्त निज कोशादि शत्रुघ्नको अपेण करके पुरवासियोंको, अपने कुदुम्बको, जनपदवासियोंको एवं अपने मित्र-बान्धवोंको वाहनोंके साथ अश्वमेघ यज्ञमें अयोध्या भेज दिया । किन्तु स्वयं सेनाके साथ शत्रुघ्नके वशवर्ती होकर यज्ञीय अश्वके चरणोंको लक्ष्य करके साथ-साथ चले । इसी तरह सब देशोंके राजा लोग शत्रुघ्नके वशवर्ती होकर अश्वके पीछे-पीछे चले ॥१४-१९॥ पृथ्वीपर किसी भी राजाने श्यामकणं घोड़ेको नहीं बांधा । न स्वर्गमें इन्द्रादि देवताओंने और न पाताललोकमें असुरोंने उसे बांधा ॥२०॥ उसके बाद घोड़ा अङ्ग-वङ्ग-कलिगादि अनेक देशोंमें होता हुआ समुद्रतटपर पहुँचा ॥२१॥ वहांसे नृपसमूहके साथ वह दक्षिण दिशामें गया । फिर गोदावरी नदीको पार करके आंध्र, द्रविड़, कारवार नामक देशोंका अतिक्रमण करके नाना प्रकारके मनोहर प्रदेशोंमें धूमता हुआ कावेरी नदीको पार करके चोलदेशमें जा पहुँचा । वहांसे समुद्रतटपर सेतुबन्ध रामेश्वर होकर पश्चिम दिशामें गया ॥२२-२४॥ वहांसे वह घोड़ा ताङ्रपर्णी नदीको लाघ तथा केरल देशका अतिक्रमण करके गोकणं तीर्थमें जा पहुँचा ॥२५॥ वहांसे कृष्णा नदी उत्तरकर वह घोड़ा कर्णाटकमें पहुँचा ॥२६॥ वहांसे कोंकण देशको पार करके तत्तदेशीय राजाओंके साथ भीमा नदीको लाघता हुआ महाराष्ट्रमें जा पहुँचा ॥२७॥ वहांपर गौतमी नदीको लाघकर विदर्भ देशमें होता हुआ आभीरमण्डलमें पहुँचा ॥२८॥ वहांसे मालवा होता हुआ महानदी पुण्याका अतिक्रमण करके गुजरातमें पहुँचा ॥२९॥ वहांसे प्रभास तीर्थमें आकर आनंद देशको गया । फिर सौवीर आदि देशोंको पार करके घोड़ा मयुरा प्रदेशमें गया । वहांसे सौराष्ट्र देशको लाघकर मरु-देश ( मारवाड़ ) में पहुँचा ॥३०॥ उसके बाद धन्व नामक देशका अतिक्रमण करके सरस्वतीके तीरपर गया । वहांसे मत्स्य देशमें धूमता हुआ माठर देशमें गया ॥३१॥ उसके बाद वह श्यामकणं घोड़ा शूरसेन, पञ्चाल, कुरुक्षेत्र, जांगल एवं केकय देशमें भ्रमण करता हुआ काश्मीर गया । वहांसे भिल्लदेश,

ययौ वाजी वायुगत्या शीघ्रं ज्वालामुखीं प्रति । दोषभात्या करतोयां तीर्त्वा नैवाग्रतो गतः ॥३५॥  
 कर्मनाशानदीस्पर्शात् करतोयाविलंबनात् । गंडकीं वाहुतरणादूर्मः स्खलति कीर्तनात् ॥३६॥  
 हरिद्वारं ययौ वाजी ततो गङ्गातटेन हि । हिमाद्रेः सन्निधौ देशान् समतिक्रम्य वेगतः ॥३७॥  
 बद्रिकाश्रममालोक्य कलापग्रामवासिभिः । संमानितस्तदा वाजी गत्वा तन्मानसं सरः ॥३८॥  
 दृष्टा हरिद्वरसेत्रं मिथिलां प्राप सेनया । नानादेशानतिक्रम्य ह्यार्यावर्तं ययौ हयः ॥३९॥  
 दृष्टा काशीं त्रिवेणीं च ह्यंतर्वेदीं ययौ जवात् । शृङ्गवेरपुरं गत्वा तमसां तां त्रिलंघ्य च ॥४०॥  
 गत्वा स नैमिषारण्यं समूल्लंश्याथ गोमतीम् । ब्रह्मावर्तं सरो गत्वा पश्यन् देशान् मनोरमान् ॥४१॥  
 कोसलाख्यं महादेशं दृष्टा वाजी मनोरमम् । ततः साकेतविषये पण्मासैः प्राप चाष्वरम् ॥४२॥  
 नानादेशनृपैः साधै शत्रुघ्नेनाभिरक्षितः । आगतं श्यामकर्णं तं ज्ञात्वा सीतापतिस्तदा ॥४३॥  
 आज्ञापयन्त्रच सौमित्रिं सोऽपि प्रत्युजगाम तम् । वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य भेरीदुंदुभिनिःस्वनंः ॥४४॥  
 वारस्त्रीणां नृत्यगीतवेदधोर्पैद्विजेऽरतः । संपूज्याथ श्यामकर्णं नृपतीञ्च मविस्तरम् ॥४५॥  
 आनयामास सौमित्रिः शनैरध्वरमंडपम् । महोत्सवो महानासीत्तदा तुरगदर्शने ॥४६॥  
 दशयोजनपर्यंतं सर्वत्र जगतीतलम् । व्याप्तं समं ततोऽयोध्यावहिर्नृपगणैस्तदा ॥४७॥  
 तत्र सर्वत्र राजानः पूर्वसंप्रेषिताङ्गनान् । पौरान् जानपदानस्त्रीञ्च पश्यतो अमरोपमाः ॥४८॥  
 सन्येन वभ्रमः सर्वे स्त्रीयदर्शनलालसाः । न प्रापुदर्शनं तेषां जनैषेऽध्वरमंडपे ॥४९॥  
 केचिच्चे दर्शनं स्वानां प्रापुस्तत्र परेऽहनि । केचिच्चत्तीये दिवसे पञ्चमे सप्तमेऽथ वा ॥५०॥  
 केचिदुंदुभिघोषेण प्राप्यः स्वानां प्रदर्शनम् । केचित् पक्षानन्तरं हि मासेनानन्तरं जनाः ॥५१॥  
 केषां वियोग एवासीच्चिरकालं तदाऽध्वरे । तज्ज्ञात्वा रामचन्द्रोऽपि लक्षणं प्राह सादरम् ॥५२॥

गौडदेश, शकदेश, यवनोंके देश एवं ताम्रदेशसे निकलकर करतोया नदीके तटवर्ती नानाविध मनोहर दृष्टयोंको देखता हुआ बड़े वेगसे ज्वालामुखीके पार्वत्य प्रदेशमें गया ॥ ३२-३४ ॥ वहाँसे करतोया नदीको पार करके आगेके प्रदेशोंमें नहीं गया । क्योंकि कर्मनाशा नदीका स्पर्श करनेसे, करतोयाका उल्लंघन करनेसे, गण्डकी नदीको बाहुओं द्वारा तंरने और धार्मिक काम करके उसका बखान करनेसे धर्मका क्षय होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ वहाँसे वह गङ्गाके तट ही तट होकर हरिद्वार गया । वहाँसे हिमालयके प्रदेशमें जाकर बद्रिकाश्रम पहुंचा । वहाँसे कलापग्रामनिवासियोंका अतिक्रमण करके वह धोड़ा आर्यवित्तं देशमें गया ॥ ३७-३९ ॥ वहाँसे काशी और गङ्गातटपर धूमता हुआ वेगपूर्वक अन्तर्वेदीमें गया । फिर शृङ्गवेरपुरमें जाकर तमसाको पार करके नैमिषारण्यमें गया । वहाँसे गोमती और ब्रह्मावर्तं सरोवरको जाकर मनोहर दण्डोंको देखता हुआ कोसल देशमें पहुंचा । इस प्रकार छः महानोंसे धूमता हुआ वह अश्व फिर अयोध्याके निकटवर्ती अश्वमेधके यज्ञमंडपमें आ पहुंचा ॥ ४०-४२ ॥ अनेक देशके राजाओंके साथ शत्रुघ्नसे अभिरक्षित यज्ञार्थ छोड़े हुए श्यामकर्ण धोड़को आया हुआ सुनकर सीतापति रामचन्द्रजीने उसको लानेके लिये लक्षणको आज्ञा दी । लक्षणजी हाथीपर चढ़कर बड़े उत्साहके साथ उसकी अगवानी करनेके लिए गये । वे विविधपूर्वक श्यामकर्ण धोड़की और राजाओंकी पूजा करके उसे धीरे-धीरे यज्ञमण्डपमें ले आये । उस समय धोड़को देखनेके लिए प्रजावर्गमें बड़ा उत्साह था ॥ ४३-४६ ॥ यज्ञोत्सवके समय अयोध्याके बाहर दस योजनतक सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल राजा-महाराजाओं तथा अमीर-उम-रावोंसे भरा था ॥ ४७ ॥ यज्ञमें इतनी भीड़ थी कि श्यामकर्ण अश्वके साथ भ्रमण करके लौटे हुए राजा लोग पहिलेसे भेजे हुए अपने स्त्री-पुत्र-बान्धवोंको खोजते हुए उनको देखनेकी इच्छासे इवर-उधर धूमते रहे, पर उस यज्ञकालिक जनसमुदायमें उन लीनोंको प्राप्त नहीं कर सके ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ कोई खोजते-खोजते दूसरे दिन मित्र-बान्धवोंसे मिल सका । कोई तीसरे दिन, कोई पांचवें रोज और कोई सातवें रोज मिला ॥ ५० ॥ किसीको नगाड़को छनिसे स्वजनोंका पता लगा । किसीको एक पखवारेके बाद और किसीको एक मासके बाद पता लगा ॥ ५१ ॥ किसीको चिरकाल तक पता ही नहीं लगा । यह सुनकर भगवान रामचन्द्रजीने लक्षणसे

परस्परं वियोगोऽत्र संमदेन तु लक्ष्मणः जायते तत्र युक्ति त्वं मत्तः श्रुत्वा कुरुत्व ताम् ॥५३॥  
 तमसायास्तटे शालां कृत्वाऽय महर्तीं शुभाम् । घोषणीयश्च सर्वत्र महादुभिनिःस्वनैः ॥५४॥  
 येषां वियोगस्तैर्गत्वा तमसातटशोभिताम् । शालां प्रवेश्य इति स्वानां योगोऽस्तु तत्र हि ॥५५॥  
 चतुष्पदादिवस्तूनि ज्ञात्वा यस्य लघून्यपि । तत्रैव स्थापनीयानि स्वं स्वं गृह्णन्तु ते जनाः ॥५६॥  
 इति रामवच्छः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा चकार तत्सर्वं येन योगः परस्परम् ॥५७॥  
 सर्वे तत्र जनाः प्रापुः स्वानां स्त्रीशालमंत्रिणाम् । चतुष्पदादिवस्तूर्ना तत्र लाभो बभूव ह ॥५८॥  
 यत्किञ्चिद्दिस्मृतं येन तदृष्ट्वाऽन्येन वै तदा । शालायां स्थापितं दृष्ट्वा त्वयं जग्राह तत्र सः ॥५९॥  
 एवं श्रीरामयज्ञे हि संमर्दः संबभूव ह । न तत्र शुश्रुते शब्दः कर्णेऽप्युक्तो जनैस्तदा ॥६०॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तस्युर्वसनसञ्चासु ॥६१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे अश्वागमनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

### चतुर्थः सर्गः

( रामका कुम्भोदर मुनिसे साक्षात्कार )

श्रीरामदास उवाच

अथ ते ऋत्विजः सर्वे मंगलैर्विविधैः शुभैः । सम्यक् प्रवर्तयामासुर्वज्जिमेधं यथाविधि ॥ १ ॥  
 तत्रत्विजो वाजिमेधे रत्नकौशेयवाससः । ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥ २ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुरेशसहितैः सुरैः । स्वामिना विघ्नराजेन पार्वत्या वृषभस्थितः ॥ ३ ॥  
 महेश्वरो यज्ञवाटं रामाहृतो ययौ गणैः । शिवमागतमाज्ञाय प्रत्युद्गम्याथ लक्ष्मणः ॥ ४ ॥  
 वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य पताकाध्वजतोरणैः । नानावाद्यसुधोपैश्च वारस्त्रीणां प्रनर्तनैः ॥ ५ ॥

कहा—॥ ५२ ॥ यहाँ भीड़के कारण परस्पर लोगोंका वियोग हो जाता है । अतएव मैं एक युक्ति बतलाता हूँ । उसको करो ॥ ५३ ॥ तमसा नदीके तटपर एक बड़ी भारी शाला बनवाओ और डुगडुगी पिटवा दो कि भूले-भटकोंको खोजना हो तो तमसा नदीके तटपर जहाँ नयी शाला बनी हुई है, वहाँ जाओ । वहाँपर भूले-भटकोंको खोज पाओगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ लोगोंकी बड़ीसे लेकर छोटी-छोटी भी खोयी हुई वस्तुएँ खोज-खोजकर वहाँ रखी हैं । वहाँ जिस-जिसकी जो-जो वस्तु हो, वह अपनी-अपनी वस्तु ले ले । इस प्रकार रामजीके बचन सुनकर लक्ष्मणने कहा—अच्छा महाराज ! ऐसा ही करूँगा । इसके बाद लक्ष्मणजीने ऐसी व्यवस्था की, जिससे सबका अपने वियुक्त वान्धवोंसे मिलाप होने लगा ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ वियुक्त बन्धु वहाँ गये और सबको अपने-अपने स्त्री-पुत्र-मित्रादि और चतुष्पदादि पण्डु सभी खोई हुई चीजें मिल गयी । जहाँ-कहाँपर जिससे जो वस्तु भूलसे छूट गई, उस वस्तुको राजानुचरोंने तथा जिसने देखी एवं जिसको मिली, उसीने वहाँ शालामें रखवा दी और जिसकी वह वस्तु थी, उसने वहाँ जाकर ले ली ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार श्रीरामजीके बजमें ऐसी भीड़ हुई कि जिसके कारण कानमें कहा हुआ भी शब्द मनुष्योंको नहीं सुनाई पड़ता था ॥ ६० ॥ यज्ञ भगवान्के दर्शन करके सब राजा लोग अपने-अपने स्त्री-पुत्र-मित्रादिकोंको लेकर अलग-अलग तम्भुओं ( खेमों ) में रहने लगे ॥ ६१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे अश्वागमनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर सब ऋत्विक् मंगलमय कृत्योंके साथ-साथ शास्त्रानुसार अश्वेष यज्ञ करवाने लगे ॥ १ ॥ उस समय यज्ञमें रत्नमय आभरणों और वस्त्रोंको पहिने हुए ऋत्विक् ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे इन्द्रके यज्ञमें सुरीभित होते थे ॥ २ ॥ उसी ममय वहाँ रामजीके बुलावेसे बैलपर चढ़कर महादेव और पार्वतीजी आयीं । उनके संग इन्द्रादि देवता, स्वामिकार्तिकेय, गणेशजी एवं प्रमदादि सब गण भी आये ॥ ३ ॥ महादेवजीका आगमन सुनकर सम्पूर्ण नगर छजा-पताका आदिसे सजाया गया ।

संपूज्य शंकरं भवत्या चानयामास मठद्युम् । एवं तप्ते एदान्यग्रे गच्छा गमोर्धारं शंकरम् ॥ ६ ॥  
 नमस्कृत्य समालिङ्ग्य विशेषे गिरिजायुतम् । हैमायरे मन्त्रिदद्य देहपात्रे स्वहस्ततः ॥ ७ ॥  
 पादप्रक्षालनं शंभोश्चकार सीतया प्रदुः । हेमनिमित्तद्विजया मणिरत्नादिचित्रया ॥ ८ ॥  
 जलधारां यथायोग्यां मोचयामास जानकी । तत्त्वस्ते राघवं सीतां दृष्टा दंवगणास्तुदा ॥ ९ ॥  
 अनिमेपाः कंजनेत्रकटाक्षाः सन्निराक्ष्य । तथोत्थित्रोपमा आसन् न विदुः के वयं त्विंत ॥ १० ॥  
 तुष्टुवुस्तव्र केचित्ते सुराः श्रीराघवं शुश्रा । जानकीं तुष्टुवुः केचित् प्रबद्धकरसम्पुटाः ॥ ११ ॥  
 एवं निर्जरसधानां संतोषस्तव्र वै श्वभृत् । अनोपम्य तयोर्दृष्टा रूपं कोटिरत्नप्रभम् ॥ १२ ॥  
 अथ रामः सीतया हि शंकरं गिरिजामपि । स्वयं संपूज्य सकलान् देवान् सौमित्रिणा क्रषीन् ॥ १३ ॥  
 पूजयित्वाऽत्रवीद्वाक्यं शंकरं लोकशंकरम् । अद्य धन्योऽस्म्यहं देव दशेनात्तव सीतया ॥ १४ ॥  
 अद्य मे सूर्यवंशेऽस्मिन् जन्म साफल्यतां गतम् । इति रामस्य वचनं श्रुत्वा स शशिभूषणः ॥ १५ ॥  
 विहस्य राघवं प्राह वेद्यि मायां हरे तव । त्वन्नाभिकमले ब्रह्मा जातस्तस्मान्मुनीश्वराः ॥ १६ ॥  
 मरीच्याद्याः सम्भृतुः पौत्राः सप्ताहतौजसः । मरोचेः कश्यपः पुत्रः सृष्टुत्यत्तिविधायकः ॥ १७ ॥  
 कश्यपात्मविता जज्ञे पौत्रपौत्रस्तव प्रभो । रवेर्जातिः सूर्यवंशस्तद्वंशे तव जन्म वै ॥ १८ ॥  
 त्वद्वंशसंभवः सूर्यः किं मां मोहयसि प्रभो । देवानां कार्यमिद्वयथंमवतीर्णोऽसि मायया ॥ १९ ॥  
 कुरु क्रीडां यथेच्छं त्वं यात्रायज्ञादिकांतुर्कः । शिक्षां करोपि लोकानां वेदम्यहं नेष्टिं तव ॥ २० ॥  
 इति श्रुत्वा शंभुवाक्यं शीतागमी विहस्य च । वज्रकुण्डलसमीपे तु तस्थतुर्गुणसन्निधौ ॥ २१ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र भवाजग्मुः सहस्राः गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धास्तथा चाष्मरसां गणाः ॥ २२ ॥  
 लोकपालाश्च दिक्पाला रमातलनियामिनः । नवग्रहाः पद्मतवः पष्टिसंवत्सरास्तथा ॥ २३ ॥

वेद्याभोक्त नाना प्रकारके नाच और अनेक तरह बाजे-गाजे के साथ हाथीपर चढ़कर लक्ष्मणजो उनकी अगवानीके लिए गये ॥ ४ ॥ ५ ॥ वे भक्तिपूर्वक शंकरभगवानुको यज्ञमण्डपमें ले आये । रामजीने भी उनको आते देखा तो पाँच-सात पग आगे चढ़कर शंकरजीको प्रणाम किया । शिव-पार्वतीका सत्कार करके सुवर्णमय सिंहासनपर बैठाया । सीताके साथ स्वयं रामने अपने हाथसे रत्न-खचित एक वडेसे मुद्रणके पात्रमें दोनोंका पादप्रक्षालन किया । जानकीने शंकरभगवानुके चरणोपर विवित् जलधारा ढाली । उपस्थित देवतागण निनिमेष नेत्रोंसे श्रीराम् एवं शीताकी अनुपम शोभा देखकर चित्रलिखित-से हो गये । उनको यहाँतक ज्ञान नहीं रहा कि मैं कौन हूँ ॥ ६-१० ॥ उस समय दंवगण गद्वद हौंकर श्रीगमच्छद्र और महागनी सीताकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ इस प्रकार सीता और रामका कोटि सूर्यको कान्तिके समान प्रभाशाली अनुपम सौदर्य देखकर देवताओंको अतीव प्रसन्नता हुई ॥ १२ ॥ इससे बाद सीता और लक्ष्मणके साथ स्वयं रामजीने शिव-पार्वती तथा सब देवताओंकी पूजा की ॥ १३ ॥ ब्रैलोवपके कल्पाण करनेवाले शंकरकी पूजा करके रामजी कहने लगे-हे भगवन् ! आज मैं धन्य होगा ॥ १४ ॥ आज आप लोगोंके दर्शनसे मेरा जन्म घटण करना सफल हुआ । इस प्रकार रामजीके बचत सुनकर शशिभूषण शहून्जी हसकर कहने लगे-॥ १५ ॥ हे भगवन् ! आपकी मायाको मैं जानता हूँ । आपहीने नानिःस्मलसे जह्या पैरा हुए और उन जह्यासे सम्पूर्ण मुनीश्वर उत्पन्न हुए हैं ॥ १६ ॥ उन निष्पाप मरीचि प्रभूति सात मुनीश्वरोमस मराचके पुत्र कश्यप हुए । जन्होंने मृष्टिको विस्तृत किया ॥ १७ ॥ उन कश्यपके पुत्र सूर्य हुए । हे प्रभो ! इस प्रकार आपके पौत्रके पौत्र रविसे सूर्यवंश चला । उस सूर्यवंशमें आपका जन्म हुआ । यह सब आपकी माया ही है । क्यों आप मुझे अपने मायाजालमें फँसाते हैं ? आप अपनी मायासे देवताओंके कार्य सिद्ध करनेके लिए भूमिपर अवतार्ण हुए हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ यात्रा-यज्ञादि कौतुकोंसे आप यथेच्छं क्रीड़ा करिये । मैं आपकी सब चेष्टाओंको समझता हूँ । आप संसारको जिक्षित करनेके लिए ही ऐसा करते हैं ॥ २० ॥ इस प्रकार शिवजीके कथनको सुनकर सीता और रामजी हँसे । तदनन्तर वे वज्रकुण्डके समीप स्थित गुह वसिष्ठके पास गये ॥ २१ ॥ इसी समय हजारों यथा, गन्धर्व, किल्लर,

ऋक्षाणि तिथयो योगाः करणानि च राशयः । पर्वतास्तरवः सर्वे सागराश्च नदा अपि ॥२४॥  
 सरोवराणि नदश्च वाप्यः कूपास्तथाऽपरे । घृत्वा जंगमरूपाणि ययुस्ते यज्ञमण्डपम् ॥२५॥  
 समागतश्च संपातिर्गुहको मकरध्वजः । समाययौ स लङ्काया राक्षसैश्च विभीषणः ॥२६॥  
 मानिता राघवेणापि सर्वे तस्युः प्रपूजिताः । स्वानितके स्थापिताः पूर्वं तत्र वासन् प्लवंगमाः ॥२७॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायातो मुनीश्वरः । कुम्भोदरो महातेजाः सीमाचारैविलोकितः ॥२८॥  
 तं दृष्ट्वा भयभीतास्ते सर्वे प्रोचुः परस्परम् । हा कष्टं पुनरायातः सोऽयं कुम्भोदरो मुनिः ॥२९॥  
 यात्राश्रमो राघवस्य यन्निमित्तो बभूत्र ह । यद्वाक्यादश्वमेघोऽपि सर्वेषां संबभूत ह ॥३०॥  
 महान् श्रमोऽश्वपृष्ठे तु भ्रमतां जगतीतले । अधुनाऽपि समायातः किमग्रे वै पुनस्त्वयम् ॥३१॥  
 करिष्यति न तद्विद्वा राघवस्यापि निंदकः । एवं नानाविधा वाचः सीमाचारगणेरिताः ॥३२॥  
 पृष्ठेन् कुम्भोदरस्तूर्णी ययौ यज्ञमूर्च्छं प्रति । तदागमनपूर्वं स सीमाचारैर्निवेदितः ॥३३॥  
 धावद्विर्वेषमानैश्च स्खलद्वाग्भिस्त्वरान्वितैः । राम राम महाबाहो हे लक्ष्मण शृणु प्रभो ॥३४॥  
 यात्रायज्ञश्च यद्वाक्यात् समायातः स वै पुनः । कुम्भोदरो मुनिश्वेष्ठो राम त्वद्यपि निष्ठुरः ॥३५॥  
 तदुदूतवचनं श्रुत्वा सर्वे तदर्शनोत्सुकाः । त्यक्त्वा स्त्रीयानिकर्माणि चोत्स्युस्तदिव्यया ॥३६॥  
 ऋत्विजो राघवः सीता न भयं मेनिरे मुनेः । कुम्भोदरो यज्ञवाटं ययौ सर्वविलोकितः ॥३७॥  
 अतिखर्वः स्थूलशिरः इयामकर्णः सपादुकः । स्थूलोदरः पिंगलेत्रः सकोपीनो जटाधरः ॥३८॥  
 चीरवासाः खर्वपादः खर्वदस्तो महामुनिः । युवा किंचित् शमश्रुयुक्तो धृतदण्डकमण्डलुः ॥३९॥  
 तं दृष्ट्वा सकला लोका भयं प्राप्तुः स्वचेतसि । पूर्वकर्म च संस्मृत्य संश्रुत्य च परस्परम् ॥४०॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामः शीघ्रं प्रत्युजगाम तस्मै । साषांगं प्रणिपत्याथ करे घृत्वा तु मंडपम् ॥४१॥

सिद्ध, चारण एवं अप्सराओंका गण आये ॥ २२ ॥ सम्पूर्ण लोकपाल, दिवपाल तथा नागलोकवासी भी आये । नवों ग्रह, छहों ऋतुयें, सातों सम्वत्सर एवं तिथि नक्षत्र योग करण राशि पर्वत वृक्ष समुद्र नद नदी कूप तालाब तथा अन्य सूक्ष्म प्राणी सभी अपने जज्ञम रूप धारण करके रामके यज्ञमें आये ॥ २३-२५ ॥ गृधराज संपाति, निषादराज एवं मकरध्वज आये । तदनन्तर सभी रासकोंके साथ लंकासे विभीषण भी आये ॥ २६ ॥ भगवान् रामने सबकी पूजा की और अपने समीप बैठाया । बन्दर पहलेसे ही वहाँ टिके थे ॥ २७ ॥ इसी समय महातेजा कुम्भोदर मुनि आये । यज्ञभूमिकी सीमापर निवास करनेवालोंने उन्हें आते हुए देखा ॥ २८ ॥ वे देखकर बड़े भयभीत हुए और बोले—आह ! बड़े कष्टकी बात है । यह तो फिर वे कुम्भादर मुनि आ गये ॥ २९ ॥ जिनके कारण भगवान् रामको यात्राका कष्ट हुआ था, जिनके कारण हम सबका अश्वमंथ हो गया ॥ ३० ॥ घोड़ेके पीछे-पीछे संसारमें इधरसे उधर उधरसे इधर धूमते हुए अत्यन्त कष्ट भोगे । अब यह फिर आये है । अब आगे क्या करेंगे, सा हमलाग नहीं जानते । यह रामजोका बड़ा निन्दक है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सीमाचारी लोगोंकी वाणियोंकी सुनते हुए कुम्भोदर चृपचाप यज्ञभूमिमें आये ॥ ३२ ॥ उनक आनेके पूर्व ही बड़े वेगसे भागते-कौपते हुए दूतोंन आकर रामसे निवेदन किया— ॥ ३३ ॥ हे राम ! हे महाबाहो लक्ष्मण ! हे प्रभा ! आप लोग सुनें । जिसके वाक्यसं आपने यात्रा और यज्ञ किया है, वहाँ कुम्भोदर मुनि फिर आये हैं । हे राम ! आपके ऊपर उनका बड़ा कठोर भाव है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस तरह दूतके वाक्य सुनकर सब अपने-अपने कार्योंको छोड़कर उन्हें देखनेको उठे ॥ ३६ ॥ ऋत्विक् लोग, साता तथा रामजो मुनिसे भयभात नहीं हुए । उनके देखते-देखते वे कुम्भादर मुनि यज्ञभूमिमें आ पहुँचे ॥ ३७ ॥ जो बड़े नाटे थे । जिनका मस्तक बड़ा था । जिनको नाड़ियाँ उभड़ी थीं । जिनके श्याम कण थे । जा खड़ाऊं पहन हुए तथा स्थूल उदरवाले थे । पीले-पोले जिनके नेत्र थे । वे कौपीन पहिने तथा जटा धारण किये थे ॥ ३८ ॥ चौर पहिने हुए वे छोटे-छाटे हाथोंवाले थे । युवा होनेसे जिनके मूँछें आ रहीं थीं और जो दण्ड-कमण्डलु धारण किय हुए थे ॥ ३९ ॥ उनको देखकर सम्पूर्ण जनसमुदाय उचके पहिलेके कृत्योंको सुन-सुन और स्मरण करकरके मन ही मन भयभीत हुआ ॥ ४० ॥ उसी समय राम

आनयामास श्रीरामो ददौ हैमासनं वरम् । कुंभोदरो मुनिः शीघ्रं भूमौ दण्डकमडल् ॥४२॥  
 स्थापयामास चीराणि ननाम रघुनायकम् । रामः शीघ्रं कराभ्यां तं प्रत्युत्थाप्य मुनीश्वरम् ॥४३॥  
 गाढमालिंग्य वाहुभ्यां ततो मुनिमभाषत । नाहं योग्यो बद्नार्थं त्वया रावणवातकः ॥४४॥  
 इति रामवचोरुपैर्वाणिः संताङ्गिनो हृदि । कुंभोदरस्तदोवाच यज्ञवाटे रघूतमम् ॥४५॥  
 राम राम महावाहो न कोपः क्रियतां मयि । अपराध्यस्मयहं ते हि क्षमस्व रघुनायक ॥४६॥  
 न मया स्वार्थसिद्धयर्थं दोषारोपः कृतस्त्वयि । कृतः परोपकारार्थं तथा कीर्त्यं तवापि च ॥४७॥  
 शिक्षार्थं सकलान्लोकान् तज्जातं च त्वयापि हि । यर्थते मुनयः सर्वे तव सत्रेऽननिमिते ॥४८॥  
 शतशो भोजनं चक्रुस्तथा भुक्तं मयाऽपि च । तदा कुतो महत्कीर्तिस्तव मे रघुनदन ॥४९॥  
 इति निश्चित्य हृदये मया पूर्वं हिताय हि । लोकानां च कृतो यत्नस्त्वयि दोषानुकीर्तनैः ॥५०॥  
 नोचेद्यावासमुद्योगः कथं राम भवेत्तत्र । यत्र यत्र च देशेषु तीर्थैर्पूपवनेषु च ॥५१॥  
 आश्रमारामग्रामेषु नदीवनगिरिघ्रपि । ये ये जनाश्च सर्वत्र नानाकर्मसु तत्पराः ॥५२॥  
 तत्र दर्शनलाभस्तु तेषां जातः सुखप्रदः । तत्राहं कारणं मन्ये चात्मानं रघुनन्दन ॥५३॥  
 ममालमुपकारस्तु जनैः सर्वत्र कीर्त्यते । कुंभोदरप्रसादेन नः सीतारामदर्शनम् ॥५४॥  
 जातं विषयलुब्धानामिति मे कृतकृत्यता । जाता समंततः कीर्तिस्त्वयि दोषानुकीर्तनात् ॥५५॥  
 तवापि कीर्तिः सर्वत्र जाताऽत्र रघुनंदन । रामेश्वराश्च सर्वत्र रामतीर्थान्यनेकशः ॥५६॥  
 यावद्भूम्यां प्रगीयेत तावत्कीर्तिस्तवापि च । अन्यच्च लोकशिक्षाऽपि जाता मद्रावयकारणात् ॥५७॥  
 कुंभोदरेण मुनिना राघवस्य महात्मनः । दोषारोपः कृतः पूर्वं कथं नो न भविष्यति ॥५८॥  
 स्वदोषपरिहारार्थं राघवेण महात्मना । तीर्थयात्रा कृता पूर्वमस्माकं का कथा पुनः ॥५९॥  
 इति स्मृत्वा भयं चित्ते सर्वत्र जगतीतले । करिष्यन्ति जना यात्रा स्वदोषक्षालनाय हि ॥६०॥

बड़ी शीघ्रतासे आये और कुम्भोदरको साष्टाङ्ग प्रणाम करके हाथमें हाथ मिलाये हुए यज्ञमण्डपमें ले आये और उन्हें सुवर्णनिमित आसन बैठनेके लिए दिया ॥४१॥ कुम्भोदरने भी शीघ्र ही भूमिपर दण्ड-कमण्डलु रख-कर रघुनायक रामको प्रणाम किया ॥४२॥ रामने शीघ्र मुनिको हाथोंसे उठा लिया और वाहुओंसे दृढ़ालिङ्गन करके बोले—हे भगवन् । रावणघातक में आपको बन्दना करने योग्य नहीं हैं ॥४३॥४४॥ इस तरह रामके वाक्यबाणसे हृदयमें विद्ध कुन्भोदर रामसे कहने लगे—॥४५॥ हे राम ! हे महावाहो ! आपको इस तरह मेरे ऊपर कोष नहीं करना चाहिए । मैं आपका अपराधी हूँ । मुझे क्षमा करें ॥४६॥ मैंने स्वार्थसिद्धिके लिए आपके ऊपर दोषारोपण नहीं किया था । किन्तु संसारका उपकार करनेके लिये, आपकी कीर्तिवृद्धि-के लिए और संसारको शिक्षित करनेके लिए ही मैंने ऐसा किया था । सो आपने जान ही लिया होगा ॥४७॥ ॥४८॥ जैसे इन मुनियोंने आपके अन्नक्षेत्रमें सैकड़ों बार भोजन किया है, वैसे ही मैंने भी भोजन किया है । आपकी और मेरी कीर्ति कैसे हो, पहलेसे ही यह निश्चय करके संसारके हितके लिए मैंने आपकी निन्दा की थी ॥४९॥५०॥ अन्यथा हे राम । विभिन्न तीर्थों तथा देशोंके लिए आपकी यात्रा नहीं होती । विविध तीर्थं, नदा, वन, वर्गीचा तथा आश्रमोंमें जो मनुष्य नाना कर्मोंमें लिप्त हो रहे हैं, उनको जो आपका सुखप्रद दर्शन-लाभ हुआ । उसमें मैं अपनेको ही कारण मानता हूँ ॥५१-५३॥ सब मनुष्य सभी जगह मेरे इस उपकारका कीर्तन करते हैं । वे कहते हैं कि कुम्भोदरको कृपासे ही हम लोगोंको सीतारामके दर्शन मिल गये ॥५४॥ आपके ऊपर दोषारोपण कर देनेसे विषयी जनोंको भी आपका दर्शन प्राप्त हुआ । इसीसे मैं कृतकृत्य हो गया और चारों तरफ आपकी कीर्ति फैल गयी ॥५५॥ जबतक भूमण्डलपर विविध रामेश्वर महादेव और रामतीर्थ रहेंगे, तबतक आपकी कीर्ति संसारमें स्थिर रहेगी ॥५६॥ और फिर मेरे दुर्वाक्षियके कारण ही यह लोकशिक्षा भी हो गयी कि कुम्भोदर मुनिने जब रामजीको दोष लगाया, तब हमलोगोंको कैसे न लगेगा ॥५७॥५८॥ प्राचीन समयमें महात्मा रामचन्द्रने दोषोंको तष्ठ करनेके लिए तीर्थ किया था तो फिर हमलोगोंका तो कहना

त्वयि ब्रह्मणि पूर्णे च दोषारोपः कथं भवेत् । पद्मपत्रे जलस्पर्शो न घटेत् यथा तथा ॥६१॥  
 यस्य भ्रमंगमात्रेण ब्रह्माण्डप्रलयो भवेत् । ब्रह्माण्डान्तगतान् जीवान् हरसि त्वं यदा मुहुः ॥६२॥  
 तदा दोषानुरोपत्ते किं घटेत् जनार्दन । सर्वेषां च क्षयं मृत्युविदधाति तवाज्ञया ॥६३॥  
 तत्र संख्यात्र का कार्या त्वया दोषः कुतस्त्वति । यथा चित्राणि कुडये हि लिखितानि सहस्रशः ॥६४॥  
 संमाजितानि तेनैव तत्र दोषो भवेत्कथम् । तथा त्वमपि श्रीराम त्रिधा भूत्वा त्रिभिर्गुणः ॥६५॥  
 सृष्टि करोपि रजसा सत्यरूपेण पालनम् । तमोरूपेण संहारं विधिविष्णुशिवात्मकः ॥६६॥  
 अस्माभिस्तत्र तोपार्थं तीर्थयात्रा विधीयते । तत्र तीर्थस्तु किं रामं तीर्थोभूतगुणस्य च ॥६७॥  
 सवंतीर्थेषु मुरुया या कीर्त्यते स्वर्धुनी भूवि । तत्र दक्षिणपादस्यांगुष्ठाग्राज्ञनिता तु सा ॥६८॥  
 तवांग्रिरज्यः स्यशन्तिवित्रा कीर्तिं भूवि । तत्र पादरजोमिश्रा दृश्यतेऽद्यापि सा सिता ॥६९॥  
 रजांस्यद्यापि दृश्यन्ते तत्र भागीरथीजले । इति नानाविर्धवक्येस्तोषयामास राघवम् ॥७०॥  
 अष्टोत्तरशतं यावत् श्रीमद्रामस्तवेन च । स्तुत्वा रामं राघवेण पूजितः स्थितवान्मुनिः ॥७१॥  
 रामोऽपि गुरुसान्निधये तस्यौ सीतायमन्वितः । निजासनेषु सर्वत्र तस्युस्ते सकला जनाः ॥७२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे  
 कुम्भोदरदर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

### पञ्चमः सर्गः ( रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र )

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद सविस्तरम् । कुम्भोदरेण मुनिना यत्स्तोत्रं समुदीरितम् ॥ १ ॥  
 अष्टोत्तरशतं नाम्नां राघवस्य शुभप्रदम् । अवणे तस्य मे प्रीतिर्जाताऽस्ति कथयस्व तत् ॥ २ ॥

ही क्या है ॥ ५९ ॥ इस तरह पृथ्वीतलपर मनुष्यमात्र अपने चित्तमें भयका अनुभव करके स्वदोषपरिहाराथ तीर्थयात्रा करेंगे ॥ ६० ॥ जैसे कमलके पत्तेपर जलका स्पर्श नहीं हो सकता, वैसे ही आप पूर्ण ब्रह्ममें दोषारोप नहीं हो सकता ॥ ६१ ॥ जिसके अभूत्तमात्रसे ब्रह्माण्डमें प्रलय हो जाता है । वही आप ब्रह्माण्डान्तर्गत सब जीवों को अपनेमें विलीन करते हैं ॥ ६२ ॥ तब है जनार्दन ! आपपर दोषारोप वैसे ही सकता है ? जब आप ही की आज्ञासे मृत्यु सबका क्षय करती है ॥ ६३ ॥ तब आपने कितने दोष किये हैं ? इसकी गणना कौन कर सकता है ॥ ६४ ॥ जैसे किसीने भित्तिपर चित्र लिखा और फिर उसीने अपने हाथसे मिटा दिया । तब उसमें वया दोष हो सकता है । उसी तरह आप भी तीनों गुणोंसे तीन तरहके अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूपमें परिणत होकर रजोगुणसे सृष्टि, सत्त्वसे पालन और तमोगुणसे संहार करते हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ हम लोग आपकी प्रसन्नताके लिए ही तीर्थयात्रा करते हैं । स्वतः तीर्थस्वरूप आपको तीर्थोंसि क्या प्रयोजन है ॥ ६७ ॥ जिस गङ्गाको लोग सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ मानते हैं, वह गङ्गा आपके दाहिने पैरके अंगूठेसे उत्पन्न हुई है ॥ ६८ ॥ वह आपके चरण-रजस्पर्शसे ही पवित्र मानी गयी है । इसी वास्ते वह आज तक श्वेत दिखाई पड़तो है ॥ ६९ ॥ आज भी गङ्गाजीमें आपकी चरणरेणु दीख रही है । इस प्रकारके वाक्योंसे कुम्भोदरमुनि भगवान् रामको प्रसन्न किया ॥ ७० ॥ इसके बाद रामाष्टोत्तरशतनामसे रामकी स्तुति करके और रामके द्वारा पूजित होकर वे यथास्थान बैठ गये ॥ ७१ ॥ रामजी भी गुरुके समीप सीताके साथ जा बैठे । अन्यान्य लोग भी अपने अपने आसनोंपर विराजमान हो गये ॥ ७२ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे कुम्भोदरदर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीविष्णुदास बोले—हे गुरु ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ । जो प्रश्न मैं पूछना चाहता हूँ, उसका आप विस्तृत उत्तर दीजिए ॥ १ ॥ कुम्भोदर मुनिने गमके जो अष्टोत्तरशत नामोंका शुभप्रद स्तोत्र कहा

## श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य महाबुद्धे सम्यक् पृष्ठं त्वया मम । अष्टोत्तरशतं नाम्नां राघवस्य वदाम्यहम् ॥ ३ ॥  
 सर्वेश्वरः सर्वमयः सर्वभूतोपकारकः । सर्वेषामुकारार्थं यः साकारो निराकृतिः ॥ ४ ॥  
 स भवत्येव लोकेऽस्मिन् संसारभयनाशनः । यदा यदा हि लोकानां भयमुत्पद्यते तदा ॥ ५ ॥  
 अवतीर्याक्षरोच्छ्रीमान् दुष्टदैत्यविमर्दनम् । मत्स्यकूर्मवराहादिरूपेण परमार्थदृक् ॥ ६ ॥  
 तत्कालेषु च सर्वेषु सर्वेषामुपकारकृत् । साधुनां समचित्तानां भक्तानां भक्तवत्सलः ॥ ७ ॥  
 उपकर्तुं निराकारः सदाकारेण जायते । अजाऽयं जायतेऽनन्तो विश्रुतो भूतभावनः ॥ ८ ॥  
 तदा तदाऽवतरति भक्तानामनुकंपया । क्षीरावधौ देवदेवेशो लक्ष्मीनारायणो विभुः ॥ ९ ॥  
 अशेषैः शंखचक्राभ्यां देवैर्ब्रह्मादिभिः सह । शेषोऽभूलक्ष्मणो लक्ष्मीर्जनकी शंखचक्रके ॥ १० ॥  
 जातौ भरतशत्रुघ्नौ देवाः सर्वेऽपि वानराः । आसन् पुरैव सर्वेऽपि देवानां भयशातये ॥ ११ ॥  
 तत्र नारायणो देवः श्रीराम इति विश्रुतः । सर्वलोकोपकाराय भूमौ स्वयमवातरत् ॥ १२ ॥  
 ध्यानमात्रेण देवेशो महापातकनाशकृत् । कीर्तनश्वरणाभ्यां च हत्याकोटिनिवारणः ॥ १३ ॥  
 कलौ स कीर्तनेनैव सर्वं पापं व्यपोहति । राम रामेति रामेति ये वदन्त्यतिषापिनः ॥ १४ ॥  
 पापकोटिसहस्रेभ्यस्तानुद्धरति नान्यथा । अष्टोत्तरशतं नाम्नां तस्य स्तोत्रं वदाम्यहम् ॥ १५ ॥

ॐ अस्य श्रीरामचन्द्रनामाष्टोत्तरशतमंत्रस्य ब्रह्मा ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । जानकीवल्लभः श्रीरामचन्द्रो देवता । ॐ बीजम् । नमः शक्तिः । श्रीरामचन्द्रः कीलकम् । श्रीरामचन्द्रप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः । ॐ नमो भगवते राजाधिराजाय परमात्मने हृदयाय नमः । ॐ नमो भगवते विद्याधिराजाय हृषीक्राय शिरसे स्वाहा । ॐ नमो भगवते जानकीवल्लभाय नमः शिखायै चपट् ।

है, उसे सुननेकी मेरी प्रबल इच्छा है । वह कहिए ॥ २ ॥ श्रीरामदास बोले—हे महाबुद्धे शिष्य ! सुनो ! तुमने अच्छा प्रश्न पूछा है । मैं तुम्हें रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र सुना रहा हूँ ॥ ३ ॥ राम सर्वेश्वर हैं, सर्वमय हैं और सब प्राणियोंका उपकार करनेवाले हैं । वे निराकार होते हुए भी संसारके कल्याणार्थं साकार मनुष्यदेह धारण करते हैं ॥ ४ ॥ जब-जब प्रजाको भय होता है, तब-तब उस भयको नष्ट करनेके लिये वे इस लोकमें अवतीर्ण होते हैं ॥ ५ ॥ अवतीर्ण होकर वे मत्स्य-कूर्म-वराहादि रूपसे जनशत्रुओंका विनाश करते हैं । भगवान् जो कुछ करते हैं, वह सब परमार्थकी हृषिसे ही करते हैं ॥ ६ ॥ वे भक्तवत्सल प्रभु समदर्शी हैं । साधुओं और भक्तोंके उपकारार्थं निराकार होते हुए भी अल्पकालमें ही साकार हो जाते हैं । वे भूतभावन प्रभु अनन्त एवं अज हैं और इन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध हैं । वे समय-समयपर भक्तोंपर अनुकूल्या करके अवतीर्ण होते हैं । वे देवदेव हन्द्रके भी शासक हैं । वे क्षीरसागरमें प्रायन करते हैं और सर्वत्र व्यापक हैं ॥ ७-९ ॥ वे ही लक्ष्मीनारायण अखिल देवोंके साथ त्रैलोक्यके भयशान्त्यर्थं रामरूपसे संसारमें अवतीर्ण हुए । शेष लक्ष्मण बने । लक्ष्मी जानकी बनीं और भगवान् के पांचद शंख-चक्र भरत-शत्रुघ्नके रूपमें उत्पन्न हुए और सब देवता वानर बने ॥ १० ॥ ११ ॥ जो श्रीराम इसी नामसे प्रसिद्ध हैं, वे सांकाशत् नारायण हैं और लोकोपकारार्थं संसारमें स्वयं अवतरे हैं ॥ १२ ॥ उन भगवान् रामके ध्यानमात्रसे महापातक भी नष्ट हो जाते हैं । वे कीर्तन-श्वरण करनेसे कोटि हत्याओंके पापका भी निवारण कर देते हैं ॥ १३ ॥ वे भगवान् कलिमें नाम-कीर्तन करनेसे ही सब पापोंको नष्ट कर देते हैं । जो धोर पापी भी रामनाम उच्चारण करते हैं तो राम उनका सहस्रकोटि पापोंसे उद्धार कर देते हैं । उन भगवान् के अष्टोत्तरशतनामस्तोत्रको कहता है ॥ १४ ॥ १५ ॥ रामचन्द्रके इस अष्टोत्तर शतनाम मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि हैं ! अनुष्टुप् छन्द है । जानकीवल्लभ श्रीरामचन्द्रजो इसके देवता हैं । ॐ बीज है । नमः शक्तिः है । श्रीरामचन्द्र कीलक हैं । श्रीरामप्रीत्यर्थं इसका विनियोग होता है । ॐ हृदयमें बैठे हुए राजाधिराज परमात्मास्वरूप भगवान् को वारम्बार नमस्कार है । मस्तकमें विराजमान विद्याधिराज हृषीक्राय भगवान् को नमस्कार हैं । शिखामें विराजमान जानकीवल्लभ भगवान् को नमस्कार और

ॐ नमो भगवते रघुनंदनायामिततेजसे कवचाय हुम् । ॐ नमो भगवते क्षीराविधमध्यस्थाय नारायणाय नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ नमो भगवते सत्प्रकाशाय रामाय अख्याय फट् । इति षडंगन्यासः । एवं अंगुलिन्यासः कार्यः ।

अथ व्यानम्

मन्दाराकृतिपुण्यधामविलसद्विषःस्थलं कोमलं शांतं कांतमहेन्द्रनीलरुचिराभासं सहस्राननम् । वंदेऽहं रघुनंदनं सुरपाते कोदण्डदीक्षा गुरुं रामं सर्वजगन्सुसेवितपदं सीतामनोवलुभम् ॥१६॥ सहस्रशीर्णो वै तुभ्यं सहस्राक्षाय ते नमः । नमः सहस्रदस्ताय सहस्रचरणाय च ॥१७॥ नमो जीमृतवर्णाय नमस्ते विश्वतोमुख । अच्युताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शेषशायिने ॥१८॥ नमो हिरण्यगर्भाय पञ्चभूतात्मने नमः । नमो मूलप्रकृतये देवानां हितकारिणे ॥१९॥ नमस्ते सर्वलोकेश सर्वदुःखनिष्ठृदन । शंखचक्रनदापशजटामुकुटधारिणे ॥२०॥ नमो गर्भाय तत्त्वाय ज्योतिषां ज्योतिषे नमः । ॐ नमो वासुदेवाय नमो दशरथात्मज ॥२१॥ नमो नमस्ते राजेन्द्रं सर्वसम्पत्प्रदाय च । नमः कारुण्यरूपाय कैकेयीप्रियकारिणे ॥२२॥ नमो दांताय शांताय विश्वाजित्रप्रियाय ते । यज्ञेशाय नमस्तुभ्यं नमस्ते क्रतुपालक ॥२३॥ नमो नमः केशवाय नमो नाशाय शार्ङ्गिणे । नमस्ते रामचन्द्राय नमो नारायणाय च ॥२४॥ नमस्ते रामचन्द्राय माधवाय नमो नमः । गोविन्दाय नमस्तुभ्यं नमस्ते परमात्मने ॥२५॥ नमस्ते विष्णुरूपाय रघुनाथाय ते नमः । नमस्तेऽनाथनाथाय नमस्ते मधुसूदन ॥२६॥ त्रिविक्रम नमस्तेऽस्तु सीतायाः पतये नमः । वामनाय नमस्तुभ्यं नमस्ते राघवाय च ॥२७॥ नमो नमः श्रीधराय जानकीवलुभाय च । नमस्तेऽस्तु हपीकेश कंदपाय नमो नमः ॥२८॥

वषट्कार है । बाहुओंमें कवचरूपेण विद्यमान अमिततेजा उन रघुनन्दनको नमस्कार है, जिनके हुङ्कारमात्रसे सब शत्रु नष्ट हो जाते हैं । नेत्रोंमें वौषट् अर्धांत् ज्योतिरूपेण विद्यमान तथा क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान्को नमस्कार है । अस्त्रस्वरूप, फट्स्वरूप और सत्प्रकाश स्वरूप रामको नमस्कार है । इस प्रकार भगवान्को छहों अङ्गोंमें न्यास अर्धांत् विराजमान करे । इसी तरह अंगुलियोंमें न्यास करे । अब यहसे एक श्लोकमें रामका ध्यान करके स्तोत्र आरंभ होता है । जिनको भनोहर आकृति है । जो पुण्यधाम है । मालाओंसे जिनका वक्षःस्थल सुशोभित हो रहा है । जो कोमल एवं शान्त है । जो सुन्दर महेन्द्रनीलमणिकी कान्तिके समान सुशोभित हैं । जो घनुर्वेदकी शिक्षामें संसारके गुरु हैं । संसार जिनके चरणोंको पूजता है, उन सुरपति तथा सीताके प्राणवल्लभ रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१६॥ हे राम ! सहस्र मस्तकवाले आपको नमस्कार है । मेघके समान कान्तिवाले आपको नमस्कार है । हे विश्वतोमुख ! आपको नमस्कार है । अच्युतको नमस्कार हैं । शेषशायीको प्रणाम है ॥१७॥१८॥ हि रिण्यगर्भको प्रणाम है । पञ्चभूतात्माको प्रणाम है । मूलप्रकृतिको नमस्कार है ॥१९॥ हे सर्वलोकनाथ ! सब दुःखोंको दूर करनेवाले ! आपको प्रणाम है । हे शंख चक्र गदा पद्म तथा जटा-मुकुट धारण करनेवाले राम आपको नमस्कार है ॥२०॥ गर्भस्वरूप आपको प्रणाम है । तस्त्रस्वरूपको प्रणाम है । ज्योतिषों-की भी ज्योतिको नमस्कार है । वसुदेवके पुत्रको प्रणाम है । दशरथपुत्र रामको प्रणाम है ॥२१॥ हे राजेन्द्र ! सब संपत्ति देनेवाले आपको प्रणाम है । हे दयाके मूर्त्तस्वरूप तथा कैकेयीके प्रिय करनेवाले ! आपको नमस्कार है ॥२२॥ दांत, शांत एवं विश्वामित्रके प्रियकर्ता आपको प्रणाम है । हे यज्ञेश ! हे क्रतुपालक ! आपको प्रणाम है ॥२३॥ केशवको नमस्कार है । शार्ङ्गीको नमस्कार है । रामचन्द्रके लिए नमस्कार है । नारायणके क्रिए नमस्कार है ॥२४॥ हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है । हे माधव ! आपको प्रणाम है । हे गोविन्द ! है परमात्मन् ! आपको नमस्कार है ॥२५॥ हे विष्णुस्वरूप रघुनाथ ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे दीनोंके नाय मधुसूदन ! आपको प्रणाम है ॥२६॥ हे त्रिविक्रम ! हे सीतापते ! हे वामन ! हे रामचन्द्र । है

नमस्ते पश्चानाभाय कौसल्याहर्षकारिणे । नमो राजोवनदन नमस्ते लक्ष्मणग्रज ॥२९॥  
 नमो नमस्ते काकुत्स्य नमो दामोदराय च । विभीषणपरित्रातर्नमः संबोधया च ॥३०॥  
 वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते शकरप्रिय । प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिहृदाय ते नमः ॥३१॥  
 सदसद्गत्तिरूपाय नमस्ते पुरुषोत्तम । अधोक्षज नमस्तेऽस्तु सप्ततालहराय च ॥३२॥  
 स्वरदूषणसंहत्रे श्रीनृसिंहाय ते नमः । अच्युताय नमस्तुभ्यं नमस्ते सेतुबन्धक ॥३३॥  
 जनार्दन नमस्तेऽस्तु नमो हनुमदाश्रय । उपेन्द्रचन्द्रवंशाय मारीचमथनाय च ॥३४॥  
 नमो बालिप्रहरण नमः सुग्रीवराज्यद । जामदग्न्यमहादर्पणहराय हरये नमः ॥३५॥  
 नमो नमस्ते कृष्णाय नमस्ते भरताग्रज । नमस्ते पितृभक्ताय नमः शत्रुघ्नपूर्वज ॥३६॥  
 अयोध्याधिपते तुभ्यं नमः शत्रुघ्नसेवित । नमो नित्याय सत्याय बुद्ध्यादिज्ञानरूपिणे ॥३७॥  
 अद्वैतब्रह्मरूपाय ज्ञानगम्याय ते नमः । नमः पूर्णाय रम्याय माधवाय चिदात्मने ॥३८॥  
 अयोध्येशाय श्रेष्ठाय चिन्मात्राय परात्मने । नमोऽहल्योदारणाय नमस्ते चापमञ्जिने ॥३९॥  
 सीतारामाय सेव्याय स्तुत्याय परमेष्ठिने । नमस्ते वाणहस्ताय नमः कोदण्डधारिणे ॥४०॥  
 नमः कवन्धहन्त्रे च बालिहन्त्रे नमोऽस्तु ते । नमस्तेऽस्तु दशग्रीवप्राणसंहारकारिणे १०८ ॥४१॥  
 अष्टोत्तरशतं नाम्नां रामचन्द्रस्य पावनम् । एतत्प्रोक्तं मया श्रेष्ठं सर्वपातकनाशनम् ॥४२॥  
 प्रचरिष्यति तत्त्वोके प्राण्यदृष्टवशाद्वद्विज । तस्य कीर्तनमात्रेण जना यास्यति सद्गतिम् ॥४३॥  
 तावद्विजम्भते पाप ब्रह्मदत्यापुरःसरम् । यावद्भामाष्टकशतं पुरुषो न हि कीर्तयेत् ॥४४॥  
 तावत्कलेमहोत्साहो निःशकं सप्रवर्तते । यावच्छ्रौरामचन्द्रस्य शतनाम्नां न कीर्तनम् ॥४५॥  
 तावद्यमभटाः क्रूराः संचरिष्यन्ति निर्भयाः । यावच्छ्रौरामचन्द्रस्य शतनाम्नां न कीर्तनम् ॥४६॥  
 तावत्स्वरूपं रामस्य दुर्बोधं प्राणिनां स्फुटम् । यावद्भ निष्ठ्या रामनाममाहात्म्यमुत्तमम् ॥४७॥

आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ २७ ॥ हे श्रोघर ! हे जानकावल्लभ ! हृषीकेश ! कन्दपं ! मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ २८ ॥ हे पद्मनाभ ! हे कौसल्याहर्षकारिन् ! कमलनयन ! लक्ष्मणग्रज ! मैं आपको पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ २९ ॥ हे काकुत्स्य ! दामोदर ! संकर्षण ! विभीषणसंरक्षक ! आपको मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ ३० ॥ हे वासुदेव ! शकरप्रिय ! प्रद्युम्न ! अनिरुद्ध ! मैं आपको पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ ३१ ॥ हे सदसद्गत्तिरूप ! पुरुषोत्तम ! अधोक्षज ! सप्ततालहर ! आपको कोटिशः प्रणाम है ॥ ३२ ॥ हे स्वरदूषणहन्ता ! श्रीनृसिंह ! अच्युत ! सेतुबन्धकारिन् राम ! आपको कोटिशः प्रणाम है ॥ ३३ ॥ हे जनार्दन ! हनुमदाश्रय ! उपेन्द्रचन्द्रवन्धो ! मारीचमथनकारिन् । आपको कोटिशः प्रणाम है ॥ ३४ ॥ हे बालिप्रहरण ! सुग्रीवराज्यद । जामदग्न्य ! महादुःखहर हरे । आपको कोटिशः प्रणाम है ॥ ३५ ॥ हे कृष्ण ! भरताग्रज ! पितृभक्त ! शत्रुघ्नपूर्वज ! मैं आपका सहस्रों बार प्रणाम करता हूँ ॥ ३६ ॥ हे अयोध्याधिपते ! शत्रुघ्नसेवित ! नित्यसत्य ! बुद्ध्यादिज्ञानकारिन् ! आपको प्रणाम है ॥ ३७ ॥ हे अद्वैत अद्यारूप ! ज्ञानगम्य ! माधव ! पूर्ण ! रम्य ! चिदात्मन् ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३८ ॥ हे अयोध्येश ! श्रेष्ठ ! चिन्मात्र ! परमात्मन् ! अहल्योदारक ! शत्रुघ्नञ्जिन् ! आपको प्रणाम है ॥ ३९ ॥ हे सीतासेव्य ! स्तुत्य ! परमेष्ठिन् । वाणहस्त ! शत्रुघ्नरिन् ! आपको अनेकशः प्रणाम है ॥ ४० ॥ हे कवन्धहन्तः ! पापिहन्तः ! दशग्रीवप्राणसंहारकारिन् ! मैं आपको पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ ॥ ४१ ॥ सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला श्रेष्ठ एवं पावन रामचन्द्रका यह अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र मैंने तुमसे कहा ॥ ४२ ॥ हे द्विज ! जो प्राणी अपने दुर्भाग्यवश इस लोकमें भ्रमण करते हैं । इस स्तोत्रके पठनमात्रसे वे सद्गतिको प्राप्त होंगे ॥ ४३ ॥ ब्रह्महत्यादि पाप तभीतक उपद्रव करते हैं, जब तक पुरुष इस स्तोत्रका पाठ नहीं करता ॥ ४४ ॥ प्राणीमें तभी तक करिका प्रवेश रहता है, जब तक वह रामचन्द्रके इस स्तोत्रका मनन-पठन नहीं करता ॥ ४५ ॥ तभीतक भयंकर यमराजके योद्धा निभय विचरण करते हैं, जब तक प्राणी इस स्तोत्रका पाठ नहीं करता ॥ ४६ ॥ तभीतक रामका स्वरूप प्राणियोंको

कांतिं पठितं चित्ते धृतं संस्मारितं मुदा । अन्यतः शृणुयान्मन्यः सोऽपि मुच्येत् पातकात् ॥४८॥  
त्रिग्रहत्यादिपापानां निष्कृतिं यदि चालति । रामस्तोत्रं मासमेकं पठित्वा मुच्यते नरः ॥४९॥  
दुष्प्रतिग्रहदुभोज्यदुरालापादिसम्भवम् । पापं सकृत्कीर्तनेन रामस्तोत्रं विनाशयेत् ॥५०॥  
श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च । अहैति नाल्यां श्रीरामनामकीर्तिकलामपि ॥५१॥  
अष्टोनवशतं नाम्नां सीतारामस्य पावनम् । अस्य संकीर्तनादेव सर्वान् कामाङ्गुमेभरः ॥५२॥  
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी धनमाप्नुयात् । स्त्रियं प्राप्नोति पत्न्यर्थी स्तोत्रपाठश्रवादिना ॥५३॥  
कुमोदरेण मुनिना येन स्तोत्रेण राघवः । स्तुतः पूर्वं यज्ञवाटे तदेतत्त्वा मयोदितम् ॥५४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यामाकाण्डे  
श्रीरामनामाष्टोत्तरशतस्तोत्रं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

### षष्ठः सर्गः

( रामकी दिनचर्या )

श्रीरामदास उवाच

अथ कुमोदरे दिव्ये आमनोपरि संस्थिते । यज्ञस्तम्भे इयामकणं बबन्धुस्ते हि ऋत्विजः ॥ १ ॥  
तस्याङ्गानि समस्तानि पृथग् मन्त्रैर्यथाविधि । सम्पन्न्यापि शमित्रा तं निहन्युद्दिंजपुङ्गवाः ॥ २ ॥  
तन्म/सखण्डैराज्याक्तैर्होमं चक्रः सविस्तरम् । तथा नानाविधैर्दृव्यैः सकुपायसगोघृतैः ॥ ३ ॥  
मध्वाक्ततिलद्वार्यैः समिधाभिष्ठ सादरम् । गोघृतेन वसोधारां वह्नौ स्थूलामखण्डिताम् ॥ ४ ॥  
गोमुखेनोर्ध्वं वदेन ददुर्मन्त्रैः सविस्तरम् । चिरकालं होमकुण्डे यावद्यज्ञसमापनम् ॥ ५ ॥  
तदा धूमचर्यैर्यासमाकाशं च ममन्ततः । नाश्चापि दृश्यते शुभ्रं नीलवर्णं प्रदृश्यते ॥ ६ ॥  
चैत्रमासे महापूष्ये वसन्ततौ सुखावहे । एवं प्रवर्तयामासुर्वाजिमेधं मुनीश्वराः ॥ ७ ॥

दुर्वोध्य रहता है, जबतक इस उत्तम स्तोत्रमें निष्ठा नहीं होती ॥ ४७ ॥ जो इसको पढ़ता और कीर्तन करता है, जो इसे चित्तमें धारण करता है, प्रेमसे स्मरण करता है और औरोसे सुनता है, वह भी पातकोंसे छूट जाता है ॥ ४८ ॥  
जो ब्रह्मग्रहत्यादि पापोंकी निष्कृति चाहता हो, वह पुरुष एक महीने इसका पाठ करे ॥ ४९ ॥ इसके एक बार कीर्तन करनेसे मनुष्य दुष्प्रतिग्रह, दुर्भाग्य तथा दुरालापादिजन्य पापोंसे छूट जाता है ॥ ५० ॥ श्रुति-स्मृति-पुराण-इतिहास-आगम (वेद) और स्मृति इसकी सोलहवीं कलाको भी नहीं पहुँचते ॥ ५१ ॥ श्रीसीतारामके इस पावन अष्टोत्तरशतनामका जो मनुष्य पाठ करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। इसका पाठ एवं श्रवण करनेसे पुत्रार्थीको पुत्र, धनार्थीको धन और स्त्री चाहनेवालेको स्त्री मिलती है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अगस्त्य मुनिने जिस स्तोत्रके द्वारा अश्वमेघ यज्ञमें रामचन्द्रकी स्तुति की थी, वही स्तोत्र मैंने तुमसे कहा है ॥ ५४ ॥  
इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यामाकाण्डे श्रीरामनामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदास बोले—इसके अनन्तर कुमोदर मुनि दिव्य आसनपर बैठ गये । उधर ऋत्विक् लोगोंने यज्ञस्तम्भमें इयामकणं अश्वको बाँध दिया ॥ १ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके अंगोंको शास्त्रानुसार मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके ब्राह्मणोंने उसका वध किया ॥ २ ॥ तब धृतमें सने हुए धोड़ेके मांसखण्डों एवं सकृ पायस गोघृत आदि नाना द्रव्योंसे ऋत्विक् लोग हवन करने लगे ॥ ३ ॥ वे ही मधुमें सने हुए तिल, दूर्वा, समिधा तथा गोघृतकी अखंड एवं स्थूल वसोधाराको अग्निमें छोड़ने लगे ॥ ४ ॥ चिरकाल पर्यन्त जब तक यज्ञ समाप्त वहीं हुआ, तबतक वे ऊपर बैंधे हुए गोमुखके द्वारा होमकुण्डमें समन्त्र आहुति देते रहे ॥ ५ ॥ इससे सम्पूर्ण आकाश-मंडल धूमसमूहसे व्याप्त हो गया । उसीके कारण आज भी आकाश श्वेत नहीं, नीला ही दीखता है । सुखावह वसन्त ऋतु एवं पुनीत चैत्रमासमें इस तरह वे मुनीश्वर लोग वह अश्वमेघ यज्ञ कर रहे थे ॥ ६ ॥ ७ ॥

ईजुस्ते यज्ञविधिना अग्निहोत्रादिलक्षणं । प्राकृतं यज्ञनैर्ज्ञेदव्यज्ञानकिंगेश्वरम् ॥८॥  
 प्रत्यहं प्रातरुत्थाय रामचंद्रः समातया । नन्या शभुं विधि देवान् मुर्मिंश्चापि पूज्यक् पूज्यक् ॥९॥  
 कौसल्याद्याश्च मातृश्च कामधेनु हृदि स्थितम् । चित्तामणि कौस्तुभं च कठे वद्दु गविप्रमम् ॥१०॥  
 पुष्टपकं यज्ञवाटस्य देवतां यज्ञपूरुषम् । ततो गत्या रामताथे स्नात्वा रामो यथाविधि ॥११॥  
 कृत्वा नित्यविधिं सर्वं पूजयामास शंकरम् । उपहारान् समर्प्याय कामधेनुपमुद्भान् ॥१२॥  
 समानीतान् रत्नपात्रैः सीतया रघुनंदनः । ततः संपूज्य तां धेनु विधि पूज्य सविस्तरम् ॥१३॥  
 ऋत्विज्ञनं तु संपूज्य तस्थौ म गुरुमन्त्रिधाँ । प्रभाते ऋत्विजः सर्वे महरा मुत्त्वराः ॥१४॥  
 स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा तस्युपेन्जस्य मंडपे । रामाज्याऽय सौमित्रिनृशादानां प्रपूजनम् ॥१५॥  
 दिव्यैर्नानोपहाराद्यैः कामधेनुपमुद्भवैः । ततश्चकार सौमित्रिनृशादीनां प्रपूजनम् ॥१६॥  
 तथा सीताज्या स्त्रीणामुमिला लक्ष्मणप्रिया ॥१७॥

मांडवीं श्रुतकीर्तिं श्रवाश्वकुः प्रपूजनम् । अथ ते ऋत्विजश्चकुः स्वाहाकारैर्यथाविधि ॥१८॥  
 होमं नानाविधैद्रव्यैः सुगन्धर्घमडपे । पुरोडाशान् वरान् दिव्यानश्चन् रामोऽपि सातया ॥१९॥  
 वाजिमेधे राघवस्य साक्षादेवाः स्वयं मुदा । हर्वाणि भक्षयामासु स्त्यक्तमात्राणि पावके ॥२०॥  
 अस्तु श्रीषट्ठिति प्रोचुर्वाद्यवोपः स मेघवत् । श्रूयते यज्ञशालासु सर्वं ऋत्विजर्हीर्तिः ॥२१॥  
 मध्ये कुड महारम्य व्यासमृत्विज्ञनैः शुभम् । ततो मुनीश्वराः सर्वे ततो देवाः समंततः ॥२२॥  
 ततः सर्वाः स्त्रियः श्रेष्ठास्ततो विद्याधराः स्थिताः । ततो यक्षाश्च गधर्वाः किञ्चराः प्लवगोत्तमाः ॥२३॥  
 ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे ततस्तेषां तु सेवकाः । ततः स्थिता वारनार्यस्ततो मागधवंदिनः ॥२४॥  
 ददशुः संस्थिता यज्ञमंडपे यज्ञकौतुकम् । मध्याह्नावधि हुत्वा ते ऋत्विजश्च सविस्तरम् ॥२५॥

द्रव्यज्ञान एवं किंवाओमे निषुण वैदिक अग्निहोत्रादिको प्राकृत एवं वैदिक विधियोंमें शास्त्रानुसार यज्ञ कर रहे थे ॥८॥ रामचन्द्रजी नित्य प्रातःकाल उठ तथा शीचादि क्रियाओंसे निवृत्त होकर शंभु, ब्रह्मा एवं अन्यान्य देवताओंको, मुनियोंको, कामधेनुको, हृदयस्य चिन्तामणिको, कंठबद्ध सूर्यके समान कान्तमान् कौस्तुभमणिको, पुष्टपक विमानको, यज्ञके देवता तथा यज्ञ भगवान्को प्रणाम करते थे ॥९॥१०॥ उसके बाद यथाविधि रामतोथं में जाकर स्नान करते थे ॥११॥ इसके अनन्तर समूर्ण देविक छृत्य करते और कामधेनुसे प्राप्त उपहारोंकी भेट देते थे ॥१२॥ सीताके द्वारा रत्नपात्रोंमें लाये गये संभारसे कामधेनुको पूजा करनेके बाद विस्तारपूर्वक ब्रह्माको पूजा करते थे ॥१३॥ तदनन्तर ऋत्विजोंको पूजा करके आचार्यकं पास बैठ जाते थे । ऋत्विक्, होता एवं सब मुनीश्वर भी नित्यकर्मोंको समाप्त करके यज्ञमण्डपमें बैठ जाते थे । रामको आज्ञासे लक्ष्मणजो उनकी पूजा करते थे ॥१४॥१५॥ बादमें कामधेनुसे उत्पन्न नाना प्रकारके स्वर्गीय उपहारोंसे राजाओंकी पूजा करते थे ॥१६॥ दिव्य वस्त्राभरणों तथा विविध पववान्नोंसे लक्ष्मणप्रिया उमिला एवं माण्डवी-श्रुतकीर्ति प्रभूति स्त्रियाँ भी सीताके आज्ञानुसार सब स्त्रियोंका पूजन करता थीं ॥१७॥ इस तरह द्रव्येक मनुष्यकी यथायोग्य पूजा हो चुकनेके बाद ऋत्विक् लोग स्वाहाकारों तथा विविध सुगन्धित द्रव्योंसे यज्ञमण्डपमें हवन करते थे ॥१८॥ सीता और राम इष्टियोंकी समाप्तिपर श्रेष्ठ एवं दिव्य पुरोडाशोंको खाते थे ॥१९॥ रामचन्द्रजीके अश्रमेष्य यज्ञमें देवता प्रत्यक्ष प्रकट होकर बड़े आनन्दसे अग्निमें प्रक्षिप्त द्रव्योंको खाते थे ॥२०॥ ऋत्विक् लोग 'अस्तु श्रीषट्' इस प्रकार बोलते थे और वाजे वजाते थे । जिनका मेवध्वनिकी तरह गम्भीर धोप समस्त यज्ञशालामें सुनायी पड़ता था ॥२१॥ मध्यमें रमणोय एवं ऋत्विक् जनोंसे व्याप्त हवनकुण्ड था । उसके पास मुनीश्वर बैठे थे । चारों तरफ देवता बैठे थे ॥२२॥ इसके बाद समूर्ण स्त्रियाँ थीं । उनके बाद विद्याधर बैठे थे । उनके बाद यज्ञ, यक्षोंके बाद गन्धर्व, गन्धर्वोंके बाद किञ्चर, किञ्चरोंके बाद बन्दर, उनके बाद क्षत्रिय, उनके बाद सेवकवर्ग, उनके बाद वेश्यायें, उनके बाद मागध और वैदोजन बैठे थे ॥२३॥२४॥ इस तरह अपने-अपने स्थानोंपर बैठे हुए सब लोग यज्ञका कौतुक देते रहे थे ॥२५॥

ततो माध्याह्निकं कर्तुं ययुस्तां सरयुं नदीम् । कृत्वा माध्याह्निकं कर्म गत्वा तु यज्ञमंडपे ॥२६॥  
हैमामने तु सर्वत्र नेभिरेखोपमे स्थितः । देवाश्वापोश्वागायास्ते तस्युदिव्यासनोपरि ॥२७॥  
लक्ष्मणस्तान् प्रपूज्याथ भरतेन स शत्रुहा । सस्थप्य हेमपात्राणि सर्वेषां पुरतस्तदा ॥२८॥  
जानकीं त्वरयामास परिवेषणकमाणि । अथ सातोर्भिला रम्या तथा सा मांडवी शुभा ॥२९॥  
श्रुतकीर्तिमंत्रिपत्न्यः सुहत्पत्न्यः सहस्रशः । परिवेषणकमाणि चक्रस्ता यज्ञमंडपे ॥३०॥  
नानाविघवराज्ञैश्च कामधेनुभमुद्धर्वः । मुनीश्वरादिकाः सर्वे तोषमापुस्तदाऽध्वरे ॥३१॥  
मातादीनां हि नारीणां तदा यज्ञस्य मटपे । नृपुराणां किंकिणीनां शुश्रुते सर्वतो ध्वनिः ॥३२॥  
यथेच्छ भुजतां सर्वे याच्यतां यदृदि स्थितम् । मा शंका भोजने कार्या त्यक्तव्य यज्ञ रोचते ॥३३॥  
अयाचितानि देयानि पकाश्वानि यथारुचि । अखडिताज्यधाराऽत्र कार्या राघवशासनात् ॥३४॥  
गृह्णतां किंचिद्चुस्ते नेति नेति द्विजाः पुनः । इति भोजनकाले वै शुश्रुते सर्वतो ध्वनिः ॥३५॥  
किंचिदपेक्षितं स्वामिन्निति रामेण प्रार्थिताः । चक्रुस्ते भोजनं सर्वे वीजिता व्यज्ञनादिभिः ॥३६॥  
जलंरुणोदकंशकः करश्चुद्दि मुनीश्वरी । ततो गृहीततांचूला मुनयस्ते तु निर्जरा: ॥३७॥  
गृहीत्वा हंममुद्रां हि राघवेण पृथक् पृथक् । समपिंतां दक्षिणार्थं जग्मुवासस्थलानि हि ॥३८॥  
ततः पूर्वोपिचाराद्यैः कथितरेव पार्थिवाः । चक्रुस्ते भोजनं सर्वे चक्रुवैश्यास्ततः परम् ॥३९॥  
स्त्राणां भोजनशालासु पूर्वं भुक्त्वाऽपरस्त्रियः । साहेता मुनिपत्नीभिस्ततस्ताः भक्त्रियस्त्रियः ॥४०॥  
चक्रुवै भोजनं सर्वाः सोतया प्रार्थिता मुद्दुः । ततो वैश्यात्रयश्चकः पौरनार्यस्ततः परम् ॥४१॥  
ततः शूद्रात्रयश्चार्प मुदा चक्रुश भोजनम् । शालासु पुरुषाणां च ततो वानरराक्षसाः ॥४२॥  
ऋक्षाः पौरा जानपदाश्वकुर्मोजिनमुत्तमम् । ततः शूद्राद्यः सर्व ततः पार्थिवसेवकाः ॥४३॥

कृतिवक् लोग मध्याह्नपवन्त विस्तारपूर्वक हृवन करके माध्यन्दिन कृत्य करनेके लिए सरयूपर जाते थे ॥ २६ ॥ माध्याह्निक कर्म करके वे यज्ञमण्डपम निर्माणनिर्मित बासनपर वड जाते थे । इसी तरह अपना अपना कृत्य समाप्त करके देवता भां दिव्यासनपर विराजत थे ॥ २७ ॥ बादम भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न उनका पूजा करके सुवर्णके भोजनपात्र उनके सामने रख देत थे ॥ २८ ॥ तब भगवान् रामचन्द्र भोजन परासनके लिए साताका आज्ञा देते थे । तब साता, उमिला, माण्डवी, श्रुतकीर्ति एवं हुजारा मित्रपत्निया परासती थीं ॥ २९ ॥ ३० ॥ नाना प्रकारका उन उत्कृष्ट भोजनसामग्रियोंसे वे मुनीश्वरादिक अत्यन्त प्रसन्न होते थे ॥ ३१ ॥ जिस समय साता प्रभूति स्त्रियांयज्ञमण्डपम भोजन परासती थी, उस समय नुपूरों एवं किकिणियोंका मधुर ध्वनि सबत्र सुनाई पड़ती था ॥ ३२ ॥ सब लोग यथेष्ट भोजन करें, जो प्रसद हो सा माँगे, भाजनके विषयमें काई किसी तरहका शका न करे और जिसका जो पदार्थ न रुच, उस छाड़ दें । बिना माँगे ही यथेष्ट पकवान दो और उनका थालीयोम अखण्ड घृतधारा ढाला । इस प्रकार रामचन्द्र पारंपर्यकोंका आज्ञा देत थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ परासनेवाले कहते थे और लंजिय, ग्राहण कहते थे 'नहीं' । इस प्रकार भोजनकालमें सर्वत्र यही ध्वनि सुनाई पड़ता थी ॥ ३५ ॥ भगवान् रामचन्द्रजा कहते थे-भगवन् ! क्या चाहिये ? इसके उत्तरमें ग्राहण 'सब पारपूर्ण है' ऐसा कहते थे । इस प्रकार बानन्दक साथ पेक्षको हृवा खाते हुए विप्रगण भोजन करते थे ॥ ३६ ॥ भाजनोत्तर ठज्जे एवं उष्णादकसंहस्त-दन्त-शुद्धि करके वे ताम्बूल खाते थे ॥ ३७ ॥ इसके बाद राम द्वारा दक्षिणार्थं समपित स्वर्णमुद्राको लेकर वे मुनीश्वर एवं देवता डंरपर चल जाते थे ॥ ३८ ॥ इसके बाद पूर्वोक्त उपचारोंसे राजालोग भोजन करते थे । तदुपरान्त वेश्यायें भाजन करती थीं ॥ ३९ ॥ स्त्रियोंका भाजनशालाम पहल देवाङ्गनायें, किर मुनिपात्नियाँ और उनके बाद क्षत्रियपात्नियाँ भोजन करता थीं । तदनन्तर सभी द्वितीयाँ साताकी प्रार्थना-पर भाजन करता थीं । उसके बाद वणिकप्रतिनिधीयाँ, तदुपरान्त पुरनारियाँ एवं शूद्रपात्नियाँ भोजन करती थीं । पुरुषोंक भाजनालयमें बानर, राक्षस, ऋषि, पुरवासा, शूद्रादि एवं राजसेवक ये सब क्रमशः भोजन करते थे

न कश्चित् ज्ञुधितस्तत्र नासीत्कस्य निषेधनम् । ततो रामः सुहन्मित्रैवंधुभिः सचिवादिभिः ॥४४॥  
 चकार भोजनं स्वस्थः सीतया प्राथितो मुहुः । यावंतो भूमिकणिका यावंतस्तोयविद्वः ॥४५॥  
 यावंत्युद्गनि गगने तावन्तो राघवाध्वरे । प्रत्यहं भोजनं चक्रविंप्राद्यास्ततिख्योऽपि च ॥४६॥  
 शश्रूभिर्मन्त्रिपत्नीभिस्तथा देवपत्निभिः । चकार भोजनं सीता दिव्यान्नैः स्वस्थमानसा ॥४७॥  
 ततश्चतुर्थप्रहरे सभां कृत्वा तु मंडपे । कथाभिः कीर्तनं गीतैः शास्त्रवादैः सुपुण्यदैः ॥४८॥  
 वारस्त्रीणां नृत्यगीतं निर्दिष्ये रामो दिनक्षयय । ततः मंध्यादिकं कृत्वा पुनर्हृत्वा यथाविधि ॥४९॥  
 पूर्वोक्ते स्तु कथाद्यैश्च निशायाः प्रहरद्वाम् । सप्ततिक्रम्य निद्रार्थं सर्वनाशापयत्तदा ॥५०॥  
 गत्वा स्वस्वस्थलं सर्वे निद्रां चक्रर्थासुष्टुम् । पट्टुकूलामने भृत्यां सीतया स जितेन्द्रियः ॥५१॥  
 चकार निद्रां श्रीरामो हृदि चित्येष्टदेवताः । आज्ञाभागो नरेन्द्राणां विप्राणां मानस्वंडनम् ॥५२॥  
 पृथक् शत्र्या च नारीणामशस्त्रवध उच्यते । अतः म सीतया युक्तशकार शरणं प्रभुः ॥५३॥

एवमासीनप्रत्यहं वै दिनचर्याऽध्वरे प्रभोः ॥ ५४ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे  
 यज्ञारम्भे रामदिनचर्यविधिनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

### सप्तमः सर्गः

( घ्वजारोपणव्रतकी महिमा )

श्रीरामदास उवाच

सीत्येऽहन्यवनीपालो याजकान्सदस्पतीन् । अपूजयन्महाभागान् यथावत्सुसमाहितः ॥ १ ॥  
 अथ चैत्रे सिते पक्षे राजानः प्रतिपत्तिथौ । घ्वजानारोपयामासुर्विधिनाऽध्वरमंडपे ॥ २ ॥

श्रीविष्णुदास उवाच

आरोपिता घ्वजाः प्रोक्ताः पाथिंवर्यज्ञमंडपे । गुरो तेषां विधानं मां सम्यग्वक्तुं त्वमर्हसि ॥ ३ ॥

॥ ४०-४३ ॥ किसीके लिए भोजनका निषेध नहीं था । वहाँपर कोई भूखा नहीं रहता था । सबके भोजन कर लेनेके बाद रामचन्द्रजी स्वयं सीताके बारम्बार प्रार्थना करनेपर अपने पुत्र, मित्र, बन्धु एवं सचिवोंके साथ भोजन करते थे ॥ ४४ ॥ पृथ्वीमें जितनी रेणुकायें हैं, जितने जलबिन्दु हैं तथा आकाशमें जितने नक्षत्र हैं, उतनी संख्यामें ब्राह्मण प्रभृति पुरुष एवं स्त्रीवृन्द रामचन्द्रके यज्ञमें प्रतिदिन भोजन करते थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ रामचन्द्रके भोजनोपरान्त श्रीसीताजी भी सास, मन्त्रिपत्नी तथा देवपत्नियोंके साथ दिव्यान्न खाती थीं ॥ ४७ ॥ पुनः चौथे पहर यज्ञमण्डपमें सभा करके कथा, हरिकीर्तन, पुण्यप्रद शास्त्रचर्चा तथा वेश्याओंके नृत्यगान द्वारा राम अवशिष्ट समय विताते थे ॥ ४८ ॥ पुनः सायंकाल सन्ध्या एवं हवनकृत्य पूर्ण करके कथादिके द्वारा रात्रिके दो प्रहर विताकर सब लोगोंको शयन करनेकी आज्ञा देते थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तब सब लोग अपने-अपने स्थानों-पर सानन्द शयन करते थे । राम भी अपने इष्टदेवताका हृदयमें स्मरण करके भूमिपर पट्टुकूलासन विठा तथा जितेन्द्रिय होकर सीताके साथ सोते थे ॥ ५१ ॥ राजाओंकी आज्ञा तोड़ना, ब्राह्मणोंका मानमर्दन एवं स्त्रियोंकी पृथक् शत्र्या करना अशास्त्रवध कहलाता है । अतः भगवान् रामचन्द्र सीताके साथ ही सोते थे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इस प्रकार यज्ञमें भगवान् का यह प्रतिदिनका काम था ॥ ५४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे यज्ञारम्भे रामचर्यविधिनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—सौत्यपर्वके दिन राजा रामचन्द्रने सावधान होकर याजकों एवं सदस्योंकी यथावत् पूजा की ॥ १ ॥ चैत्र शुक्लपक्ष प्रतिपदा के दिन राजालोग विष्णुपर्वके ऊपर घ्वजाओंको फूहनाने लगे ॥ २ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने कहा कि राजा लोग यज्ञमण्डपके ऊपर घ्वजा

श्रीरामदास उवाच

ममक प्रदनः कृतः शिष्य त्वया लोकोपकारकः । सावधानमना भूत्वा शृणुष्व त्वं मयोच्यते ॥ ४ ॥  
मांत्रन्मरं ब्रतं चेदं नृपेष्ट्वा समागतम् । आरोपिता ध्वजाः सर्वेर्ज्ञवाटे तदा मुदा ॥ ५ ॥  
नोचेद्विष्णुगुहेष्वारोपणीया ध्वजा नृभिः । मधुशुक्लदशम्यां च पुण्यायां प्रतिपत्तिथौ ॥ ६ ॥  
अथवा रोपणीयास्ते श्रीरामनवमीदिने । मधुशुक्लदशम्यां वा दशम्यामाश्विने सिते ॥ ७ ॥  
अथोर्जप्रतिपदि शुक्लपक्षेऽपि भो द्विज । एते काला मया प्रोक्ता ब्रतस्यास्य तवाग्रतः ॥ ८ ॥  
अधूना संप्रवक्ष्यामि ध्वजारोपणमुच्चमम् । ब्रतं पापहरं पुण्यं रामसंतोषकारकम् ॥ ९ ॥  
यः कुर्याद्विष्णुभवने ध्वजारोपणसंज्ञितम् । सम्पूज्यते विरिचार्यैः किमन्यैर्वहुभाषितैः ॥ १० ॥  
हेमभासमहस्रं तु यो दशाच्च कुदुम्बने । तःफलं समवाप्नोति ध्वजारोपणकर्मणः ॥ ११ ॥  
ध्वजारोपणतुच्यं स्थान्न गंगास्नानमुच्चमम् । अथवा तुलभीसेवा शिवलिंगप्रपञ्चनम् ॥ १२ ॥  
अहोऽप्यैमहोऽप्यैमहोऽप्यैमहोऽप्यै । सर्वपापहरं कर्म ध्वजारोपणसंज्ञितम् ॥ १३ ॥

तानि सर्वाणि वक्ष्यामि शृणु त्वं गदतो मम ॥ १४ ॥

अथ चैत्रं सिते पक्षे ब्रतं हि प्रतिपत्तिथौ । मधुशुक्लदशम्यां वा नवम्यां राघवस्य वा ॥ १५ ॥  
कार्यं वाऽश्विनमासस्य दशम्यां शुक्लपक्षके । ऊर्जशुक्लप्रतिपदि दशम्यां वा विधीयताम् ॥ १६ ॥  
अवश्यं चैत्रमासे हि कार्यं चैतदुत्रतोत्तमम् । अतिक्रांते चैत्रमासे कार्यं चैतरपर्वत्सु ॥ १७ ॥  
चैत्रशुक्लप्रतिपदि प्रभाते प्रयतो नरः । स्नानं कुर्यात्प्रयत्नेन दंतधावनपूर्वकम् ॥ १८ ॥  
ततः कृत्वा नित्यकर्म पश्चाद्विष्णुं समर्चयेत् । चतुर्भिर्ब्राह्मणैः सादृं कृत्वा च स्वस्तिवाचनम् ॥ १९ ॥  
नांदीश्वाद्रं प्रकुर्वीत ध्वजारोपणकर्मणि । ध्वजस्तंभौ च गायत्र्या प्रोक्षयेद्वस्त्रसंयुतौ ॥ २० ॥  
पताकयोर्लेखनीयौ वैनतेयाङ्गनीमुतौ । मूर्यं चट्रं मारुतिं च वैनतेयं प्रपञ्चयेत् ॥ २१ ॥  
धातारं च विधातारं पूजयेत्कुम्भकद्रये । हरिद्राऽक्षतदूर्यैः शुक्लपुष्पैविशेषतः ॥ २२ ॥

फहराने लगे । सो उस ध्वजारोपणका बया विधान है । यह कृता करके मुझे बताइए ॥ ३ ॥ श्रीरामदासजीने उत्तर दिया—हे शिष्य ! तुमने अच्छा प्रश्न किया है । यह प्रश्न लोकोपकारक है । तुम सावधान होकर सुनो । मैं कहता हूँ ॥ ४ ॥ ध्वजारोपणही ब्रतके समयको प्रात जानकर राजाओंने यज्ञमण्डपमें ध्वजाओंको आरोपित करना आरम्भ कर दिया ॥ ५ ॥ यज्ञका समय न हो तो चैत्र शुक्लपक्षको प्रतिवर्षं विष्णुमन्दिरके ऊपर ध्वजा आरोपित करे ॥ ६ ॥ अथवा रामनवमी दशमी तथा विजयादशमीको ध्वजारोपण करे ॥ ७ ॥ अथवा कार्तिकशुक्ल प्रतिपदाको ध्वजारोपण करे । ये ही तिथियां ध्वजारोपणके लिए उत्तम होती हैं, जो मैंने तुम्हें बतलायी हैं ॥ ८ ॥ अब मैं ध्वजारोपण ब्रतका विधान बतलाता हूँ । यह ब्रत रामको अत्यन्त प्रिय और असीम पुण्योत्पादक है ॥ ९ ॥ इस विषयमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है । जो प्राणी विष्णुमन्दिरके ऊपर ध्वजारोपण करता है, उसकी ब्रह्मादिक देवता भी पूजा करते हैं ॥ १० ॥ कुटुम्बी विप्रको हजार तोला सुवर्ण देनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल ध्वजारोपणका भी है ॥ ११ ॥ ध्वजारोपण कर्मके समान न गङ्गास्नान है, न तुलसीसेवा और न शिवपूजा ही है ॥ १२ ॥ यह कार्यं इतना उत्तम है कि इसको करनेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ इसका सब विधान मैं तुम्हें बतलाता हूँ—सुनो ॥ १४ ॥ इसको करनेका चैत्रादि मास उपयुक्त समय है ॥ । यदि इनमेंसे पहला समय न मिले तो इतर पर्वमें ही ध्वजारोपण करे ॥ १५-१७ ॥ चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको प्रातःकाल दन्तधावनपूर्वक स्नान करे ॥ १८ ॥ फिर नित्यकृत्यसे निवृत्त होकर विष्णुभगवान्-की पूजा करे । तदनन्तर चार ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराके नान्दीश्वाद्रं करे और वस्त्रावृत ध्वजाओंको गायत्रीमन्त्रसे प्रोक्षित करे ॥ १९ ॥ उन ध्वजाओंमें गश्छ और हनुमानजीका चित्र बना रहे । फिर उसपर सूर्य-चन्द्र-गश्छ एवं हनुमानजीकी पूजा करे । तदनन्तर दो घड़ोंपर हरिद्रा, अक्षत, दूर्वा एवं विशेष करके इवेत पुष्प-

ततो गोचर्ममात्रं तु स्थंडिलं चोपलिष्य च । आधायाग्निं स्वगृहोक्त्या घृतमागादिकं क्रमात् ॥२३॥  
 शुहुयात्पायसेनैव धृतेनाष्टोत्तरं शतम् । प्रथमं पौरुषं शूलं विष्णोनुकेन मंत्रतः ॥२४॥  
 ततश्च वैनतेयाय स्वाहेत्यष्टाहुतीस्तदा । मारुतेरष्टाहुतीश्च कृत्वा स्वाहेति होमयेत् ॥२५॥  
 सोमो धेनुं समुच्चार्य जुहुयात्प्रयत्स्तदा । सौरान् मंत्रान् जपेत्तत्र शांतिसूक्तानि भक्तिः ॥२६॥  
 रात्रौ जागरणं कुर्यादुपकंठं हरेः शुचिः । एवं नवदिनं कार्यं पूजनं परमोत्सवैः ॥२७॥  
 नवरात्रं जागरणं कुर्यान्नित्यं सुकीर्तनैः । ततो दशम्यामुषमि समुत्थाय व्रती शुचिः ॥२८॥  
 प्रातः स्नात्वा नित्यकर्म समाप्याथ ततः परम् । गंधपुष्पादिभिर्देवानर्चयेत्पूर्ववत्क्रमात् ॥२९॥  
 ततो मंगलवाद्यैश्च शुक्लपीठैश्च शोभनैः । नृत्यैश्च स्तोत्रपठनैर्येद्विष्णवालयं ज्वजम् ॥३०॥  
 देवस्य द्वारदेशे वा शिखरे वा मुदान्वितः । सुस्थिरं स्थापयेच्छिष्य ज्वजस्तंभं सुशोभितम् ॥३१॥  
 गंधपुष्पाक्षतैर्दीपैर्दिव्यधृपैर्मनोरमैः । मह्यमोज्यादिसंयुक्तैर्वैश्च । हरिं यजेत् ॥३२॥  
 आप्रतिपदभारम्य दशम्यविधि सघनि । ज्वजयोः पूजनं कृत्वैकादश्यां हरिसंविधि ॥३३॥  
 आरोपणीयौ शिखरे पुरतो वा यथासुखम् । अथवा रोपणीयौ हि दशम्यां तौ ज्वजोत्तमौ ॥३४॥  
 नवम्यां वा द्वितीयायां चतुर्थ्यामष्टमीदिने । पृष्ठयां वा रोपणीयौ तौ पूर्वं पूज्य यथाविधि ॥३५॥  
 व्रतस्य प्रतिपद्येव प्रारंभो नेतरे दिने । पूर्वोक्तेषु हरेः कार्या न मासेष्वितरेषु च ॥३६॥  
 माघासितचतुर्दश्यामेवं शंभोर्गृहे ज्वजौ । नंदीभूम्यंकितौ कृत्वा रोपणीयौ यथाविधि ॥३७॥  
 आश्विनस्य सिताष्टम्यां मधोर्वा गिरिजागृहे । नभस्यस्य चतुर्थ्यां हि प्रोक्तो गणपतद्वगृहे ॥३८॥  
 मार्गशीर्षे शुक्रपुष्पामेवं मातृङ्गसद्वगृहे । एवं हि सर्वदेवानामुत्साहदिवसेष्वपि ॥३९॥

से घाना और विघानाकी पूजा करे । तत्पञ्चात् गोचर्ममात्र स्थण्डिलके ऊपर परिसमूहनादि पंचभूसंस्कार करके स्वशाखीय गृहोक्त विघानसे कुण्डमें अग्नि स्थापित करे ॥ २०-२३ ॥ पुनः क्रमशः पायस और धृतसे आघार-आज्यभाग नामकी अष्टोत्तरशत आहुति दे । अथवा आघाराज्यभागकी आहुति देकर पुनः क्रमशः पायस और धृतकी अष्टोत्तरशत आहुति दे । प्रथम आहुतियां पुरुषसूक्तके मंत्रोंसे और दूसरी आहुतियां विष्णोनूंके इस मन्त्रसे दे ॥ २४ ॥ फिर गरुडके निमित्त आठ आहुतियां और माशतिके निमित्त आठ आहुतिसे हवन करे । 'गरुडाय स्वाहा' मंत्रसे पहली आठ आहुतियां एवं 'मारुतये स्वाहा' इस मंत्रसे दूसरी आठ आहुतियां दे ॥ २५ ॥ पुनः 'सोमो धेनुः' मंत्रका उच्चारण करके संयमपूर्वक हवन करे । तदनन्तर सौर मन्त्रोंका जप और शान्तिसूक्तका पाठ करे ॥ २६ ॥ रात्रियोंमें श्रीहरिके समीप जागरण करे । फिर दशमी-को परमोत्सवके साथ भगवान्का पूजन करे ॥ २७ ॥ नित्य हरिकीर्तनं करके नवरात्रि पवन्त जागरण करे । दसवें दिन प्रातः स्नान-संध्यादि नित्यकृत्योंसे निवृत होकर पूर्ववत् पूजनसम्भारसे भगवान्की पूजा करे ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसके बाद मंगलमय बाजे-गाजेके साथ स्तोत्रपाठ करते हुए ज्वजाको विष्णुमन्दिरमें ले जाय ॥ ३० ॥ मन्दिरके द्वार तथा शिखरपर पुष्पमालासे सुशोभित ज्वजाका स्थापित करे ॥ ३१ ॥ वहाँ गन्ध, पुष्प, अक्षत, वृप, दीप एवं भक्त्य-भोज्यादि युक्त नैवेद्यसे श्रीहरिका पूजन करे । अथवा प्रतिपदासे लेकर दशमी तक घरमें ज्वजाओंकी पूजा करके एकादशीको विष्णुमन्दिरके शिखर या द्वारपर उन ज्वजाओंको स्थापित करे । अथवा दशमीको ही स्थापित कर दे ॥ ३२-३४ ॥ अथवा द्वितीया, चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी तथा नवमीको सुविधानुसार समय देखकर उपर्युक्त विघानसे पूजा करके ज्वजा स्थापित करे ॥ ३५ ॥ किन्तु ज्वतका प्रारम्भ प्रतिपदाको ही होता है । श्रीहरिके निमित्त ज्वजारोपण पूर्वोक्त मासोंमें ही करे, अन्य मासोंमें नहीं ॥ ३६ ॥ इसी प्रकार माघकृष्ण चतुर्दशीको शिखालयपर ज्वजारोपण करे । उस ज्वजामें यथाविधि नन्दी और भूङ्गीको अंकित करे ॥ ३७ ॥ आश्विन शुक्ल अष्टमीको या चैत्रके नवरात्रमें पार्वतीके मन्दिरपर ज्वजा फहराये । भाद्रपद चतुर्थीको गणेशके मन्दिरपर ज्वजारोपण करे ॥ ३८ ॥ मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठीको सूर्यके मन्दिरपर ज्वजास्थापन करे । इस प्रकार देवताओंके उत्सवदिवसमें ही यह कार्यं सम्पन्न करे ॥ ३९ ॥

मधुरीश्चिनमासेषु विना विष्णोर्न चेतरे । एवं देवालये स्थाप्य श्रोभनौ तौ ज्वजोत्तमौ ॥४०॥  
 संपूज्य विष्णु विधिवत् वित्तशाठ्यं विना ततः । प्रदक्षिणमनुव्रज्य स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥४१॥  
 नमस्ते पुण्डरीकाक्षं नमस्ते विश्वभावनं । नमस्तेऽस्तु हृषीकेशं महापुरुषपूर्वजं ॥४२॥  
 येनेदमखिलं जातं यस्मिन् सर्वे प्रतिष्ठितम् । लयमेष्यति यत्रैतत्रं प्रपञ्चोऽस्मि माधवम् ॥४३॥  
 न जानन्ति वरं देवं सर्वे ब्रह्मादयः सुराः । योगिनो यं प्रशंसन्ति तं वंदे ज्ञानरूपिणम् ॥४४॥  
 अतरिक्षं तु यच्चाभिर्यामिधा यस्य चैव हि । पादादभूच्च वै पृथ्वी तं वंदे विश्वरूपिणम् ॥४५॥  
 यस्य श्रोत्रे दिशः सर्वा यच्चज्ञुदिनकुच्छशी । ऋक्सामयजुषो येन तं वंदे ब्रह्मरूपिणम् ॥४६॥  
 यन्मुखाद्ब्राह्मणा जाता यद्वाह्नोरभवन्नृपाः । वैश्या यस्योरुतो जाताः पद्मयां शूद्रस्त्वजायत ॥४७॥  
 मनसश्वेतमा जातो दिनेश्वरभूषस्तथा । प्राणेभ्यः पवनो जातो मुखादविनरजायत ॥४८॥  
 पापसंदाहमात्रेण वदति पुरुषं तु यम् । स्वभावविमलं शुद्धं निर्विकारं निरंजनम् ॥४९॥  
 क्षीराविधशायिनं देवमनंतमपराजितम् । सद्गुरुवत्सलं विष्णु भक्तिगम्यं नमाम्बहम् ॥५०॥  
 पृथिव्यादीनि भूतानि तन्मात्राणीद्रियाणि च । सुशूक्ष्माणि च येनामस्ते वंदे सर्वतोमुखम् ॥५१॥  
 यद्वक्ष परमं धाम सर्वलोकोत्तमोत्तमम् । निर्गुणं परमं सूक्ष्मं प्रणतोऽस्मि पुनः पुनः ॥५२॥  
 निर्विकारमजं शुद्धं सर्वतो ब्रह्मीश्वरम् । यमामनन्ति योगीद्राः सर्वकारणकारणम् ॥५३॥  
 एको विष्णुर्महदभूतं पृथिव्याभूतान्यनेकशः । त्रीष्टुकाब्रव्याप्य भूतात्मा भूत्के विश्वसूगवययः ॥५४॥  
 निर्गुणः परमानंदः स मे विष्णुः प्रसीदतु । हृदयस्योऽपि दूरस्यो मायया मोहितात्मनाम् ॥५५॥  
 ज्ञानिनां सर्वधर्मस्तु स मे विष्णुः प्रसीदतु । चतुर्भिर्श्च चतुर्भिर्श्च द्वाभ्यां पंचभिरेव च ॥५६॥  
 हृयते च पुनर्दर्भयो च मे विष्णुः प्रसीदतु । ज्ञानिनां कर्मणां चैव तथा भक्तिमतां नृणाम् ॥५७॥

चैत्र आश्विन तथा कार्तिक इन तीन मासोंमें विष्णुके सिवाय अन्य देवताओंके लिए ज्वजारोपण नहीं करना चाहिये ॥ ४० ॥ इस प्रकार वित्तशाठ्य त्यागकर देवालयपर ज्वजारोपण करके विधिवत् विष्णुकी पूजा करे । तदनन्तर प्रदक्षिणा करके इस स्तोत्रका पाठ करे—॥ ४१ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! हे हृषीकेश ! हे महापुरुषपूर्वज ! आपको अनेकशः प्रणाम है ॥ ४२ ॥ जिससे यह संसार उत्पन्न हुआ है, जिसके आधारपर टिका हुआ है और जिसमें लय होगा, मैं उन माघव भगवान्को प्रणाम करता हूँ ॥ ४३ ॥ जिसको ब्रह्मादि देवता भी भली-भाँति नहीं जानते और योगी जिनकी प्रशंसा करते हैं, उन परब्रह्म परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४४ ॥ अन्तरिक्ष जिसकी नामि है, आकाश जिसका मस्तक है और जिसके चरणसे भूमि उत्पन्न हुई है, मैं उस ब्रह्माको प्रणाम करता हूँ ॥ ४५ ॥ दिशाएं जिसके कान हैं, सूर्य एवं चन्द्र जिसके नेत्र हैं, ऋक्साम एवं यजुर्वेद जिससे जायमान हुए हैं, उस ब्रह्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४६ ॥ जिसके मुखसे ब्राह्मण, वाहुसे क्षत्रिय, ऊरुस्वलसे वैश्य और पौरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं, उस ईश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४७ ॥ स्वभावतः निर्मल, निरञ्जन, निर्विकार एवं शुद्ध परमात्माके नामस्मरणमात्रसे समस्त पापसमूह नष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥ जिसके मनसे चन्द्रमा, चक्षुसे सूर्य, प्राणीसे पवन एवं मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ है, उस परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४९ ॥ क्षीरसागरमें शयन करनेवाले, भक्तोंके प्रेमी, भक्तिगम्य, अपराजित और अनन्त-स्वरूप विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५० ॥ पृथिव्यादि पञ्चभूत, तन्मात्रा, एकादश इन्द्रियाँ और सूक्ष्म प्राणिसमूह जिनसे उत्पन्न हुए हैं, उन सर्वतोमुख भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५१ ॥ जो ब्रह्म है, सर्वलोकोत्तमोत्तम है, निर्गुण है एवं परम सूक्ष्म है, उस परमात्माको मैं पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥ योगीनद्वजन जिसको निर्विकार, अज, शुद्ध, ईश्वर एवं संसारका आदि कारण कहते हैं, उस परब्रह्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५३ ॥ जो विश्वभौत्ता और अव्यय है, जो एक होता हुआ भी बलग-बलग पञ्च महाभूतों एवं तीनों लोकोंमें व्याप्त है, उस भूतात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५४ ॥ जो निर्गुण है, परमानन्दस्वरूप है और हृदयमें रहते हुए भी जिस प्राणीकी आत्मा मायासे मुग्ध है, वह उससे दूर है ॥ ५५ ॥ जो ज्ञानियोंका सर्वत्व है । वह विष्णु

गतिदाता विश्वभुग्यः स मे विष्णुः प्रसीदतु । जगद्वितार्थं यो देहमदधाळीलया हरिः ॥५८॥  
 यमर्चयन्ति विवृधाः स मे विष्णुः प्रसीदतु । यमामनंति वै संतः सवैदाऽनन्दनिश्चिह्नम् ॥५९॥  
 निर्गुणं च गुणाधारं स मे विष्णुः प्रसीदतु । परेशः परमानन्दः परात्परततः प्रभुः ॥६०॥  
 चिद्रूपश्च परिज्ञेयः स मे विष्णुः प्रसीदतु । य इदं कीर्तयेन्नित्यं स्तोत्राणामृतमोत्तमम् ॥६१॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते । य इदं कीर्तयेद्विष्णुं त्राक्षाणांथं प्रपूजयेत् ॥६२॥  
 आचार्यं पूजयेत्पश्चादक्षिणाच्छ्रद्धनादिभिः । त्राक्षाणान्भोजयेत्पश्चाङ्गक्तिः सत्यमाप्णः ॥६३॥  
 पुत्रमित्रकलत्राद्यर्वन्धुभिः सह वास्यतः । कुर्वीत पारणां शिष्य नारायणपरायणः ॥६४॥  
 यस्त्वेतत्कर्म कुर्वीत ध्वजारोपणमृतमम् । तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये मृणुष्व सुसमाहितः ॥६५॥  
 वस्त्रं ध्वजस्य संबद्धं यावच्चलति वायुना । तावत्स्वपापजालानि नश्यत्यत्र न संशयः ॥६६॥  
 महापातकयुक्तो वा युक्तश्चेत्सर्वपातकैः । ध्वजं विष्णुगृहे कुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६७॥  
 वावदिनानि वसति ध्वजो हरिगृहोपरि । तावद्यगमहस्त्राणि हरेः समीक्ष्यमाप्नुयात् ॥६८॥  
 आरोपितं ध्वजं दृष्ट्वा येऽभिवंदिति धार्मिकाः । तेऽपि सद्यो विमुच्यन्ते द्युपपानकक्षोटिभिः ॥६९॥  
 आरोपितं ध्वजं विष्णुगृहे धुन्वन्स्वकं पटम् । कर्तुः सर्वाणि पापानि धुनोति निमिषार्थतः ॥७०॥  
 एवं शिष्य मया प्रोक्तं यथा पृष्ठं त्वया मम । ध्वजारोपणमाहात्म्यं सविधान मनोरमम् ॥७१॥  
 समागतां प्रतिपद ज्ञात्वा चैत्रमितां नृपैः । आरोपिता ध्वजाः सर्वैँ द्वितीयायां पृथक् पृथक् ॥७२॥  
 ज्ञात्वा रामं महाविष्णुं तस्यैवाध्वरमंडपे । कुत्वा' चैकदिनं स्वस्ववासगेहेषु पूजनम् ॥७३॥  
 ध्वजस्य पूजनं गोडे नवरात्रं समाचरेत् । यथाशक्त्यनुसारं वा चैकरात्रमयापि वा ॥७४॥  
 यज्ञोऽसवदर्शनार्थं कृतमेकदिनं नृपैः । चकार राघवापि पूर्वमेव ध्वजोत्सवम् ॥७५॥  
 माघमासे कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां शिवाग्रतः । तदा ध्वजैर्महोच्चैस्तैः शुशुभे गगनांगणम् ॥७६॥

मुझपर प्रसन्न हों ॥ ५६ ॥ चार-चार ऋत्विक् जिनके प्रीत्यर्थं हृवन करते हैं, कभी दो-दो और कभी पाँच-पाँच तथा फिर दो-दो ऋत्विक् हृवन करते हैं, वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ५७ ॥ जो ज्ञानियों, कर्मी एवं भक्तोंकी गति हैं । जो विश्वभुक् हैं, वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों । जो संसारके हितके लिए शरीर धारण करते हैं ॥ ५८ ॥ जिनकी विद्वान् पूजा करते हैं । सन्त लोग जिनको सदा आनन्दविग्रह कहते हैं, वे विष्णु मुझपर प्रसन्न हों । जो निर्गुण हैं और सगुण भी हैं । जिनका सर्वेष, परमानन्द, परमात्मा एवं चिद्रूप इत्यादि नामोंसे परिचय मिलता है, वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ५९ ॥ ६० ॥ जो पुरुष इस उत्तम स्तोत्रका पाठ करता है, वह समस्त पापोंसे विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है । जो इसका कीर्तन करता चाहे, वह पूर्व-मित्र-कलत्रादिके साथ सत्यपरायण होकर इस स्तोत्रका कीर्तन करे । पश्चात् विष्णु वह ह्याण एवं आचार्योंकी पूजा करे । बादमें ब्राह्मणभोजन कराये ॥ ६१-६४ ॥ जो पुरुष ध्वजारोपण करता है, उसका पुण्यफल सावधान होकर सुनो ॥ ६५ ॥ आरोपित ध्वजाका वस्त्र वायुसे जैसे-जैसे हिलता है, तैसे-तैसे उस पुरुषका सब पाप नष्ट होता जाता है ॥ ६६ ॥ विष्णुमन्दिरके ऊपर ध्वजारोपण करनेसे एक महापातक कथा सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । वह आरोपित ध्वजा जितने दिनों तक हरिमन्दिरपर सुषोभित रहती है, उतने सहल युगपर्यन्त ध्वजारोपणकर्ता श्रीहरिके समीप रहता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ जो धूमिक पुरुष ध्वजाकी बन्दना करते हैं, वे कोटि उपपातकोंसे छूट जाते हैं ॥ ६९ ॥ वह आरोपित ध्वजा अपने वस्त्र कैपाती हुई निमिषार्थमें आरोपिताके पापोंको नष्ट कर देती है । हे शिष्य ! तुमने जो मनोहर ध्वजारोपणमाहात्म्य पूछा, वह सब विविष्वेक मैने कहा ॥ ७० ॥ इसीलिए चैत्रशुक्ल प्रतिपदाको अया हथा जानकर राजाओंने द्वितीयाको ध्वजाओंका आरोपण किया । यज्ञमण्डपमें स्थित रामको महाविष्णु समझकर ही वे राजे ध्वजाका अपने अपने तम्बुओंमें अलग-अलग पूजन करने लगे ॥ ७१-७३ ॥ पूजा नवरात्र पर्वन्त अथवा अपनी शक्तिके अनुसार करे । अथवा एक ही रात करे ॥ ७४ ॥ यज्ञो-

हृदं चरित्रं परमं मनोहरं श्रीमद्भूतजागेपविधानसंज्ञितम् ।  
पठंति शृणुवंति नराः सुपुण्यदं भवेत्त्वं तेषां नियतं विचिन्तनम् ॥७७॥  
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकांडे  
ध्वजारोपणव्रतं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

### अष्टमः सर्गः

( अवभृथस्नानोत्सवका वर्णन )

श्रीरामदास उवाच

अथ चैत्रसिते पक्षे नवम्यां रामजन्मनि । तदाऽवभृथस्नानार्थं वाजिमेधफलाप्तये ॥ १ ॥  
चकार सूचनां राज्ञे राघवाय गुरुः स्वयम् । त्वरयामास तं रामं रविनापभयान्मुनिः ॥ २ ॥  
वसिष्ठवचनं श्रुत्वा रामो लक्ष्मणमवृत्तिं । अद्यावभृथस्नानार्थमुत्सवैर्गमनं मम ॥ ३ ॥  
रामतीर्थं त्वया ज्ञात्वा करणीयं मयोच्यते । आज्ञापनीया राजानो निजसैन्यर्गजादिभिः ॥ ४ ॥  
सज्जीभूताः सावरोधास्तिष्ठमिति मढपे । सिद्धं कार्यं निजं सैन्यं शिविकारथवारणम् ॥ ५ ॥  
अश्वपत्तिसमायुक्तं तुरगोष्टगजैर्युतम् । नववाद्यध्वनिः कार्या तूर्यदीनां स्वनोऽपि च ॥ ६ ॥  
पताकाश्च ध्वजाश्चापि तोरणादि समंततः । मुक्ताप्रवालपुष्पाणि हाराश्चाध्वरमंडपात् ॥ ७ ॥  
बन्धनीया रामतीर्थपर्यंतं संकतेऽपि च । कदलीनां मदास्तंभाशेषुदंडाः समंततः ॥ ८ ॥  
पुष्पाणि वाटिकाश्चापि मृत्यात्रादिषु निर्मिताः । स्थापनीयाश्च सर्वत्र नृत्यंतु वारयोपितः ॥ ९ ॥  
सेचनीयो रामतीर्थमागथन्दनवारिभिः । पुष्पैराच्छादनीयो हि पद्मकूलादिभिस्तथा ॥ १० ॥  
अन्यच्चापि यथायोरय यज्ञोक्तं चम्या तत्र । तत्कुरुष्वाविडवेन मामपृष्ठाऽविचारितम् ॥ ११ ॥  
तथेत्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि तथा सर्वे चकार सः । अथ तं ऋत्विजशक्रुगमनोऽष्ट सविस्तराम् ॥ १२ ॥

तस्व देखनेके निमित्त राजाओं तथा रामजीने एक ही दिनमें सब कृत्य सम्पन्न कर लिया था ॥ ७५ ॥ इसी तरह माघकृष्ण चतुर्दशीको शिवजीके सम्मुख ध्वजारोपण किया । उस ऊंची ध्वजासे गगनमण्डल अत्यन्त सुशोभित हुआ ॥ ७६ ॥ ध्वजारोपणविधानसंक इस परम मनोहर एवं पुण्यप्रद चरित्रको जो लोग पढ़ते और और सुनते हैं, उनका चित्ततार्थ अवश्य पूर्ण होता है ॥ ७७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे यागकांडे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां ध्वजारोपणव्रतं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ।

श्रीरामदास कहने लगे—चैत्रशुक्ल रामनवमीको अश्वमेध यज्ञके फलप्राप्त्यर्थं अवभृथ-स्नानके लिये स्वयं गुरु वसिष्ठने रामको सूचना दी और सूर्यतापके भव्यसे जलदी करनेके लिए कहने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ वसिष्ठके वाक्य सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा—आज अवभृथ स्नानके लिए मैं उत्सवपूर्वक रामतीर्थको जाऊंगा । अतः उस समयका जो कर्तव्य है, सो सुनो ॥ ३ ॥ राजाओंको आज्ञा दी कि वे अपनो-अपनी सेना एवं हाथी-धोड़ोंके साथ अन्तःपुरकी स्त्रियोंको लेकर यज्ञमण्डपमें आएं ॥ ४ ॥ इसी तरह जब सब बाहरी लोग भी आ जायें, तब अपनी सेना, हाथी, धोड़े, शिविका एवं ऊटोंको भी ले आओ । नवीन तथा प्राचीन वाद्योंकी ध्वनिके साथ सब लोग रामतीर्थ चलें ॥ ५ ॥ ६ ॥ यज्ञमण्डपके चारों ओर पताका, ध्वजा, तोरण, मुत्तामाला, प्रवाल एवं पुष्पोंके हारोंसे सजावट कर दी जाय ॥ ७ ॥ रामतीर्थ पर्यन्त रेतोले प्रदेशमें भी हजारों पताकाएं वाँध दी जायें और चारों ओर इक्षुदंड एवं कश्लोंके महान् स्तम्भ लड़े कर दिये जायें ॥ ८ ॥ गमलोंको फुलबारी सजा दी जाय और सर्वत्र वेश्याएं नृत्य करें ॥ ९ ॥ रामतीर्थका मार्ग चन्दनके जलसे सिचवाकर पुष्पों तथा पट्टुकूलोंसे आच्छादित करा दिया जाय ॥ १० ॥ और भी जो कुछ करने योग्य हो, किन्तु जिसको मैने नहीं कहा हो, वह सब बिना पूछे ही विचारपूर्वक सब व्यवस्था कर दो । इस प्रकार रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने

वाजिवाहे रथे वहि पात्राणि स्थाप्य राघवम् । सीतां चारोद्ध य गुरुश्चाहगेहनिवज्जः लह ॥१२॥  
 मुनयो वेदधोषांश्च सर्वे चकुः समन्ततः । स सब्राद्वथपाहुः सदश्चं रुक्षमालिनम् ॥१३॥  
 यमौ शनैः शनैर्मार्गे मुदा बन्दिजनैः स्तुतः अग्रे गजाः पताकाभिजंगमुश्चास्तः परम् ॥१४॥  
 ततस्ते तूर्यघोषाणां कर्तारस्तुरगस्थिताः । ततस्ते राजदत्ताश्च चित्रोषीपाः सुदिनः ॥१५॥  
 ततो वंदिनटाद्याश्च वारस्त्रीणां ततो गणाः । ततो देवाः सगन्धर्वास्ततो रामः स सीतया ॥१६॥  
 कृत्विग्जनैर्यौ वह्निसंयुतः स्यन्दनस्थितः । वतो मुनीश्वराः सर्वे ऋषिपत्न्यस्ततो ययुः ॥१७॥  
 ततः क्षत्रियपत्न्याद्याः स्त्रियः सर्वाः शनैर्ययुः । ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे नानाऽहनस्थिताः ॥१८॥  
 ततस्तेषां हि सैन्यानि ततोऽन्ते राजसेवकाः । नववाद्यधनीनां च वारणाद्यास्ततः परम् ॥१९॥  
 ततश्चोष्टास्तु वाणानां शकटाः शस्त्रपूरिताः । लोहकारास्तक्षकाश्च चर्मकारास्तः परम् ॥२०॥  
 भूमिमानप्रकर्तरो रजनुकुदालहस्तकाः । ययुर्यथाकम सर्वे तदेव परमोत्सवैः ॥२१॥  
 तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुर्वारयोपितः । मुनिपर्विष्वपत्न्यस्तं त्रवपुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२२॥  
 मार्गे बन्दिजनाद्याश्च तुष्टुव रघुनन्दनम् । पड्जादिस्वरान् गंधर्वाः प्रजगुः पथि ते मुदा ॥२३॥  
 चकुन्ते वेदधोषांश्च मुनयः स्वरूपेकान् । एवं रामः शनैर्मार्गे कौतुकानि समन्ततः ॥२४॥  
 पश्यन् जनकनन्दिन्या ययौ चामरवीजितः । तत्र रामस्य मार्गे हि सीताया मुखपङ्कजम् ॥२५॥  
 द्रष्टुं कोलाहलं चकुः संमर्दात्सकला जनाः । ततस्तास्ताडयामासुः शतशो वेत्रपाणयः ॥२६॥  
 विशेषेण तदासीत्स महान् कोलाहलो द्विज । तत्सर्वं रायवो दृष्टा श्रुत्वा च प्राह लक्षणम् ॥२७॥  
 एते सर्वे पुष्पकस्था जनाः सीतां च मां सुखम् । पश्यन्तु कलहो माऽस्तु तथास्त्वति स लक्षणः ॥२८॥  
 सर्वानारोहयामास पुष्पके तान् जनान् मुदा । ततस्ते पुष्पकास्त्राः जना रामं मनोरमम् ॥२९॥

'अच्छा महाराज' कहकर सम्पूर्ण व्यवस्था कर दो । इसके बाद कृत्विग्जन गविरतर गमनेष्ठि कृत्य करने लगे ॥११॥ १२॥ धोइ जुते रथमें अग्नि रथ्यतया पात्रोंको गथास्त्रान जमाकर सीता और रामको रथाहृ करके गुरु वसिष्ठभी रथमें बैठ गये ॥१३॥ जब सम्राट् रामचन्द्र सुर्वानिनित रथरर चढ़े, तब कृत्विक् लोग वेदधोष करने लगे ॥१४॥ बन्दीजनोंमें स्तूपमान हातं हृए राम धोरं धोरे रामतीर्थंको चले । आगे-आगे पताकाओंसे युक्त हाथों, उसके बाद धोइ, उसके बाद धोइंगर चढ़े हुए धुडसवार, तब वाजा वजानेवाले और उनके बाद सुन्दर पगड़ी पहने हुए दण्डधारी राजदूत चले ॥१५॥१६॥ उसके बाद बन्दाजन, उसके बाद वैश्यवृन्द, उसके बाद देवता तथा गन्धर्व चले ॥१७॥ तदनन्तर स्यन्दनस्य तथा वह्निसंयुक्त कृत्विक् जनोंसे परिवेष्टित राम और सीता चलीं । उसके बाद कृष्ण और कृष्णितियाँ चलीं ॥१८॥ उसके बाद राजपत्नी-प्रभृति सम्पूर्ण स्त्रियाँ चलीं । उसके अनन्तर विविध वाहनोंपर चढ़े हुए राजे चले ॥१९॥ उसके बाद उनकी मेना तथा अन्य राजसेवक चले । उसके बाद वायवादक चले ॥२०॥ उसके बाद वाणींसे लदे ऊट और शस्त्रोंसे भरे शक्ट चले । उसके बाद लोहकार, पुनः बद्री, तब चर्मकार चलने लगे ॥२१॥ उसके बाद भूमिको नाप-जोख करनेवाली रस्सी एवं कुदाल हाथमें लिये मजदूर चलने लगे । इस तरह आनन्दमग्न वह सम्पूर्ण जनसमुदाय चलने लगा ॥२२॥ उसके बाद बाजे वजने लगे और वेश्याएं नाचने लगीं । मुनिपत्नियाँ और राजपत्नियाँ रामपर पुष्पवृष्टि करने लगीं ॥२३॥ मार्गमें बन्दीजन स्तुति करने लगे, गन्धर्व गाने लगे और मुनिलोग उच्चस्वरसे वेदधोष करने लगे ॥२४॥ इस प्रकार जनकनन्दिनी सीताके साथ विविध कीनुक देखते हुए राम चले ॥२५॥ उस समय राम एवं सीताके दर्शनके लिए परस्पर झगड़तो हुई जनतामें कोलाहल मच गया । उसको शान्त करनेके लिए पुलिस डंडोंमें जनताको ताड़ना देने लगी ॥२६॥२७॥ जब अधिक कोलाहल होने लगा, तब रामने देखा और कुछ सोचकर लक्षणसे बोले - ॥२८॥ तुम ऐसी व्यवस्था करो कि जिससे जनता हमारा दर्शन कर सके और कलह शान्त हो जाय । इन सबको पुष्पक विमानपर चढ़ा लो । लक्षणने कहा 'बहुत अच्छा' ॥२९॥ इस प्रकार रामकी आज्ञासे सबको पुष्पकपर चढ़ा लिया गया । तब

जानकीमहित यान्तं ददशुः पथि वै शनैः । केचिद्भूत्र्यं धन्याः परिपूणमनोरथाः ॥३१॥  
 अद्य राम ससीतं च पश्यामोऽत्र महोत्सवे । केचिद्भूत्र्यं तौ धन्यौ पितरौ नः सुजन्मदौ ॥३२॥  
 ययोः पुण्यचैरथ नः सीतारामदर्शनम् । एवं गच्छते श्रीरामे स्त्रियः सर्वाः परस्परम् ॥३३॥  
 समंडय पुष्पके स्थातुं प्रार्थयंति स्म जानकीम् । तदा सा जानकी प्राह लक्षणं पुरतः स्थितम् ॥३४॥  
 स्त्रियः सर्वास्त्वया शीघ्रं नारीशालासु पुष्पके । आगोहणीया मे वाक्यात् प्रार्थयंत्यत्र मां मुहुः ॥३५॥  
 लक्षणोऽपि तथेत्युक्त्वा ताः ख्वाः सर्वाश्च पुष्पके । स्वरयाऽऽग्रेहयामास त्वीशालासु यथासुखम् ॥३६॥  
 ततस्ताः पुण्यकारुदास्तुणज्ञालपटान्तरैः । ददृशुः सीतया रामं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥३७॥  
 मृदङ्गशङ्कपणवधुन्युर्यनिर्गोमुखाः । वादित्राणि विचित्राणि नेदुश्चावभृथोत्सवे ॥३८॥  
 नर्तकयो ननृतुर्हृष्टा गायका युथशो जगुः । वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥३९॥  
 चित्रध्वजपताकाग्रैरिमेन्द्रस्यन्दनार्धभिः । स्वलंकृतैर्भृतैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥४०॥  
 यदुसृजपकाम्योजकुरुकैक्यकोसलाः । कम्पयन्तो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरःसराः ॥४१॥  
 सदस्यतिंगिद्वजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा । देवपिंपितृगन्धर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४२॥  
 स्वलंकृता नरा नार्यो गन्धन्नगभूयणाम्भरैः । विलिपन्त्योऽभिपिंचन्त्यो विजहृविधैरसैः ॥४३॥  
 तैलगोरवगन्धोदहरिद्रासान्द्रकुकुमैः । उभिलिपाः प्रलिपन्त्यो विजहृवारयोषितः ॥४४॥  
 एवं नानासमृतमाहैः श्रीरामश्च ससीतया । पश्यन्नानाकौतुकानि स्यन्दनेन शनैः शनैः ॥४५॥  
 अगमत्सर्यतीरे रामनीर्थं शुभावहम् । अवरुद्ध रथाद्रामः सीतया सरयूजले ॥४६॥  
 स चकार जलेष्टि तैर्गतिविभिः परिवारितः । पनीसंयाजावभृथ्येश्चरित्वा ते तमृत्विजः ॥४७॥  
 सर्वे रामहृदे विग्रा यजमानपुरःसराः । आचान्तं स्नापयाश्वकः सरथ्वां सह सीतया ॥४८॥

पुष्पकस्थ जनता रास्तेमे जाते हुए सीतारामको प्रेमसे देखने लगी ॥ ३० ॥ वे कहने लगे—हम धन्य हैं और परिपूण मनोरथ हैं, जो अपने नेत्रोंसे सीतारामको देख रहे हैं । कोई बोला कि हमारे जन्मदाता माता-पिता धन्य हैं । जिनके पुण्यसे हमको सीतारामके दर्शन हो रहे हैं ॥ ३१ ॥ इस तरह कौतुक देखते हुए श्रीराम चले जा रहे थे, तब अन्यान्य स्त्रियाँ परस्पर दिचार करके पुष्पकमें बैठानेके लिए जानकीसे प्रार्थना करने लगीं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उनको प्रार्थना सुनकर सीताजीने सामने बैठे लक्षणसे कहा—॥ ३४ ॥ ये स्त्रियाँ बारम्बार मुझसे प्रार्थना कर रही हैं । अतः मेरी आज्ञासे इनको भी पुण्यकविमानकी स्त्रीशालामें बैठा दो ॥ ३५ ॥ लक्षणजीने उत्तरमें 'बहुत अच्छा' कहकर उन स्त्रियोंको शोभ्र पुष्पकों नारीशालामें बैठा दिया ॥ ३६ ॥ उसपर आँख होकर वे झरोखोंमें सीताको देखने और पुण्योंकी दर्शी करने लगीं ॥ ३७ ॥ उस अवभूयस्नानोत्सवके उपलक्ष्यमें लोग मृदङ्ग, शंख, पणव ( ढोल ), घुञ्चुर्यानिक ( नगाड़ ) एवं गोमुख ( मेरी ) प्रभूति विचित्र-विचित्र वाद्योंको बजाने लगे ॥ ३८ ॥ नर्तकियाँ प्रसन्न होकर नाचने लगीं । गायकसमूह गायन गाने लगे और वीणा-वेणु प्रभूति वाद्योंका शब्द आकाशको गुच्छित करने लगा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ चित्र-विचित्र व्यजा-न्यताकाओंसे सुशोभित हाथी-घोड़े तथा रथोंके द्वारा सजे हुए योद्धाओंके साथ सब राजे चल रहे थे ॥ ४० ॥ यदु, सृजजय, काम्बोज, कुरु, केकय एवं कोसलवंशी राजाओंका वृन्द श्रीरामको आगे करके पृथ्वीमण्डलको कैपासा हुआ चल रहा था ॥ ४१ ॥ सदस्य, ऋत्विक् एवं ब्राह्मणवृन्द वेदधोष करने लगा और देवता, ऋषि, पितर एवं गन्धर्व पृष्पवृष्टिकरने लगे ॥ ४२ ॥ गन्ध, माला, आभूयण एवं वस्त्रोंसे अलंकृत नारियाँ विविष रसोंको छिड़कती हुई परुषोंके साथ विहार करने लगीं ॥ ४३ ॥ वेश्याएं भी तैल, गोरस, गन्धोदक, हरिद्रा तथा गीला कुमकुम पूरुषोंपर उंडेलती हुई उनके साथ खेलने लगीं ॥ ४४ ॥ इस तरह अनेक प्रकारके आनन्दमय कौतुक देखते हुए श्रीराम और सीता रथके द्वारा घोरे-घोरे सरदूके तोरस्य शुभावह रामतीर्थंपर पहुंचे और वहां उत्तर पढ़े ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ऋत्विजोंसे परिवेष्टित श्रीराम सरयुके जलमें जलेष्टि करने लगे । ऋत्विक् लोगोंमें उनको पत्नीके साथ सवाज एवं अवभूव स्नान करवाया ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण लोग रामतीर्थके सरयुजलमें सीताके

शत्रुघ्नेन पुराऽनीतैर्नातीर्थजले स्तदा । रामाभिषेकं ते चक्रमुदौ मंत्रैमुनीश्वराः ॥४९॥  
 देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समयः । मुमुचुः पूष्पर्पाणि देवपिंगिलमानवाः ॥५०॥  
 सस्तुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमपूता नगाः । महापात्रकिनश्चापि स्नान्वा मुक्ताः स्वपातकात् ॥५१॥  
 अथ रामोऽहते भीमे परिधाय स्वलंकृतः । शुशुभे नितरां दिव्यकंकणाभ्यां सुमंडितः ॥५२॥  
 केयूराभ्यां कुण्डलाभ्यां मुक्तादारैर्विचित्रितैः । नानारथ्यैर्हार्थैर्व रत्नानां नपुगदिभिः ॥५३॥  
 हृदि चित्तामणियुतः कठे कोऽनुभवदितः । चित्तयणिकौमुनीभयोः प्रभया दीपितोदः ॥५४॥  
 कोटिसूर्यप्रतीकाशः सिकतायां वरासने । तद्वारा जनकमदिन्या ऋत्विभिः परिवेष्टितः ॥५५॥  
 अर्थत्विरभ्योऽददात्काले यथामनायं स दक्षिणाः । स्वलंकृतेभ्योऽलंकृत्य गोभृतुरगतारणान् ॥५६॥  
 कामधेनुमलंकृत्य गुरुं दातुं समुद्यतः । तज्जातदा चित्तयामाम् वसिष्ठः स स्वचेनसि ॥५७॥  
 अस्ति मां नंदिनी नाम्नी कामधेनुमुतादुता । नास्याः प्रयोजनं मेऽय हात्रापूर्वं करोमयद्यु ॥५८॥  
 अस्यैवास्तु कामधेनुरस्य योग्यो रघुनन्दः । तां वर्जयित्वा रामस्य कीर्तवर्थं जगातितले ॥५९॥  
 याचामयहं शुभां सीतां सालंकारां सदक्षिणाम् । औदाय गवदस्याद्य दशयिष्याभ्यहं जनान् ॥६०॥  
 इति निश्चित्य स गुरुस्तदा प्राह रघुनन्दः । करोनि किं विनुदानं तेन त्रिसिने मे भवेत् ॥६१॥  
 यदि दास्यसि देया मे सीताऽलंकारांडाना । नया त्रिसिभवन्मद्य नान्यैर्नारीशतेरपि ॥६२॥  
 तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठस्य जनास्तदा । हाहाकारं मदच्चक्रुविंपणा भयविह्लाः ॥६३॥  
 केचिद्दुर्विसिष्ठोऽयं किं भ्रांतो जठरोऽय हि । केचिद्दुर्विनोदोऽयं कृतोऽस्त्रिमुनिनाऽत्र हि ॥६४॥  
 केचिद्दूर्व राघवस्य धैर्यं पश्यन्त्ययं मुनिः । केचिद्दूर्व गधवोऽव किं करिष्यति पश्यताम् ॥६५॥  
 एतस्मिन्नन्तरे रामः श्रुत्वा तच्च गुरोर्वचः । प्रहस्य संज्ञया सीतामाहृय गुरुपन्निधी ॥६६॥

साथ श्रीरामको आचमन कराकर स्नान करवाने लगे ॥४८॥ मुरोऽश्वर लोगोनि पहले शत्रुघ्नके लाये हुए विविध तीर्थोंके जलसे उन्हें स्नान करवाया ॥४९॥ उस समय मनुष्योंके नगाड़ोंके साथ साथ देवताओंके नगाड़े भी बजने लगे और देवता, ऋषि, पितर एवं मनुष्य पूष्प वरसाने लगे ॥५०॥ सभी वर्णाश्रमी लोग रामतीर्थमें स्नान करने लगे । महापात्रकी भी बहाँ स्नान करक अपने पातकोंसे छूट गये ॥५१॥ इसके बाद राम नवीन रेणमी वस्त्र पहिन तथा विष्व कंकणोंसे मणित होकर अत्यन्त सुशोभित होने लगे ॥५२॥ दोनों बाजुओंमें केयूर, कानोंमें कुण्डल, गलेमें मुत्तामाला तथा पुष्पमाला और पैरोंमें रलजटित नूपुरोंको पहने हुए सीताजी भी अत्यन्त सुशोभित होने लगी ॥५३॥ भगवान् राम हृदयपर चित्तामणि और कण्ठमें कौस्तुभ मणि पहिने हुए थे । उस चित्तामणि और कौस्तुभकी कान्तिसे चमकते हुए कोटि सूर्यकी कान्तिके समान तेजस्वी धीरामचन्द्र ऋत्विक् लोगोंसे परिवेष्टित होकर सरबूकी रेतोम ही थेष्ट आसनपर सीताके साथ बैठ गये ॥५४॥ ५५॥ बादमें अच्छी तरह अलंकृत ऋत्विजोंको और भी अलंकृत करके वे जास्त्रानुसार गो, भूमि, घोड़े एवं हाथी दान देने लगे ॥५६॥ जब वे कामधेनुको भी अलंकृत करके गुरु वसिष्ठको देनेके लिए उद्यत हुए, तब वसिष्ठ विचार करने लगे— ॥५७॥ मेरे पास इसकी कम्बा नन्दिनी है ही, तब इससे मेरा वया अर्थं सिद्ध होगा । मुझे इसका कोई प्रयोजन नहीं है । यह कामधेनु राम ही के पास रहे तो अच्छा हो । क्योंकि इसके योग्य राम ही हैं । इसको छोड़कर मैं रामको कौति बहानेके लिए सालंकारा एवं सदक्षिणा सीताको मांगता हूँ । ऐसा करके मैं आज रघुवेष्ट रामका अपूर्व ओशवं संसारको दिलाऊंगा ॥५८-६०॥ ऐसा निश्चय करके वसिष्ठजी बोले—वया आप कामधेनु दान करते हैं ? इससे मेरा तृप्ति नहीं होगी ॥६१॥ यदि देना ही हो तो अलङ्कारोंसे सुशोभित सीताको दीजिये । उसीके दानसे मेरी तृप्ति होगी । अन्य संकड़ों स्त्रियोंसे भी मेरी तृप्ति न होगी ॥६२॥ इस प्रकार ऋषि वसिष्ठके वचन सुनकर विष्व एवं भयविह्ल जनता महान् हाहाकार करने लगी ॥६३॥ जनता कहने लगी—“मालूम पड़ता है कि बूढ़ा वसिष्ठ पागल हो गया है” “नहीं भाई” किसीने कहा “ऋषिने रामसे मजाक किया है” ॥६४॥ कोई कहने लगा—“ऋषि रामजीके धैर्यको अज्जमा रहे हैं” । कोई कहने

सीतायाः स्वकरेणैव धृत्वा बामकरं मुदा । सभायां राघवः प्राह वसिष्ठं तोषयन्मुदा ॥६७॥  
 स्त्रीदानमन्त्रो वक्तव्यः सीतादानं करोमि ते । तथेति मुनिवृन्देषु वसिष्ठश्च यथाविधि ॥६८॥  
 अङ्गीचकार स्त्रीदानं राघवेण समपिंतम् । चकितं च तदाऽभृद्वै सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥६९॥  
 देहभानं न कस्यासीन्नदासीदतिचित्रवत् । तदा सीतां मुनिः प्राह मत्पृते तिष्ठ बालिके ॥७०॥  
 ममापिताऽसि रामेण त्वां मन्येऽहं सुतोपमाम् । तन्मुनेवंचनं श्रुत्वा सीता सा खिन्नमानसा ॥७१॥  
 रामन्यस्तेक्षणा साध्वी मुनेः पृष्ठे त्रूपाविशत् । वभूत्वाश्रूपूर्णनेत्रा सा रोमांचितविग्रहा ॥७२॥  
 ततो रामः पुनः प्राह वसिष्ठं विनयान्वितः । गृहाण सुरभिं चापि सीतायै ह्यपितां पुग ॥७३॥  
 मया तोषेण कैलासे मन्मणेस्तोषदायिनी । मयाऽपि दातुमानीता तच्छ्रुत्वा गुरुत्रवीत् ॥७४॥  
 राम राम महाबाहो तवौदायै च दर्शितम् । याचिता तत्र पत्नीयं मया तेऽस्तु पुनः शुभा ॥७५॥  
 अस्याः कुरु तुलामय सुवर्णेन रघृत्तम् । अष्टवारं प्रतुलितं सीतया रुक्ममुत्तमम् ॥७६॥  
 मां दत्त्वेयं त्वया ग्राह्या पुनः सपदि मद्दिगा । अन्यत्किञ्चिल्लिङ्गेण स्वं वचनं यन्मयोच्यते ॥७७॥  
 धेनुं चितामणिं सीतां कौम्तुभं पृष्ठकं पुरीम् । स्वयं राज्य मयोध्ययां त्वं चेत्कस्य प्रदास्यसि ॥७८॥  
 अग्रे कदा तदाऽङ्गा मे त्वया लुप्ता भविष्यति । ममाज्ञाभङ्गदोषेण वहुक्लेशो भविष्यसि ॥७९॥  
 मदुक्तैः समभी राजन् विना यद्यत्यमिच्छसि । तत्तददस्व विप्रेभ्यो त्वं सुखं द्यविचारतः ॥८०॥  
 तदृगुरोर्वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा रघृत्तमः । सीतां तुलायामारोप्य सुवर्णेनाष्टसंख्यया ॥८१॥  
 तुलितां प्रतिज्ञाह गुरोः साध्वीं स्मिताननाम् । दिव्यालंकारहीनां तां कंचुकीवत्संयुताम् ॥८२॥  
 तदा निनेदुर्वाद्यानि ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । सुरस्त्रियो विमानस्थाः सीतारामौ मुदान्विता ॥८३॥

एगा—“देखो, अब रामजी क्या करते हैं” ॥ ६५ ॥ इस तरह गुरुका वचन सूना तो रामजीने हँसकर संकेतसे सीताको और गुह वसिष्ठको दुलाया ॥ ६६ ॥ उन्हें दुलाकार सभामें ही आनन्दपूर्वक अपने हाथसे सीताका बायां हाथ पकड़कर नसिष्ठजीको प्रसन्न करते हुए बोले—॥ ६७ ॥ “गुरुदेव ! आप स्त्रीदानका मन्त्र बोलिये, मैं सीताको धान करता हूँ” । वसिष्ठजीने भा “तयास्तु” कहकर रामके द्वारा दिये हुए स्त्रीदानको यथाविधि स्वीकार कर लिया । उस समय सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् आश्रवसे चकित रह गया ॥ ६८ ॥ ६६ ॥ उस समय सारा संसार चित्रलिखित-सा हो गया । किसीको अपनी देहकी भी सुवि नहीं रही । तब मुनि वसिष्ठ सीतासे बोले—सीते ! मेरे पीछे आकर बैठो ॥ ७० ॥ रामजीने मेरे लिये तुम्हें दान किया है । मैं तुमको पुत्रीकी तरह मानता हूँ । इस तरह मुनिके वचन सुनकर दुःखिता साध्वी सीता मुनिके पीछे जाकर बैठ गयी । उस समय उनके रोगटे खड़े हो गये और वे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ तदनन्तर विनयी रामजी वसिष्ठजीसे बोले—मैंने प्रसन्न होकर कैलास पवरतपर सीताको सुरभी गाय दी थी । अतः इस मनस्तोषदायिनी सुरभीको भी आप ले लें । वयोंकि आपको देनेके लिए हीं मैंने इसको मैंगाया था । यह सुनकर गुह वसिष्ठ बोले—॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे राम ! हे महाबाहो ! मैंने आपकी उदारता देखनेके लिए हीं सीताको माँगा था । अतएव अब मेरे द्वारा दो हुई यह सीता पुनः आपकी हो जाय ॥ ७५ ॥ हे रघृत्तम ! सुवर्णके वरावर इसको तौलिए । आठ बार तौलनेपर जितना स्वर्ण हो, उसे मुझे देकर मेरी आज्ञासे आप पुनः सीताकी ले लें । और भी जो मैं कहता हूँ, उसे सूनें ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ भविष्यमें कामधेनु, चिन्तामणि, सीता, कौम्तुभ रत्न, पृष्ठक विमान, अयोध्यापुरी एवं अपना राज्य यदि आप किसीको देंगे तो मेरे आज्ञाभंगजन्य दोषसे ब्रत्यन्त दुःखी होंगे । वयोंकि आज्ञाक आपने कभी भी मेरी आज्ञा भङ्ग नहीं की है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ अतः हे राजन् ! मुनिनिर्दिष्ट सात वस्तुओंको छोड़कर जो इच्छा हो, विना विचारे ज्ञाहृणोंको देकर आप सुखी होंगे ॥ ८० ॥ इस तरह गुरुके वचन सुनकर रघृत्तम रामने कहा—‘वहुत अच्छा गुहदेव’ और सीताको आठ बार सुवर्णसे तौलकर उनसे वापस ले लिया ॥ ८१ ॥ तब केवल कंवुकी वस्त्र पहने तथा दिव्यालंकारोंसे रहित भी सीता प्रसन्न हो गयीं । इसके अनन्तर बाजे बजने लगे और विमानपर बैठी हुई देवांगनावें प्रसन्न होकर सीतारामके ऊपर पुष्पवृष्टि करने

पूर्वाधिकानलंकारान्स्वदेहे जानकी दधौ । जनाः सर्वे सुमंतुष्टास्तदाऽसन्मुदिताननाः ॥८४॥  
अथ सीता पति नत्वा तत्पाश्चेऽस्तिताऽभवत् । स्मिताननाऽनंदमग्ना लजिता रामलोचना ॥८५॥  
ततो रामोऽप्यनेकानि कृत्वा दानानि विस्तरात् । ऋत्विक्सदस्यमुख्यादीनानचर्याभरणांवरैः ॥८६॥  
स्त्रीयज्ञातीन्नपान्मत्रसुहृदोऽन्यांश्च सर्वशः । अभीक्षणं पूजयामास बखालंकारभूषणः ॥८७॥

सर्वे जनाः सूललितोन्मणिकुण्डलस्मगुणीपकंचुकदृक्लमहार्घहाराः ।

नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृद्धजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥८८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितात्मने श्रीमदानन्दरामायणे वान्मीकीये यागकाण्डे  
अवभूयोत्सववर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

### नवमः सर्गः

( अश्वमेध महायज्ञकी समाप्ति )

श्रीरामदास उवाच

श्रीरामेऽवभूयस्नाते शंभुव्रक्षादिभिः सुरैः । रामं वेदस्तत्वैः स्तुत्वा प्रत्युवाच पुरः स्थितः ॥ १ ॥  
अद्य धन्या वयं सर्वे यच्चां स्नातं सुमंगलम् । पश्यामो वाज्यवभूये सीतया वंशुभिः सह ॥ २ ॥  
अस्माकं हर्षकालोऽयं देवदेव दयानिधे । तस्माद्यं सदा पुण्यः श्रेष्ठकालो भविष्यति ॥ ३ ॥  
त्वं चाप्यंभीकुरुष्याद्य देहस्मै सुवहृन्वरान् । अन्यञ्चश्चात्र प्रत्यब्दं येन ते दर्शनं भवेत् ॥ ४ ॥  
तथा कुरु रघुश्रेष्ठ तीर्थायास्मै वरान्वद । अन्यानि च त्वया पूर्वयानि भूम्यां कृतानि हि ॥ ५ ॥  
यात्राकाले सुतीर्थानि लिंगान्यपि निजाख्यया ।

तेषामपि वरानद्य वद त्वं मम वाक्यतः ॥ ६ ॥

पुरीषु श्रेष्ठाऽयोध्येयं त्वया वाच्याऽद्य राघव । नदीषु सरयुः श्रेष्ठा वरैः कार्याद्य मद्दिरा ॥ ७ ॥  
तच्छभुवचनं श्रुत्वा प्रदृश्य रघुनन्दनः । हर्षकालेऽब्रवीद्राक्षं यत्त्रैलोक्योपकारकम् ॥ ८ ॥

लगे ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ जब जानकीजीने पहलेसे भी अविक आभूषणोंको अपने शरीरमें पहना तो उससे जनता अत्यन्त सन्तुष्ट हुई ॥ ८४ ॥ इसके बाद पतिको प्रणाम करके हँसती हुई सीताजी आनन्दमग्न होकर लज्जापूर्वक रामके पास बैठ गयीं । तदनन्तर रामजीने खूब दान दिये एवं ऋत्विक्, सदस्य, राजे, मित्र, सूहृद तथा अपने भाई-वन्धुओंका वस्त्राभूषणोंसे भली भाँति सत्कार किया ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ उस समय रामजीके यज्ञमें सब पुरुष मनोहर मणियोंसे जटित कुण्डलों एवं मालाओंको पहिने तथा वहुमूल्य पगड़ी, कंचुकी और दुष्टूंसे सुशोभित हो रहे थे । इसी तरह कुण्डल, रत्नजटित आभूषण तथा सानेकी मेखला ( तागड़ी ) से सुशोभित हिंद्रिये भी विराज रही थीं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे ५० रामतेजपाण्डेयकृत-‘ज्योत्स्ना’भाषाटीकायामवभूयोत्सववर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासजी कहने लगे—श्रीरामने जब अवभूय स्नान कर लिया, तब ब्रह्मादि देवोंके साथ महादेव रामजोकी स्तुति करके कहने लगे—॥ १ ॥ आज हम लोग घन्य हैं, जो सीता एवं वन्धुओंके सहित आपको यह अश्वमेधका अवभूय स्नान किये हुए देख रहे हैं, जो अतोव मंगलकारक है ॥ २ ॥ हे देवदेव ! हे कृपानिधि ! यह समय हम लोगोंके लिए बड़ा हृष्प्रद है । अतः यह सदा अत्यन्त श्रेष्ठ और पृथ्वद्दंक होंगा ॥ ३ ॥ आप भी इसको अझीकार करें और इसके लिए अच्छे एवं वहुतसे ऐसे वर दें कि जिससे हमलोगोंको प्रतिवर्ष आपका दर्शन मिलता रहे ॥ ४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आप इस तीर्थके लिए भी बद्दतेर बरोंको दें । पाशा करते समय पहले भी आपने जिन तीर्थों एवं लिंगोंको स्थापित किया है, उनको भी मेरे कहनेसे आप वरदान दे ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राघव ! आज मेरे कहनेसे आप ऐसा कह दीजिये कि सद नागरिकोंके लिए श्रेष्ठ यह अयोध्या नगरी है एवं

श्रीराम उवाच

यत्प्रार्थितं त्वया शंभो तदेव हृदि मे स्थितम् । मृणुष्व वचनं मेऽद्य यदूपात्प्रोद्ध्यते शुभम् ॥ ९ ॥  
सर्वेषामेव मासानां श्रेष्ठश्चायं मधुर्भवेत् । वैशाखात् कार्तिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्मास एव च ॥ १० ॥

माघमासाद्वरश्चायं चैत्रमासो भविष्यति ।

चैत्रमासेऽभवजन्म मम यस्मात्तथा पुनः ॥ ११ ॥

वाजिमेधावभृथेषु स्नानेनापि विशेषतः । सर्वेषामधिकशास्तु नयुस्ते वाक्यगौरवात् ॥ १२ ॥

चैत्रमासे कृतं दत्तं हुतं स्नातं विचित्रितम् । सर्वे कोटिगुणं प्रोक्तमयोद्ध्यायां विशेषतः ॥ १३ ॥

सर्वासु प्रथमा चेयं पुरीषु नगरी मम । अयोध्या मुक्तिदात्री तु भविष्यति गिरा मम ॥ १४ ॥

अन्यत्र यत्कृतं पुण्यं षष्ठिसंवत्सरैः शुभम् । तदत्र दिवसैकेन भविष्यति नृणां सदा ॥ १५ ॥

पुरीणां मथुरा ज्ञेया राजधानो शुभप्रदा ।

त्वयाऽस्यै याचितो यस्माद्वारार्थमहमादरात् ॥ १६ ॥

तब वाक्याद्वौरवेण तब काश्याः शताधिका । भविष्यति पुरी चेयमयोद्ध्या मम वल्लभा ॥ १७ ॥

नदीषु सरयुश्चेयं श्रेष्ठाऽस्तु वचनान्मम । सरयूसद्वशी नान्या नदी भूता भविष्यति ॥ १८ ॥

अस्यामपि मया चेदं रामतीर्थं विनिर्मितम् । निजतेजप्रतापेन तीर्थेषु सुकुटोपमम् ॥ १९ ॥

भविष्यति न सन्देहः सर्वपातकनाशनम् ।

तथा यानि पृथिव्यां हि मया तीर्थानि वै पुरा ॥ २० ॥

लिंगान्यपि स्वीयनाम्ना कृतानि तानि शंकर । स्नाने दर्शनाचर्चिर्मुक्तिदाऽन्यत्र संतु वै ॥ २१ ॥

रामतीर्थे चैत्रमासे प्रत्यब्दं भूवि मानवैः । स्नातव्यं विधिना सम्यहनियमैर्मम वाक्यतः ॥ २२ ॥

यच्छ्रेयश्चमेधेन यद्गोमेधेन वै फलम् । यत्कलं सोमयागेन तच्चैत्रेऽत्रावगाहनात् ॥ २३ ॥

सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेयः स्नानदानतः ।

तच्छ्रेयः स्यान्मधी स्नानादयोध्यायां सुरेश्वर ॥ २४ ॥

नदियोंमें उत्तम सरयू नदी है । शिवजीका यह कथन सुनकर हैसते हुए राम सहर्ष त्रिभुवनोपकारिणी वाणी बोले ॥ ७ ॥ ८ ॥ श्रीरामने कहा—हे शम्भो ! आप जो चाहते हैं, वही मेरे भी मनमें है । आप मेरी वात मुनिये । मैं हृषीपूर्वक यह कल्याणमय वाक्य कहता हूँ ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण मासोंमें श्रेष्ठ यह चैत्र मास होगा । वैशाखसे कार्तिक, कार्तिकसे माघ एवं माघ महीनेसे भी चैत्र धोष्ठ होगा । इसी मासमें मेरा जन्म हुआ है । इसलिए भी यह चैत्र मास धोष्ठ है ॥ १० ॥ ११ ॥ अश्वमेघीय अवभूय स्नान होने तथा आपके वाक्यगौरवसे भी यह महीना सबसे श्रेष्ठ होगा ॥ १२ ॥ चैत्र मासमें यहाँ स्नान-दान आदिका कोटिगुणा फल होगा । अयोध्यामें किया हुआ सुकर्म तो और भी अधिक पुण्यप्रद होगा ॥ १३ ॥ यह मेरी पुरी सब तगसियोंमें उत्तम है तथा मेरी वाणीसे यह मुक्तिदात्री भी अवश्य होगी ॥ १४ ॥ और जगह किया हुआ पुण्यकार्य ६० वर्षमें फलदायक होता है, किन्तु यहाँ किया हुआ पुण्य एक ही दिनमें फलदायक होगा ॥ १५ ॥ वैसे पुरियोंमें शुभप्रद पुरी मथुराको समझें क्योंकि आपने मुझसे वर माँगा है ॥ १६ ॥ अतएव आपके वाक्यगौरवसे यह मेरी प्रिया अयोध्यापुरी गुणोंमें आपकी काशीसे भी सौगुनी श्रेष्ठ होगी ॥ १७ ॥ मेरे वचनसे सरयू सब नदियोंमें श्रेष्ठ होगी । सरयू जैसी नदी न है और न होगी ॥ १८ ॥ उसमें भी मेरा बनाया हुआ यह रामतीर्थ अपने प्रतापसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें मुकुट सदृश होगा ॥ १९ ॥ हे शंकरजी ! मैंने अपने नामसे भूमिपर जितने भी तीर्थ एवं शिवलिंग स्वापित किये हैं, वे सब स्नान-दर्शन एवं पूजनसे मुक्ति देनेवाले तथा सर्वपापनाशक होंगे । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ २१ ॥ मनुष्योंको प्रतिवर्ष चैत्र मासमें विधिपूर्वक, यम-नियमादिके साथ रामतीर्थमें स्नान करना चाहिये ॥ २२ ॥ अश्वमेघ एवं सोमयाग करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल रामतीर्थपर स्नान करनेसे मिल जाता है ॥ २३ ॥ सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें स्नान-दान करनेसे जो फल होता है, वही फल चैत्रमें अयोध्यास्नान करनेसे

अयोध्यायां रामतीर्थे सरयूजलयस्तिवतः । चैत्रस्नानं प्रहृष्टान्ते नरा मोक्षमाग्निः ॥२५॥  
यथा माधे प्रथागे हि स्नातव्यं सुखमिच्छन्तः । कातिकेऽपि ददा काश्चां पञ्चगंगाजले स्मृतः ॥२६॥  
द्वारकायां यथा ग्रोक्ता वैशाखे चक्रतीर्थे ।

अयोध्यायां रामतीर्थे तथा चैत्रउत्तराहनम् ॥२७॥

करणीयं नरभक्त्या वचनान्मम सर्वदा । सर्वेषां च सासेषु प्रथमः सकलैर्जनैः ॥२८॥  
एतावत्कालपर्यन्तं मार्गशीर्षः प्रयायते । अद्यारभ्य मधुश्चाय प्रथमः रुयातिमेष्यति ॥२९॥  
यथा देवेषु प्रथमस्त्वं महेशस्तथा मधुः ।  
मासेषु प्रथमश्चास्तु तथाऽयोध्या पुरीष्वपि ॥३०॥

चैत्रे मासे तु संप्राप्ते सर्वे देवाः सवासवाः । चहिर्जलं समाश्रित्य तिष्ठुध्वं हि ममाज्ञया ॥३१॥  
प्रत्यन्दं चैत्रमासेऽत्र यथेदानीं समागताः । आगंतव्यं तथा सर्वैस्त्रैलोक्यांतरवासिभिः ॥३२॥  
जरठैरातुरैः श्लीभिर्येषां यत्संनिधीं मम । रामतीर्थे प्रगंतव्यं सर्वत्र भुवि शंकर ॥३३॥  
चैत्रमासेऽवगाहार्थे वचनान्मम सर्वदा ।

इति रामवचः श्रुत्वा गिरिजा प्राह जानकीम् ॥३४॥

सीते वरास्त्वया देया इदानीं वचनान्मम । नारीणां च हितार्थं हि सर्वलोकोपकारकाः ॥३५॥  
पार्वत्या वचनं श्रुत्वा जानकी प्राह सादरम् । पृथिव्यां भम तीर्थानि यानि सन्ति सहस्रशः ॥३६॥  
अत्रापि च महूच्छ्रेष्ठं यत्र स्नातं मयाऽध्युना ।

तेषु चैत्रत्रुटीया या यावद्वैशाखसंभवा ॥३७॥

सिता त्रुटीयाऽक्षयारुद्यातावत्स्त्रीभिस्तु सादरम् । स्नातव्यं शीतलागौरीसंज्ञकं स्थानमुत्तमम् ॥३८॥  
सौभाग्यदं मासमेकं पुत्रपौत्रप्रदूनम् । सर्वत्र रामतीर्थस्य वामे तीर्थं ममास्ति हि ॥३९॥  
इति दत्त्या वरान्सीताऽसीत्त्रुटीया रामसन्निधीं ।

ततो गमं गुरुः प्राह गन्तव्यं यज्ञमंडपम् ॥४०॥

प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ जो अयोध्याके सरयूजलस्य रामतीर्थमें स्नान करते हैं, वे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ २५ ॥  
जो फल माघमासमें प्रयामस्नानका है, कातिकमें काशीकी पञ्चगङ्गामें स्नान करनेका है और द्वारकामें  
चत्रतीर्थपर वैशाखस्नानका जो फल है, वहाँ फल अयोध्याके रामतीर्थपर चैत्र मासमें स्नान करनेका है  
॥ २६ ॥ २७ ॥ आजसे जनता मेरे कहनेसे बारह महीनोंमें चैत्रको पहला महीना समझे ॥ २८ ॥ आज तक  
मार्गशीर्ष ( अग्रहन ) सबसे प्रथम मास माना जाता था, पर आजसे चैत्र प्रथम मास समझा जायगा ॥ २९ ॥  
जैसे देवताओंमें पहले आप ( शिव ) हैं, इसी तरह मासोंमें प्रथम चैत्र और पुरियोंमें प्रथम अयोध्या समझी  
जायगी ॥ ३० ॥ जैसे इस समय आप लोग यहाँ आये हैं, उसी तरह प्रतिवर्ष चैत्र मासमें आये और मेरी जाज्ञासे  
सरयू तटपर आथ्रम बनाकर निवास करें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ बूढ़े, आतुर ( रोगी ) एवं स्त्रियें भी जिसके पास जो  
कुछ हो, उसी वस्तुको श्रद्धा-भृत्यसे भेट देने तथा चैत्रमासमें स्नानार्थ यहाँ आया करें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस  
प्रकार रामके वचन सुनकर पार्वतीजी सोतासे बोलीं—हे सीते ! आप भी इस समय मेरे कहनेसे सर्वलोकोप-  
कारक एव विशेष करके स्त्रियोंका हितकर वर प्रदान करें ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पार्वतीके वचन सुनकर  
सीताजी बोलीं—पृथिवीपर जितने भी मेरे तोर्थ हैं और यहाँपर जो महाश्रेष्ठ तीर्थ हैं, जिनमें मैंने स्नान  
किया है, उन सब तीर्थोंमें चैत्रकी त्रुटीयासे लेकर वैशाखकी अक्षव्रत त्रुटीया पर्यन्त स्त्रियोंको स्नान  
करना चाहिये । यह शीतलागौरी स्नान कहलायेगा । यह स्नान एक मास होता है । यह स्नान  
सौभाग्य देनेवाला एवं दुत्रपौत्र वद्वानेवाला है । सभी स्थानोंमें रामतीर्थके वामभागमें मेरा तीर्थ  
है ॥ ३६-३९ ॥ इस प्रकार वर देकर सीताजी त्रुप हो गयी । इसके बाद गुरु विष्णु रामजीसे बोले

तदुगुरोर्वचनं श्रत्वा तथेत्युक्त्वा रघृद्धः । आरुरोह रथं शीघ्रं सीतयात्मिक्जनैः सह ॥४१॥  
ततो नेदुर्दुन्दुभयौ भेरीणां निःस्वनास्ततः । मृदंगपणवादीनां महाघोषाः समततः ॥४२॥

वेदघोषाश्च सर्वत्र जयशब्दा द्विजेरिताः ।  
वभूवुमत्रशब्दाश्च ननृतुवाप्सरोगणाः ॥४३॥

नानोत्सवैः पूर्ववच्च कौतुकानि समततः । पश्यन्ययौ रामचन्द्रः शनैरध्वरमंडपम् ॥४४॥  
अवस्था रथाल्ढीघ्रं नीत्वाऽप्तिं प्राक्षिपत्पुनः । यज्ञकुण्डे रामचन्द्रः सीतयात्मिक्जनैः सह ॥४५॥

पूर्णाहृति ततो दत्त्वा वस्त्रैराभरणैः फलैः ।  
कृत्वाऽप्त्रं पूजनं चापि यज्ञपात्राणि राघवः ॥४६॥

ततो विसर्जयामास यज्ञांते दक्षिणां बहु । दातुं तानृत्विजः सर्वान् सौमित्रिं राघवोऽव्रवीत् ॥४७॥  
कोशागरं लक्ष्मणाद्याः सर्वे मे ऋत्विजस्त्वया । नीत्वा दत्तात्रिराकृत्य तूर्णीं स्थेय ततः परम् ॥४८॥

यथेच्छ्याऽमितं येन गृहीतमुत्तमं वसु ।  
तस्याश्रमे प्रापणीयं वाहनाद्यैश्च तत्त्वया ॥४९॥

ततो मुनिजनान् सर्वान् देयं विपुलहस्ततः । तद्रामवचनं श्रुत्वा लक्ष्मणोऽपि तथाऽक्षरोत् ॥५०॥  
ततो विसर्जयामास भोजयित्वा रघृत्तमः । ऋत्विजनान् संवृणोतान्वाजिमेधाख्यकर्मणि ॥५१॥  
ततो रामोऽमरान्सर्वान् शिवाद्यान्विविधैर्निजैः । पूजयामास विधिवद्वस्त्रालकारवाहनैः ॥५२॥

ददौ कोशान्सतुरगान् केषां स शिविकां ददौ ।  
केषां रथान्गजान्केषां ददौ वस्त्राण्यपीश्वरः ॥५३॥

एवं पृथ्वीपतीश्चापि सावरोधान् ससेवकान् । वस्त्रैराभरणैर्यानैः पूजयामास भोजनैः ॥५४॥  
ततो रामः स्वशरांरे दिव्यवस्त्राणि सन्दधौ । तदा तं पूजयामासुर्वलिभिर्विद्वधा नृपाः ॥५५॥

कि अब यज्ञमण्डपको चलना चाहिये ॥ ४० ॥ इस तरह गुरुजीके बचन सुने तो राम 'तथास्तु' कहकर शीघ्र सीता एवं ऋत्विक् लोगोंके साथ रथपर चढ़े ॥ ४१ ॥ उस समय नगाड़े बजने लगे, भेरीके शब्द होने लगे और मृदंग-पणव प्रभूति वाद्योंके घोषसे सब दिशायें व्याप्त हो गयीं ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण वेदघोष तथा जयजय-कारके शब्द करते हुए वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करने लगे और वेष्टायें नाचने लगीं ॥ ४३ ॥ पहलेकी तरह विविध उत्सवों एवं कौतुकोंको देखते हुए राम शनैः शनैः यज्ञमण्डपमें गये ॥ ४४ ॥ वहाँ उन्होंने शीघ्र रथसे उत्तरकर साथकी अग्निको यज्ञकुण्डमें ठोड़ दिया । बादमें सीता एवं ऋत्विजोंके साथ पूर्णाहृति करने लगे । उन्होंने वस्त्र-आभूषण एवं फलोंसे अग्निका पूजन करके यजपात्रोंका विसर्जन कर दिया और यज्ञांतमें ऋत्विजोंको विपुल दक्षिणा देनेकी आज्ञा देते हुए रामने लक्ष्मणसे कहा— ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण ! इन सब ऋत्विजोंको कोषागरमें ले जाकर वहाँके पहरेदारोंको हटा दो और तुम चुपचाप अलग खड़े हो जाओ ॥ ४८ ॥ जिसको जितनो इच्छा हो, उसको बिना रोक-टीक उतना द्रव्य ले लेने दो । लिया हुआ द्रव्य वाहनोंके द्वारा इनके अथवपर पहुँचवा दो ॥ ४९ ॥ फिर खुलेहाथ मुनियोंको दान दो । इस तरहका बचन सुनकर लक्ष्मणने भी रामजीके क्यनानुसार ही दान दिया ॥ ५० ॥ तदनन्तर अन्धमेघ यज्ञमें जिनका वरण हुआ था, उन ऋत्विजोंको भोजन कराके रामजीने विसर्जित किया ॥ ५१ ॥ इसी तरह समस्त देवताओंको भी विधिवत् वस्त्र-अलंकारोंसे पूजित करके विसर्जित कर दिया ॥ ५२ ॥ उनमेंसे किसीको रामचन्द्र-जीने खजानेके साथ घोड़े दिये, किसीको अच्छो-अच्छो पालकी दी, किसीको हाथी, किसीको घोड़े और अच्छे-अच्छे कपड़ों तथा गहनोंका उपहार देकर सम्मानित किया ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने रथपर कपड़े वहने । उस समय समस्त देवताओं तथा राजाओंने नाना प्रकारकी भेट देदेकर रामचन्द्रजीका

सरित्समुद्रा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः ।

द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजहुरुपायनम् ॥५६॥

सीतया स महाराजः सुवासा: साध्वलंकृतः । ब्रधुभिः सेव्यमानः स विरेजेऽग्निरिवापरः ॥५७॥

तस्मै जहार धनदो हैमं वीरवरासनम् । वरुणः सलिलस्त्रावि हातपत्रं शशिप्रभम् ॥५८॥

वायुथ वालव्यजने धर्मः कीर्तिमर्यां स्तजम् ।

इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥५९॥

ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् । दशचन्द्रमसिं रुद्रः शतचन्द्रमथामिवका ॥६०॥

सोमोऽमृतमयानश्चास्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् । अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिष्ठून् ॥६१॥

भृः पादुके योगमयौ द्यौः पुष्पावलिमन्त्रहम् ।

नाथं सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च खेचराः ॥६२॥

ऋषयश्चाशिषः सत्याः समुद्रः शंखमात्मजम् । सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ॥६३॥

ततो ददुर्नृणाः सर्वे स्यन्दनास्तुरगान् गजान् । शिविकागोवृपान् खड्गान् दासीर्दासोष्ट्रखेरान् ॥६४॥

सीतायै नृपत्न्यश्च देवपत्न्यः सहस्रशः ।

वस्त्रलंकारयानानि माङ्गल्यान्यथ कंचुकोः ॥६५॥

क्रीडोपकरणादीनि ददुस्ताः पक्षिपंजरान् । ततस्तः पूजितः सर्वैः सीतया रघुनायकः ॥६६॥

आरुरोह रथं दिव्यं वह्निना वन्दिभिः स्तुतः । स्वस्त्रीभिर्नृपत्नीविमानेन मुनीश्वराः ॥६७॥

विहायसा ययुः सर्वेऽयोध्यायां नृपतेर्गृहम् ।

ततो रामो रथेनैव पूर्वोक्तैरुत्पवैः शनैः ॥६८॥

विवेश नगरी रामः स्तुतः सूतेश मागधैः । छत्रं दधार सौमित्रिमुक्ताजालविराजितम् ॥६९॥

भरतस्तालव्यजनं शत्रुघ्नश्चामरद्वयम् । ताम्बूलपात्रं सुप्रीवस्तोयपात्रं तु वायुजः ॥७०॥

नलः श्रीवनपात्रं च वालिजो मुकुरं वरम् ।

वासःकोशं राक्षसेन्द्रो धृपपात्रं हि जाम्बवान् ॥७१॥

पूजन किया । संसारकी नदियाँ, पवंत, समुद्र, हाथी, घोड़े, मृग, पक्षी, आकाश और पृथ्वीपर रहनेवाले सब प्राणियोंने अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार भगवान्को भेट दी । उस समय रामचन्द्रजी सीताजीके साथ सिहासनपर बैठे हुए थे । चारों भाई उनको सेवामें तल्लीन थे । रामचन्द्र उस समय दूसरे अग्निके सहस्र देवीप्यमान दीख रहे थे ॥ ५५-५७ ॥ उस समय भगवान्को कुवेरने एक सोनेका सिहासन दिया । वरुणदेवने जलकी वर्षा करनेवाले और चन्द्रमाकी नाई उज्ज्वल छत्र दिया । वायुने चमर दिया । वर्माराजने माला दी । इन्द्रने एक बहुमूल्य किरीट दी । यमराजने दण्ड दिया । ब्रह्माने कवच दिया । सरस्वतीने हार दिया । उसी तरह रुद्रने दस व्यारवाली एक तलवार, पार्वतीने शतचन्द्र तलवार, चन्द्रमाने अमृतमरे घड़े, त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने एक सुन्दर रथ, अग्निने अग्निकी तरह चमकता हुआ आजगव नामक एक बनुष, सूर्यने तेजोमय ब्राण, पृथ्वीने योगमयी पादुकाएँ, आकाशने फूलोंके ढेर, गन्धवौने नाच-गानेचाजे आदि, ऋषियोंने सत्य अशोवाद, समुद्रने शंख, नदियों तथा बड़े-बड़े नदों और पर्वतोंने भगवान्को रथके रास्ते दिये ॥ ५८-६३ ॥ इसके अनन्तर राजाओंने रथ, हाथी, घोड़े, पालको, गाय, बैल, खड्ग, दास और ऊट जादिके उपहार दिये । फिर राजाओंकी रानियों और देवताओंकी देवियोंने नाना प्रकारके वस्त्र-आभूषण, गालकी आदि माङ्गलिक वस्तुयें, खेलके सामान, बोलनेवाले सुन्दर पक्षियोंके पींजरे आदि सीताको दिये । इस तरह सीताके साथ रामचन्द्र सबसे पूजित होकर एक दिव्य रथपर सवार हुए और बन्दीजनोंने भगवान्की न्युति आरम्भ की । बहुतेरे मुनिजन अपनी स्त्रियों और राजाओंकी स्त्रियोंके साथ विमानपर चढ़कर

नानाफलानां पात्राणि पूजापात्राण्यनेकशः । सुगन्धद्रव्यपात्राणि द्विष्टते मंत्रिसत्तमाः ॥७२॥  
 एवं सुगंधवस्तूनि प्रक्षिपन् वारयोपिताम् । वृदेषु सीतया रामो विरेजे स्यन्दने स्थितः ॥७३॥

सुगंधरागपूर्णेश्च जलयंत्रैः करे धूतैः ।

वाराङ्गनानां वस्त्राणि नृपादीनां च राघवः ॥७४॥

चित्रितान्यकरोद्गारैः किंशुकानिव माधवे । स्नेहैः सुगंधे रायाद्यैराद्रवस्त्रेषु राघवः ॥७५॥

क्षिप्त्वा परिमलादीनि चित्रितान्यकरोत्पुनः । नर्तत्सु वारयोपित्सु वादेषु निनदत्सु च ॥७६॥

स्तुवत्सु वंदिवृदेषु पुष्पवृष्टिविराजितः ।

ययौ राजगृहद्वारं रामो राजपथा श्रान्तेः ॥७७॥

मार्गे कुंभप्रदीपैश्च दध्योदनविनिमित्तैः । बलिदीपैः पूर्णकुम्भै राजमार्गे पुरस्त्रियः ॥७८॥

चक्रुनीराजनं रामं स्वस्त्यर्थं सीतया युतम् । अवरुद्ध रथाद्रामो सीतयाऽऽस्मिन् निजे गृहे ॥७९॥

स्थाप्य स्वीयसभां गत्वा हरोद स्वीयमासनम् ।

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे ग्रणेषु रघुनन्दनब् ॥८०॥

राजा मुकुटरत्नौघप्रभाभिः पदपंकजे । विरेजत् राघवस्य तदा सिंहासनोपरि ॥८१॥

मुकुटस्थावतंसानां परागैः पूजिते नृपैः । प्रपतुर्निरतां शोभां रक्तोत्पलनिभे परे ॥८२॥

सीमतस्यचद्रस्यरत्नमाणिकयदीस्मिभिः ।

सुरपार्थिवपत्नीनां सीतायाः पादपंकजे ॥८३॥

विरेजतुः परागैश्च केशवधप्रसूनजैः । सुरपार्थिवपत्नीभिः पूजिते कनकोज्ज्वले ॥८४॥

ततः सभायां श्रीरामं स्तुत्वा देवर्महेश्वरः । श्रीरामस्तवराजेन श्रीरामेणापि पूजितः ॥८५॥

आकाशमार्गसे अयोध्याकी ओर चले । इधर रामचन्द्र भी पूर्वोक्त उत्सवोंके साथ रथपर सवार होकर राजमहलकी ओर बढ़े । जब रामचन्द्र अयोध्यानगरीमें प्रविष्ट हुए, उस समय भगवान्‌को एक अनूठी शोभायी । रामजी सीताजीके साथ रथपर दैठे थे । लक्षण अपन हाथोंमें छत्र, भरत पंखा, शबुधन चमर, सुग्रीव पानदान, हनुमानजी जलकी ज्ञारो, नक्त उगालदान, अङ्गूष्ठ आइना, विभीषण कपड़ोंकी पेटी और जाम्बवान् धूपदानी लिए हुये थे । इसी प्रकार अनेक फूलोंके पात्र, पूजाकी सामग्री और अनेक सुगन्धमय द्रव्यके पात्र वहाँके अच्छे-झच्छे मन्त्री लेन्नेकर चले । रास्तेमें वे मन्त्री वेण्याओंके ऊपर गुलाब केवड़ा आदिके इत्रोंकी वर्षा करते जा रहे थे । उस समय विविध प्रकारके सुगन्धित तथा रङ्गीन फौवारे छूट रहे थे, जिससे सबके कपड़े एक विचित्र रङ्गके दिखाई दे रहे थे । उन्हों भी गे हुए और रङ्गीन कपड़ोंपर रह-रहकर रामचन्द्रजी स्वयं गुलालकी वर्षा करके उन्हें और भी विचित्र बना देते थे । इस तरह वेण्याओंके नृत्य, वाजेवालोंके वाजों, बन्दीजनोंकी स्तुतियों और देवताओंकी पुष्पवृष्टिके साथ राजे राजमार्गसे चलते हुए रामचन्द्रजीके महलकी ओर जा रहे थे ॥ ६४-७३ ॥ रास्तेमें स्थान स्थानपर जलसे भरे कलश और दही-मात आदिकी बलि दिखलायी पड़ती थी । सीतारामके कल्याणकी कामनासे वयोऽग्रावासिनी हित्रयां भगवान्‌की आरती उतार रही थीं । महलके फाटकपर पहुँचकर रामचन्द्रजी रथसे उतर पड़े और सीताजीके साथ अपने यज्ञभवनमें गये । यज्ञीय अग्निको देवगृहमें स्थापित करके वे राजसभामें जा पहुँचे । सभाके सुन्दर सिंहासनपर भगवान् आसीन हुए । तब देश-देशान्तरसे आये हुए राजाओंने उन्हें प्रणाम किया । जिस समय वे राजे अपना मरतक झुकाकर अपने मुकुटको रामचन्द्रजीके चरणोंसे स्पर्श करा रहे थे, उस समय भगवान्‌की एक विचित्र क्षाँकी दिखायी देती था । जब उन राजाओं, रानियों और देवियोंने सीतारामको प्रणाम तथा

प्राप्याज्ञां रामचंद्रस्य सावरोधैः सुरादिभिः ।

प्रस्थानं स्वस्थलं गंतुं चकार वृपमस्थितः ॥८६॥

नृपाख्योऽपि सीतायाः प्राप्याज्ञां पूजितास्तथा । यानात्याहहुः सर्वास्त्वयोऽध्याया विनिर्युः ॥८७॥

अथ ते पर्यिवाद्याश्च प्राप्याज्ञां राघवस्य च । सावरोधाः समैन्याश्च स्त्रीयराज्यानि वै ययुः ॥८८॥

ययौ शिवोऽपि कैलासं सत्यलोकं विधिर्यौ ।

इन्द्राद्या निर्जिः सर्वे स्वर्गलोकं ययुमुदा ॥८९॥

अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः । सर्वे मुनीश्वराद्याश्च स्वधामानि ययुस्तदा ॥९०॥

ततो रामः पूर्ववच्च शशास जगतीतलम् । रेमे जनकनंदिन्या चिरकालं यथासुखम् ॥९१॥

चपन्तरेण कालेन वाजिमेधाः पृथक् पृथक् ।

उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठा विंशद्वैः कृता दश ॥९२॥

इत्थं श्रीरामचंद्रेण दशमे तुरगाध्वरे । प्रतिपान्त्य गुरोर्वाक्यं सर्वस्त्रमपि भूसुरान् ॥९३॥

दत्तं किल महाराजा तथा च दिक्चतुष्टयम् । ऋत्विग्म्यो दक्षिणार्थं हि दत्तं चेति मया श्रुतम् ॥९४॥

ऋत्विग्मिभस्तप्तुन्दत्तं राववायंव सादरम् ।

कृपालुभिः पालनार्थमिति शिष्यानुश्रूयते ॥९५॥

एवं शिष्य त्वया पृष्ठं राघवस्य मंगलम् । चरितं तन्मया किंचित्तदोक्तं यज्ञसंभवम् ॥९६॥

इदं यः प्रातरुत्थाय यागकाण्ड मनोरमम् । पठिष्यति नरः पुण्यं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥९७॥

पुत्रार्थीं प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थीं धनमाप्नुयात् ।

यागकाण्डमिदं श्रुत्वा वाजिमेधफलं लभेत् ॥९८॥

होमकाले श्राद्धकाले चातुर्मास्यादिकेष्वपि । जपध्यानार्चनारभे पूर्वं नित्यं पठेदिदम् ॥९९॥

पूजन कर लिया और जब देवताओं के साथ शङ्कुरजीने रामस्तवराजसे रामचन्द्रजी स्तुति और पूजा कर ली । तब रामचन्द्रजीसे आज्ञा ले लेकर सब लोग अपने-अपने घरोंको प्रस्थान करने लगे ॥७८-८६॥ राजाओंकी रानियाँ भी सीताजीकी आज्ञा पाकर अपने-अपने रथोंपर सवार हुई और अयोध्यासे अपने घरोंको जाने लगीं । इसी प्रकार सब राजे रामकी आज्ञा पाकर अपनी-अपनी राजधानीको लौटे । तब शिवजी अपने कैलासको, ब्रह्मा सत्यलोकको और इद्रादि देवता स्वर्गलोकको चले गये ॥८७-८९॥ इसके बाद शीलवान् ऋत्विक् और सदस्य आदि भी अपने-अपने आश्रमोंको विदा हुए । रामचन्द्रजीने फिर पूर्वरोत्से बपना राजकाज संभाल लिया और चिरकाल तक सीताजीके साथ विहार करते रहे । प्रति दूसरे वर्ष इसी तरह अश्वमेघ यज्ञ करते हुए रामचन्द्रजीने बीस वर्षोंमें दस अश्वमेघ यज्ञ किये । दसवें अश्वमेघमें गुह वसिष्ठके आज्ञानुसार भगवान् अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणोंको दान दे दी । मैंने तो यहाँतक सुना है कि रामने चारों दिशायें दक्षिणाहृष्यमें ऋत्विजोंको दे डाली थीं ॥९०-९४॥ किन्तु उन दयालु ऋत्विजोंने फिर उसे बड़े आदरके साथ भगवान् को लौटा दिया और कहा—“हे प्रभो ! इसकी रक्षा आप ही कर सकते हैं—हम नहीं । इस कारण यह सब आप अपने ही पास रखिए” । इस प्रकार है शिष्य ! जैसे तुमने रामचन्द्रजीके मञ्जुल-कार्यका प्रश्न किया, वैसे ही मैंने भी तुम्हें बतलाया और रामचन्द्रके यज्ञसम्बन्धी चरित्रोंको सुना दिया । जो कोई सबेरे उठकर इस सुन्दर यागकाण्डको सुनेगा, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी । वह यदि पुत्रार्थी होगा तो उसे पुत्र मिलेगा और धनार्थी होगा तो धन प्राप्त होगा । इस यागकाण्डको सुननेसे अश्वमेघ

रम्यं पवित्रं रघुनायकस्य श्रीमच्चरित्रं तुरगाध्वरोद्भवम् ।

पठन्ति शृण्वन्ति जनाः सुपुण्यदं लभन्ति नैजं खलु वांछितं हृदि ॥१००॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे

रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

यागकाण्डोद्भवाः सर्गा नवैव परिकीर्तिताः । सपादषट्शतश्लोका रामदासेन वर्णिताः ॥ १ ॥

यजका फल प्राप्त होता है। किसी प्रकारका हवन आदि करते समय, शाढ़कालमें, चातुमासमें, व्रतमें, जप, ध्यान और पूजनके पहले सदा इस यागकाण्डका पाठ करना चाहिए। इन रम्य तथा पवित्र अश्वमेघ-यज्ञसम्बन्धी रामचरित्रको जो लोग पढ़ते और सुनते हैं, वे अपनी अभिलक्षित कामनाओंको पूर्ण कर लेते हैं ॥ ९५-१०० ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित‘उपोत्स्ना’-

भाषाटीकासमन्विते यागकाण्डे यजसमाप्तिर्नामि नवमः सर्गः ॥ ६ ॥ ।

इस यागकाण्डमें कुल नौ सर्ग और ६२५ श्लोकोंका रामदासने वर्णन किया है ॥ १ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डं समाप्तम् ।

श्रीरामचन्द्रापूर्णमस्तु



श्रीसीतापत्ये नमः  
श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

# आनन्दरामायणम्

‘ज्योत्स्ना’ऽद्वया भाषाटीकयाऽटीकितम्

## विलासकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

( शिवकृत रामस्तवराज )

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रद्वुमिच्छामि तद्दद्यत्व सविस्तरम् । स्तुतो रामः शिवेनात्र येन रामस्तवेन हि ॥ १ ॥  
तं रामस्तवराजं मे विस्तरेण प्रकाशय ।

श्रोशिव उवाच

इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदासोऽव्रवीद्वचः ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । प्रोच्यते रामचन्द्रस्य स्तवराजो मयाऽऽयुना ॥ ३ ॥  
यत्परं यद्गुणाधारं यज्ज्योतिरमलं शिवम् । तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपददायकम् ॥ ४ ॥  
श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञितम् । ब्रह्महत्यादिपापद्ममिति वेदविदो विदुः ॥ ५ ॥  
श्रीराम राम रामेति ये वदन्त्यपि सर्वदा । तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ॥ ६ ॥  
स्तवराजः पुरा प्रोक्तः शिवेन परमात्मना । तमहं संप्रवक्ष्यामि हरिध्यानपुरःसरम् ॥ ७ ॥  
तापत्रयाऽग्निशमनं सवधौधनिकृन्तनम् । दारिद्र्यदुःखशमनं सवेसंपत्प्रदायकम् ॥ ८ ॥

दिष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि शिवजीने किस रामस्तराजसे रामचन्द्रजीको स्तुति का थी ॥ १ ॥ कृपा करके आप मुझे वह रामस्तवराज बतला दीजिये । इस तरह अपने शिष्यकी बात सुनकर श्रीरामदासने कहा—॥ २ ॥ हे वत्स ! तुमने मुझमें बहुत अच्छी बात पूछी है । मैं तुम्हें वह स्तवराज बतलाया हूँ, सावधान होकर सुनो ॥ ३ ॥ जो संसारमें सबसे श्रेष्ठ है, जो सब लड़गुणोंका आधार है, जो एक निमंल एवं पवित्र ज्योति है, वह ही परम प्रधान तत्त्व है और मोक्षपददायक है ॥ ४ ॥ बड़े-बड़े विद्वानोंका कहना है कि ‘श्रीराम’ यह सर्वोत्तम तारक मन्त्र है और ब्रह्महत्या प्रभृति महान् पातकोंका नाशक है ॥ ५ ॥ जो सज्जन सर्वदा ‘श्रीराम’ नामका जप करते हैं, उन्हें जबतक यि वे संसारमें रहते हैं, तबतक सांसारिक भोग मिलते हैं और शरीर त्याग करनेपर मुक्ति मिल जाती है ॥ ६ ॥ जो मैं तुमसे कहनेवाला हूँ, इस स्तवराजको शिवजीने स्वयं मुझसे कहा था । उसीको आज भगवान्का ध्यान करके मैं तुमसे कहूँगा ॥ ७ ॥ यह तीनों ( दैहिक, दैविक और भौतिक ) तापोंको नष्ट करनेवाला,

विज्ञानफलदं पुण्यं मोक्षेकफलदायकम् । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि रामं कृष्णमनामयम् ॥ ९ ॥  
 अयोध्यानगरे रथे रत्नमंडपमध्यगे । ध्यायेत्कल्पतरोमूले रत्नसिंहासने शुभे ॥ १० ॥  
 तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नानारत्नोपशोभितम् । स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्यतेजसम् ॥ ११ ॥  
 पितुरासनमासीनमिद्रनीलसमप्रभम् । कोमलांगं विशालाक्षं विद्युद्दण्डिवरावृतम् ॥ १२ ॥  
 भानुकोटिप्रतीकाशं किरीटेन विराजितम् । रत्नग्रैवेयकेयूरवरकुंडलमंडितम् ॥ १३ ॥  
 रत्नकंकणमंजीरकटिगृह्णैरलंकृतम् । श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्ताहारोपशोभितम् ॥ १४ ॥  
 चिंतामणिप्रमायुक्तं रत्नमालाविराजितम् । दिव्यरत्नसमायुक्तं मुद्रिकाभिरलंकृतम् ॥ १५ ॥  
 कर्पूरागरुकस्तूरीदिव्यगंधानुलेपनम् । तुलसीकुंदमंदारपृष्ठप्रमाल्यैरलंकृतम् ॥ १६ ॥  
 राघवं द्विभुजं वीरं राममीपत्स्मताननम् । योगशास्त्रेष्वभिरतं योगेश योगदायकम् ॥ १७ ॥  
 सदा सौमित्रिभरतशत्रुघ्नैरुपसेवितम् । विद्याधरसुराधीशसिद्धगर्भकिन्नरः ॥ १८ ॥  
 योगींद्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानमहनिंशम् । विश्वामित्रवसिष्ठाद्यैर्कैपिभिः परिसेवितम् ॥ १९ ॥  
 सनकादिमुनिश्चेष्टयोगिवृन्दैः समावृतम् । रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम् ॥ २० ॥  
 मंशलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम् । सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञमानन्दमतिसुन्दरम् ॥ २१ ॥  
 कौसल्यातनयं रामं धनुर्वाणधरं हरिम् । एवं संचिदयेद्विष्णुं यज्ज्योतिज्योतिषां परम् ॥ २२ ॥  
 प्रहृष्टमानसो भूत्वा सभायां वृषभघ्वजः । सर्वलोकहितार्थाय तुष्टाव रघुनन्दनम् ॥ २३ ॥  
 कृतांजलिपुटो भूत्वा चिन्तयन्नद्वृतं हरिम् ।

श्रीशिव उवाच

यदेकं तत्परं नित्यं यदनन्तं चिदात्मकम् ॥ २४ ॥

पापसमूहका नाशक, दारिद्र्य और दुःखका दमन करनेवाला तथा समस्त सम्पदाभ्योंका दाता है ॥ ८ ॥  
 यह विज्ञान (ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान) का फल देनेवाला, पवित्र और मोक्षका साधक है। मैं श्यामस्वरूपघारी  
 राम-कृष्णका ध्यान करके वह सत्त्वराज तुमको बतला रहा हूँ ॥ ९ ॥ श्रोताओं चाहिये कि वह अयोध्यानगरी-  
 के रत्नोंसे सुसज्जित एक सुन्दर भवनमें कल्पवृक्षके नीचे ऐसे रत्नसिंहासन, जिसमें नाना प्रकारके मणियोंसे  
 सुशोभित अष्टदल कमल है, उसपर बढ़े हुए हजारों सूर्यकी भाँति तेजोमय रामचन्द्रजीका ध्यान करे ॥ १० ॥ ११ ॥  
 रामचन्द्रजी अपने पिता (महाराज वशरथ) के आसनपर बैठे हैं, इन्द्रवील मणिकी भाँति जिनकी श्याम मूर्ति है,  
 जिनके कोमल अङ्ग हैं, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, विजलीकी तरह चमकता पीताम्बर पहिने हुए हैं, जिसमें करोड़ों सूर्योंकी  
 समान प्रकाश है, मस्तकपर किरीट धारण किये हैं, उरःस्थलमें श्रीवत्स तथा कौस्तुभ मणि है और गलेमें  
 चिन्तामणि तथा कितने ही रत्नोंकी मालायें पहने हैं। उनकी उंगलियोंमें बहुमल्य रत्नोंसे जड़ी अंगूठियाँ पड़ी  
 हैं ॥ १२-१५ ॥ कर्पूर, अगर और कस्तूरीसे मिला हुआ चन्दन उनके सारे शरीरमें लगा हुआ है। तुलसी  
 तथा कुन्द-मन्दार आदिके पुष्पोंसे जिनका शृङ्खार किया हुआ है, जिनके केवल दो भुजायें हैं, होठोंपर मन्द  
 मुस्कान है, जो योगशास्त्रके वार्तालिप्यमें मन्न है, लक्षण-भरत-शत्रुघ्न जिनकी सेवामें लगे हुए हैं, विद्याधर,  
 देवता, सिद्ध, गम्धवं और नारदादि गोमीनद्व रात-दिन जिनकी स्तुति किया करते हैं, विश्वामित्र-वसिष्ठादि  
 ऋहूपि जिनकी परिचयोंमें लगेहुए हैं। सनक, सनन्दन, सनातन, सनस्तुमार आदि मुनि दर्शनार्थ खड़े हैं। जो रघुवंश-  
 में सर्वप्रधान वीर तथा धनुर्वेदमें निपुण हैं। जो मंगलभद्र हैं, कमलके समान जिनके नेत्र हैं, जो सब शास्त्रोंके  
 तत्त्वज्ञ, आनन्दमूर्ति, अतिशय सुन्दर कौसल्याके सुवन हैं और वृष-वाण धारण किये हैं, ऐसे भगवान्  
 रामचन्द्रका ध्यान करे। जो सब ज्योतियोंमें श्रेष्ठ हैं। ऐसे अद्भुत स्वरूपका ध्यान करके हृष्टसे गदगद  
 होकर शिवजीने संसारके कल्याणार्थ दोनों हाथ जोड़कर भगवान् रामचन्द्रकी स्तुति की ॥ १६-२३ ॥

यदेकं व्यापकं लोके तद्रूपं चिन्तयाम्यहम् । सर्वत्रैलोक्यज्ञौख्यार्थं रामभक्त्यतिवृद्धये ॥२५॥  
 विज्ञानहेतुं विमलायताक्षं प्रज्ञानसंदिव्यसुखैरुपम् ।  
 श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं विश्वेश्वरं राममहं भजामि ॥२६॥  
 कविं पुराणं पुरुषं परेण सनातनं योगिनमीशितारम् ।  
 अणोरणीयांसमनंतरीयं प्राणेश्वरं राममहं भजामि ॥२७॥

नारायणं जगन्नाथमभिरामं जगत्पतिम् । कविं पुराणं वागीशं रामं दशरथात्मजम् ॥२८॥  
 राजराजं रघुवरं कौसल्यानंदवद्धनम् । भगं वरेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम् ॥२९॥  
 सत्यं सत्यप्रियं श्रेष्ठं जानकीवल्लभं प्रभुम् । सौमित्रिपूर्वजं शान्तं कामदं कमलेक्षणम् ॥३०॥  
 आदित्यं रविमीशानं धृतिं सूर्यमनामयम् । आनन्दरूपिणं सौम्यं राघवं करुणाकरम् ॥३१॥  
 जामदग्न्यं तपोमूर्ति रामं परशुधारिणम् । वाक्पतिं वरदं वाच्यं श्रीपतिं पक्षिवाहनम् ॥३२॥  
 श्रीशङ्खधारिणं रामं चिन्मयानंदविग्रहम् । हलधारिणमीशानं वलरामं कृपानिधिम् ॥३३॥  
 श्रीवल्लभं कलानाथं जगन्मोहनमच्युतम् । मत्स्यकूर्मवराहादिरूपधारिणमव्ययम् ॥३४॥  
 वासुदेवं जगद्योनिमनादिनिधनं हरिम् । गोविन्दं गोपतिं विष्णुं गोपीजनमनोहरम् ॥३५॥  
 गोपालं गोपरीवारं गोपकन्यासमावृतम् । विद्युत्पुंजप्रतीकाशं रामं कृष्णं जगन्मयम् ॥३६॥  
 गोगोपिकासमाकीर्णं वेणुवादनतत्परम् । कामरूपं कलावंतं कामिनां कामदं प्रभुम् ॥३७॥  
 मन्मथं मधुरानाथं माधवं मकरध्वजम् । श्रीधरं श्रीकरं श्रीनिवासं परात्परम् ॥३८॥

शिवजीने कहा—जो एक है, जिससे बढ़कर संसारमें और कुछ है ही नहीं। जो अनन्त, नित्य एवं अविनाशी है। जो जकेला रहता हुआ भी समस्त विश्वमें व्याप्त है, मैं भगवानके ऐसे स्वरूपका ध्यान करता हूँ ॥ २४ ॥ २५ ॥ जो विज्ञानके एकमात्र हेतु है, जिनको निर्मल और विशाल आंखें हैं, जो पूर्ण ज्ञानकी अवस्थामें ज्ञानियोंको दिव्यरूप होकर दण्णन देते हैं ऐसे श्रीहरि, आदिदेव तथा विश्वेश्वर रामचन्द्रको मैं बन्दना करता हूँ ॥ २६ ॥ जो स्वयं कवि हैं, सबसे वृद्ध हैं, सबके स्वामी हैं, सनातन हैं तथा योगियोंके भी स्वामी हैं। जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, जिनमें अनन्त पराक्राम है, जो समस्त चराचर जीवोंके प्रभु हैं, ऐसे रामचन्द्रका मैं भजन करता हूँ ॥ २७ ॥ नारायणस्वरूप, समस्त जगत्के स्वामी, अतिशय सुन्दर, वागीश तथा दशरथजीके तनय रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २८ ॥ जो राजाओंके भी राजा है, जो रघुवंशमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जो कौसल्याका आनन्द बड़ानेवाले हैं, जो तेजोमय हैं, जो संसारके त्राणकर्ता हैं, जो संसारके गुरु हैं, जो सत्यस्वरूप है, जिनको सत्य ही प्रिय है, जो सीताजीके पति हैं, जो लक्ष्मणके बड़े भ्राता हैं, जिनका शान्त स्वभाव है, जो अपने भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं, कमल सरीखे जिनके नेत्र हैं, जो अदितिके पुत्र हैं, जो सूर्यरूप हैं, जो शिवरूप और आरोग्यस्वरूप हैं, जो आनन्दके साक्षात् मूर्ति हैं, जो सौम्य प्रकृतिके हैं और जो करुणाके अण्डार हैं ॥ २९-३१ ॥ जो जमदग्निके पुत्र (परशुराम) हैं, जो अभिलिपित कामनाओंको पूर्ण करते हैं, जो लक्ष्मीपति हैं, जिनका पक्षी (गरुड़) वाहन है, जो लक्ष्मी और शार्ङ्गनामक घनुष धारण करते हैं, जिनका नित्य आनन्दमय शरीर है, जो हलको धारण करनेवाले वलरामस्वरूप हैं, जो लक्ष्मीके प्रिय हैं, जो सब कलाओंको जानते हैं, जो संसारको मुख्य करनेमें समर्थ हैं, जिसका कभी विनाश नहीं होता, जो मत्स्य-कूर्म-वराह आदि रूप धारण करते हैं और जो अविनाशी है ॥ ३२-३४ ॥ जो वसुदेवके पुत्र, संसारके व्यष्टि, जन्म-मरणसे रहित, इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाले, इन्द्रियोंके पति, विद्युत्पुंजरूप, गोपियोंने मनको चुरानेवाले और गौओंके रक्षक हैं, ऐसे राम-कृष्ण तथा जगन्मय भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जो गौओं और गोपियोंसे धिरे रहते हैं, जो वंशों वजानेमें तत्पर रहते हैं, जो जब जैसा चाहते वैसा अपना स्वरूप लता लेते हैं, जो समस्त कलाओंसे पूर्ण है, जो कामनावाले मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं और कामदेवरूपसे सबके

भूतेशं भूपतिं भद्रं भूतिदं भूरिभूषणम् । सर्वदुःखहरं वीरं दुष्टदानवमर्दनम् ॥३९॥  
 श्रीनूर्मिंह महाविष्णुं महातं दीप्तेजसम् । चिदानंदमयं नित्यं प्रणवं ज्योतिरूपकम् ॥४०॥  
 आदित्यमण्डलगतं निश्चितार्थस्वरूपिणम् । भक्तिप्रियं पद्मनेत्रं भक्तानामीप्सितप्रदम् ॥४१॥  
 कौसल्येयं कलामूर्तिं काकुत्स्यं कमलाप्रियम् । सिंहासने समासीनं नित्यव्रतमकन्मयम् ॥४२॥  
 विश्वामित्रप्रियं दांतं स्वदारनियतव्रतम् । यज्ञेयं यज्ञपुरुषं यज्ञपालनतत्परम् ॥४३॥  
 सत्यसंबंधं जितक्रोधं शरणागतवत्सलम् । सर्वकलेशापहरणं विभीषणवरप्रदम् ॥४४॥  
 दशग्रीवहरं रुद्रं केशवं केशिमर्दनम् । बालिप्रशमनं वीरं सुग्रीवेप्सितराज्यदम् ॥४५॥  
 नरवानरदेवैश्च सेवितं हनुमत्प्रियम् । शुद्धं सूक्ष्मं परं शांतं तारकब्रह्मरूपिणम् ॥४६॥  
 सर्वभूतात्मभूतस्यं सर्वाधारं सनातनम् । सर्वकारणकर्तरं निदानं प्रकृतेः परम् ॥४७॥  
 निरामयं निराभासं निरवद्यं निरञ्जनम् । नित्यानन्दं निराकारमद्वैतं तमसः परम् ॥४८॥  
 परात्परतरं नित्यं सत्यानन्दचिदात्मकम् । मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूतमम् ॥४९॥  
 भूतोद्भवं वेदविदां वरिष्ठमादित्यचंद्रानिलसुप्रभावम् ।  
 सर्वात्मकं सर्वगतस्वरूपं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥५०॥  
 निरञ्जनं निष्प्रतिमं निरीहं निराश्रयं कारणमादिदेवम् ।  
 नित्यं ध्रुवं निर्विषयस्वरूपं निरंतरं राममहं भजामि ॥५१॥  
 भवान्विष्योतं भरताग्रजं तं भक्तिप्रियं भानुकुलप्रदीपम् ।  
 भूताधिनाथं भुवनाधिष्ठयं भजामि रामं भवरोगवैद्यम् ॥५२॥  
 सर्वाधिष्ठयं रणरंगधीरं सत्यं चिदानन्दसुखस्वरूपम् ।  
 सत्यं शिवं सज्जनहृन्निवासं ध्येयं परानन्दमहं भजामि ॥५३॥

मनको उद्धिग्न किया करते हैं। जो मयुराके स्वामी हैं, जो लक्ष्मीके पति हैं, जो गकरद्वज, श्रीधर, श्रीकर, श्रीश, श्रीनिवास, परात्पर, भूतेश, भूपति, भद्र ( कल्याणमय ), भूतिद ( सर्वसम्पत्तियोंके दाता ), भूरिभूषण, ( बहुत से भूषणोंको धारण करनेवाले ) सब प्रकारके दुःखोंको हरनेवाले वीर और दुष्ट दानवोंका विनाश करनेवाले हैं, जो श्रीनूर्मिंह, महाविष्णु, महान् दीप्तिशाली, चिदानन्दमय, नित्य, प्रणव, ज्योतिरूप, आदित्यमण्डलमें विराजमान, निश्चितार्थस्वरूप, भक्तिप्रिय, कमललोचन, भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले, कौसल्याके सुवन, कालमूर्ति, काकुत्स्य, कमलाप्रिय, सिंहासनासीन, नित्यव्रती और पापरहित हैं। जो विश्वामित्रके प्रिय, दान्त ( जितेन्द्रिय, और एकपत्नीव्रती हैं। जो यज्ञेश, यज्ञपुरुष, यज्ञकी रक्षामें तत्पर, सत्यसंबंध, जितक्रोध, शरणागतवत्सल, सब वलेशोंको हरनेवाले, विभीषणको वरदान देनेवाले, रावणका विनाश करनेवाले, रुद्र, केशव, केशिमर्दी, बालिविनाशक, वीरं सुग्रीवको ईप्सित राज्य देनेवाले, नरवानर और देवताओंसे सेवित, हनुमान्से सेवित, शुद्ध, सूक्ष्म, शान्त, ब्रह्मरूप, सब प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले, सर्वधार, सनातन, सब कुछ कर्ता-घर्ता, प्रकृतिके मूल कारण, निरामय, निराभास, निरदद्य, निरञ्जन, नित्यानन्द, निराकार, अद्वैत, तमोगुणसे परे, सर्वश्रेष्ठ, नित्य, सत्य, आनन्द और चिन्मयस्वरूप हैं। उन श्रीरामचन्द्रजीको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ३७-४९ ॥ जो संसारके जन्मदाता हैं, विद्वानोंमें थेष्ठ हैं, सूर्य-चन्द्रमा और अग्निमें जिनका प्रकाश है, जो सर्वात्मा, सर्वस्वरूप और तमोगुणसे परे हैं। ऐसे रामचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५० ॥ निरञ्जन, निष्प्रतिम, निरीह, निराश्रय, सर्वत्राण, आदिदेव, नित्य, ध्रुव, दिवय और स्वरूपसे परे रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५१ ॥ जो संसारहरी महासागरके लिए जहाजके तटश हैं, जो भरतके बड़े भ्राता, भक्तिप्रिय, भानुकुलके प्रदीप, भूताधिनाथ, भुवनरूपी जहाजके अविपति और भवरूप रीगके वैद्य हैं, उन रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥ जो सबके अधिपति, युद्धविद्यामें कुशल, सत्यस्वरूप

कार्यक्रियाकारणमप्रमेयं कविं पुराणं कमलायताक्षम् ।  
 कुमारवेषं करुणामयं तं कलपद्रुमं राममहं भजामि ॥५४॥  
 त्रैलोक्यनाथं सरसीरुहाक्षं दयानिधिं दुन्दुविनाशहेतुम् ।  
 महावलं वेदनिधिं सुरेशं सनातनं राममहं भजामि ॥५५॥  
 वेदान्तवेद्यं कविमाशितारमनादिमध्यांतमचित्यमाद्यम् ।  
 अगोचरं निमलमेकरूपं परात्परं राममहं भजामि ॥५६॥  
 अशेषवेदान्तमकमादिदेवमजं हरिं राममनन्तमृतिंम् ।  
 अपारसंवित्सुखमेकरूपं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥५७॥  
 तत्त्वस्वरूपं पुरुषं पुराणं स्वतेजसा पूरितविश्वपेकम् ।  
 राजाधिराजं रविमण्डलस्थं विश्वेश्वरं राममहं भजामि ॥५८॥  
 योगींद्रसर्धरपि सेव्यमानं नारायणं निमलमादिदेवम् ।  
 नतोऽस्मि नित्यं जगदेकनाथं हरिं चिदानंतमयं मुकुन्दम् ॥५९॥  
 अशेषविद्याधिपतिं नमामि रामं पुराणं तमसः परस्तात् ।  
 विभूतिदं विश्वसृजं परेशं राजेद्रमीशं रघुवशनाथम् ॥६०॥  
 अचित्यमव्यक्तमनतरूपं उयोतिमयं राममहं भजामि ।  
 अशेषसंसारविकारहोनमानंदसपूर्णसुखाभिरामम् ॥६१॥  
 नारायणं विष्णुमहं भजामि समस्तमाक्षिं तमसः परस्तात् ।  
 मुनींद्रगुह्यं परिपूर्णमेकं कलानिधिं कल्मषनाशहेतुम् ॥  
 परात्परं यत्परमं पवित्रं नमामि रामं महतो महांतम् ॥६२॥  
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेद्रो देवतारतथा । आदियादिग्रहार्थव त्वमेव रघुनन्दन ॥६३॥  
 तापसा ऋषयः मिद्वाः साध्याश्च मुनयस्तथा । विश्रा चंद्राश्च यज्ञाश्च पुराणं धर्मसहिताः ॥६४॥

सच्चिदानन्द सुखस्वरूप, सत्य, शिव, सज्जनोंके हृदयमें निवास करनेवाले और परमानन्दस्वरूप रामचन्द्र-जाकोंमें प्रणाम करता हूँ ॥ ५३ ॥ जो कर्मोंके कारण, अप्रमेय, कवि, वंशशाली, पुराण पुरुष, कमलसरोषे विश्वाल नयनोंमुक्त, नित्य कुमारवेदधारी, करुणामय तथा कलनृतक समान सबको अभिलाषा पूर्ण करनेवाले हैं, उन रामचन्द्रकोंमें प्रणाम करता हूँ ॥५४॥ त्रिलोकानाथ, सरसीरुह (कमल) के समान नेत्रोंवाले, दयानिधि, दुन्दुविनाशके एकमात्र हेतु, महावली, वेदोंके नियान, सुरेश और सनातनस्वरूप रामचन्द्रजीवोंमें प्रणाम करता हूँ ॥ ५५ ॥ वेदान्तवेद्य, कवि, ईशिता, आदि-मध्य और अन्तसे रहित, अचित्य, सबके आदिमें उत्पन्न होनेवाले, चक्षुरादि इन्द्रियोंसे अगोचर, निमल, एकरूप और तमाङुणसे परे रामचन्द्रजीको में प्रणाम करता हूँ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तत्त्वस्वरूप, पुराण पुरुष, केवल अपने प्रकाशसं समस्त विश्वको प्रकाश देनेवाले, राजाधिराज, रविमण्डलमें निवास करनेवाले और विश्वेश्वरस्वरूप रामचन्द्रजाको में प्रणाम करता हूँ । योगीन्द्रोंके समूहसे सेव्यमान, नारायण, निमल, आदिदेव, नित्य, जगत्के एकमात्र स्वामी, हरि, चिदानन्दमय और मुकुन्दस्वरूप रामचन्द्रकोंमें प्रणाम करता हूँ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ समस्त विद्याओंके भण्डार, तमसे परे, पुराणपुरुष, सम्पत्तियोंके देनेवाले, संसारके विकारोंसे पृथक् और सबको आनन्द देनेवाले रामचन्द्रजाको में प्रणाम करता हूँ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ नारायण, विष्णु, सर्वसाक्षी, तमसे परे, ऋषियोंके ज्ञानमें भी कठिनाईसे आनेवाले, परिपूर्णरूप एक, कलानिधि, कल्मषके नाशक, परम पवित्र और वडोंसे भी वडे रामचन्द्रजीको में प्रणाम करता हूँ ॥ ६२ ॥ हे रघुनन्दन ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवेन्द्र, देवता तथा आदित्यादि ग्रह सब कुछ तुम्हीं हो । तपस्की,

वर्णाश्रमास्तथा धर्मा वर्णधर्मास्तथैव च । नागा यक्षाश्च गन्धवी दिक्षाला दिग्गजा दिशः ॥६५॥  
 वसुरोऽष्टौ त्रयः काला रुद्रा एकादश स्मृताः । तारका द्वादशादित्यास्त्वमेव रघुनायक ॥६६॥  
 सप्त द्वीपाः समुद्राश्च नदा नद्यस्तथा द्रुपाः । स्थावरा जंगमाश्चैव त्वमेव रघुनन्दन ॥६७॥  
 देवतिर्यङ्गमनुष्याणां दानवानां दिवौकपात् । माता पिता तथा आता त्वमेव रघुनन्दन ॥६८॥  
 सर्वेशस्त्वं परं ब्रह्म त्वद्रूपं विश्वमेव च । त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव रघुपुण्डव ॥६९॥  
 शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् । राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥७०॥  
 ततः प्रसन्नः श्रीरामः प्रोवाच वृषभध्वजम् ।

श्रीराम उवाच

तुष्टोऽहं गिरिजाकांत वृषीष्व वरमुत्तमम् ॥७१॥

श्रीशिव उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश श्रीराम करुणानिधे । तवाद् दर्शनेनैव कृताथोऽहं न संशयः ॥७२॥  
 धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं पुण्योऽहं पुरुषोत्तम । अद्य मे सफलं कर्म द्वय मे सफलं तपः ॥७३॥  
 अद्य मे सफलं ज्ञानमय मे सफलं श्रुतम् । अद्य मे सफलं सर्वं त्वत्पदाभोजदर्शनात् ॥७४॥  
 अद्वैतं विमलं ज्ञानं त्वमन्नामस्मरणं तथा । त्वत्पदाभोरुहद्वन्द्वे सद्भक्तिं देहि राघव ॥७५॥  
 ततः परं सुसंप्रीतो रामः प्राह सदाशिवम् । गिरिजेश महाभाग पुनरिष्टं ददाम्यहम् ॥७६॥

श्रीशिव उवाच

वरं न याचे रघुनाथ युज्मत्पदाब्जभक्तिः सततं ममास्तु ।

इदं प्रियं नाय वरं प्रयच्छ पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे ॥७७॥

श्रीरामदास उवाच

इत्येवमीडिते रामः प्रादात्तस्मै वरांतरस् । तेनोक्तस्तवराजाय ददौ नानावरान् बहून् ॥७८॥

कृष्ण, सिंह, साध्य, मुनि, विश्र, वेद, यज्ञ, पुराण तथा धर्मोंकी संहिता ये सब तुम्हीं हो ॥ ६३ ॥ ६४ ॥  
 हे रघुनायक ! वर्णं, आश्रमधर्मं, वर्णधर्मं, नाग, यक्ष, गन्धवं, दिक्षाला, दिशाएँ, वसु, तीनों काल,  
 एकादश रुद्र, ताराएँ और द्वादश आदित्य ये सब तुम्हीं हो ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ सातों द्वीप, समुद्र, नद, नदियाँ  
 तथा वृक्ष आदि स्थावर जड़म समस्त वस्तु तुम्हीं हो । देव, तिर्यक, मनुष्य, दानव, देवता, माता,  
 पिता, आता, मैं भी सब तुम्हीं हो ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ तुम्हीं सर्वेश हो, स्वरस्वरूप जहू हो, यह संसार भी  
 तुम्हारा ही रूप है, तुम अक्षर हो, परम प्रधान ज्योति हो । और मैं कहाँ तक बतलाऊँ हे रघुपुक्तव ! मेरे सब  
 कुछ एकमात्र तुम्हीं हो ॥ ६९ ॥ शान्त, सर्वगत, सूक्ष्म, परब्रह्म, सनातन, जगत्पति और राजीवलोचन  
 रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ । इस प्रकारको ह्युति सुनकर रामचन्द्रजीने शिवजीसे कहा—हे गिरिजाकांत !  
 मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ । जो भा चाहो, सो उत्तम वर माँग लो ॥ ७० ॥ ७१ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हे  
 राम ! हे करुणानिधे ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मैं आपकी इस प्रसन्न मूर्तिको ही देखकर कृतार्थं  
 हो गया ॥ ७२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! मैं धन्य हूँ और अतिशय पवित्र हूँ । आज मेरे सब काये सफल हो गये ।  
 मेरी तपस्याएँ सफल हुई, मेरा ज्ञान सफल हो गया और शास्त्रोंका श्रवण करना भी सार्वक हो गया । आप-  
 के इन चरणकमलोंके दर्शनसे ही मेरा सब कुछ सफल तो गया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे कृष्णनाथ ! यदि आपको वर ही  
 देना हो तो मुझे अपना अद्वैत तथा विमल ज्ञान दीजिए । मुझे अपने नामका कीर्तन करानेकी शक्ति और अपने  
 इन चरणकमलोंको सद्भक्ति दीजिए ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर अतिशय प्रसन्न होकर रामचन्द्रजीने शिवजीसे  
 कहा—हे गिरिजेश ! हे महाभाग ! मैं तुम्हारे अभिलिप्ति वरोंको देनेके लिए प्रस्तुत हूँ, माँगो ॥ ७६ ॥ शिव-  
 जीने कहा—हे रघुनाथ ! मैं कोई वरदान नहीं चाहता । मैं चाहता यही हूँ कि सदा आपके चरणोंमें मेरी भक्ति  
 बवी रहे । हे नाथ ! मुझे यही वर प्रिय है और यही देनेके लिए मैं आपसे बारम्बार अनुरोध करूँगा

एवं शिवेन यः प्रोक्तः स्तवराजः शुभावहः । स एवाद्य त्वया पृष्ठस्तवाये कथितो मया ॥७९॥  
 अर्यं श्रीरघुनाथस्य स्तवराजो हनुचमः । सर्वसौभाग्यसंपत्तिदायको मुक्तिदः स्मृतः ॥८०॥  
 कथितो गिरजेशेन तेनादौ सारसंग्रहः । गुद्धाद्गुद्धतरो नित्यस्तव स्नेहात्प्रकीर्तिं तः ॥८१॥  
 यः पठेच्छृणुयाद्वापि त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः । ब्रह्महत्यादिपापानि तन्समानि व्रह्मनि च ॥८२॥  
 हेमस्तेयसुरापानगुरुतन्पायुतानि च । गोवधाद्युपपापानि चितनात्संभवानि च ॥८३॥  
 सर्वैः प्रमुच्यते पापैः कल्पायुतश्तोऽद्वैः । मानसं वाचिकं पापं कर्मणा समुपार्जितम् ॥८४॥  
 श्रीरामस्मरणेनैव व्यपोहति न संशयः । इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यं नैवान्यदुच्यते ॥८५॥  
 रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात्किञ्चिन्न विद्यते । तस्माद्रामस्वरूपं हि रामः सर्वमिदं जगत् ॥८६॥  
 श्रीरामचन्द्र रघुपुज्ज्ञ राजवर्य राजेन्द्र राम रघुनायक राघवेश ।  
 राजाधिराज रघुनायक रामचन्द्र दामोऽहमथ भवतः शरणागतोऽस्मि ॥८७॥  
 उत्कुल्लामलकोमलोत्पदलश्यामाय रामाय चाकामाय प्रशमाय निर्मलगुणग्रामाय रामात्मजे ।  
 व्यानारूढमुनीद्रमानसरोहंसाय संसारविद्वंसाय भुरदोजसे रघुकुलोत्तंसाय पुंसे नमः ॥८८॥  
 एवं शिष्य मया प्रोक्तो यथा पृष्ठस्तवया मम । स्तवराजो राघवस्य श्रवणात्पापनाशनः ॥८९॥  
 इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे वाल्मीकोये  
 शंकरकृतरामस्तवराजो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

### द्वितीयः सर्गः

( राम द्वारा सीताके सौन्दर्यका वर्णन )

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिल्लाभि तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि । अयोध्यायां राघवेण सीतयाऽतिसुरूपया ॥ १ ॥

॥ ७७ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार स्तुति करनेपर रामचन्द्रजीने शिवजीके इच्छानुसार वर दिया और अपने मनसे भी उनको बहुतसे ऐसे वर दिये, जिनको जिवजीने माँगा ही नहीं था ॥ ७८ ॥ इस प्रकार शङ्कुरजीका कहा हुआ शुभदायक 'रामस्तवराज' मैंने तुम्हारे पूछनेपर कह सुनाया ॥ ७९ ॥ यह रामचन्द्रजीका स्तवराज सब स्तोत्रोंमें श्रेष्ठ है । यह सब प्रकारके सीमाय, सम्पत्ति और मुक्तिको देनेवाला है ॥ ८० ॥ शिवजीने वेदोंका सारअंश निकालकर इसमें रख दिया है और यह अत्यन्त अलभ्य वस्तु है । किन्तु तुम्हारे सच्चे प्रेमके वशीभूत होकर मैंने तुमको बतलाया है ॥ ८१ ॥ जो प्राणो मुवह-शाम या तीनों कालमें इसका पाठ करता है, उसके ब्रह्महत्या जैसे महान् पातक तथा सुवर्णका चुराना, मर्यादा, गुह्यके विष्णीनेपर लेटना, गोवध, किसी प्रकारके मानसिक पाप आदि जो संकड़ों कल्पसे एकत्रित हो गये हों, वे सब श्रीरामस्तवराजके स्मरणमात्रसे नष्ट हो जाते हैं । यह बात विल्कुल सच है । इसमें किसी प्रकारका धोखा न समझना चाहिए ॥ ८२-८५ ॥ रामचन्द्र सत्य परब्रह्म है । उनसे बढ़कर और कोई है ही नहीं । अतएव यह समस्त संसार रामका ही स्वरूप है ॥ ८६ ॥ हे रामचन्द्रजी ! हे रघुपुज्ज्ञ ! हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! हे रघुनायक ! हे राघवेश । हे राजाधिराज । हे रामचन्द्र । मैं एक अकिञ्चन दास आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ८७ ॥ नवविकसित निर्मल नील-कमल-दल सरीखे जिनका ज्याम स्वरूप है, जिनको किसी प्रकारकी कामना नहीं है, जो पूर्ण शान्तमूर्ति है, जो निर्मल गुणोंके राशिस्वरूप हैं, जो ध्यानारूढ़ मुनियोंके मनमानसके हंस हैं, जो अपने भ्रूभङ्गमात्रसे संसारको विद्वंस करनेमें समर्थ हैं, ऐसे रघुवंशभूषण तथा परम पुरुष रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८८ ॥ हे शिष्य । इस तरह मैंने तुम्हारे प्रश्नानुसार यह पापराशिनाशक स्तवराज तुम्हें सुना दिया ॥ ८९ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपांडेपृष्ठन 'उयोत्सना' भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो । मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि अयोध्यामें परम रूपवती सीताके

कथं भुक्ता वरा भोगाः किं किमाचरितं शुभम् । चरितं तस्य सकलं वद मंगलदायकम् ॥ ३ ॥  
श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । रणदीक्षां वाजिमेधदीक्षां च रघुनन्दनः ॥ ३ ॥  
निर्वाप्य सीतया रेमेऽयोद्यायां वंधुभिः सुखम् । जानकीं रंजयामास नानाभोग्यमनोहरैः ॥ ४ ॥  
तत्किञ्चिच्छृणु मांगन्यं विलासचरितं शुभम् । सीतया कोसलेऽस्य श्रवणान्मङ्गलप्रदम् ॥ ५ ॥  
कः कुत्सन्त चरितं वक्तुं तयोः क्रीडान्वितं क्षमः । अतः संक्षेपतः किंचिद्रस्यामि तव सन्निधौ ॥ ६ ॥  
अथ सीतायुतो रामः पार्वत्या शकरो यथा । क्रीडां चकार कैलासेऽयोद्यायां स तथाऽक्षरोत् ॥ ७ ॥  
हेमरत्नमये दिव्यगेहे वैकुण्ठसन्निभे । निद्रास्थानं राघवस्य मनोज्ञं शशिसन्निभम् ॥ ८ ॥  
भित्तौ रत्नोपला यत्र हेम्नः पंकोऽस्ति यत्र हि । यत्र स्तं भाः स्फाटिकाश्च यत्र मारकतोऽद्वाः ॥ ९ ॥  
प्रतोन्यः शतशो रम्याः शेषं नीलादिभिश्चितम् । मुकुरैरुज्ज्वला यत्र भित्तयश्चित्रचित्रिताः ॥ १० ॥  
यत्र हेममयी भूमिर्यत्र मुक्तामयं शुभम् । वितानं पुष्पहारैश्च मुक्तागुच्छैर्विराजितम् ॥ ११ ॥  
हेमतंतुमयान्यत्र भित्तिवस्त्राण्यनेकशः । यत्रायुतमनुच्छैश्च संमदो नैव जायते ॥ १२ ॥  
एवं तद्विस्तृतं रम्यं रत्नदीपैर्विराजितम् । हेमकुम्भा विराजन्ते प्रासादाग्रेषु चित्रिताः ॥ १३ ॥  
यत्र चित्राण्यनेकानि मोहयन्ति मृगीदशाम् । यत्र हेममया रम्याः पर्यकाश्चित्रचित्रिताः ॥ १४ ॥  
हेमकौशेयसंभूतं तु पद्मुचित्वं गुणिताः । महार्हवसनैः पुष्पजालैराञ्छादिताः शुभाः ॥ १५ ॥  
चतुष्कोणे लंबमानमुक्ताधोपैर्विराजिताः । येषु दिव्याः कशिपवस्तथोपवर्हणानि च ॥ १६ ॥  
केकिपक्षमयान्येषु चामराणि महाति च । गोपुच्छचालखर्जीसंभवादानि संति हि ॥ १७ ॥

साथ रहने हुए रामचन्द्रजीने किस प्रकारके भोगोंकी भोगा और कोन-कोनसे शुभ कार्य किये । इस प्रकार समस्त मङ्गलदायक रामचरित्र आप मुझको सुनाइए ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है । सावधान होकर सुनो । रामचन्द्रजीने जब रणदीक्षा और अश्वमेघ यज्ञकी दीक्षा इन दोनों दीक्षाओंका काम पूरा कर दिया । तब सीता तथा अपने सब भ्राताओंके साथ राम सुखपूर्वक रहने लगे । उन्होंने विविध प्रकारके भोगोंसे सीताको प्रसन्न किया ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनमें विलासका कुछ अंश जो परम मङ्गलदायक है, मैं तुम्हें सुनाता हूँ । सीता-रामका यह चरित्र अवण करनेसे कल्पाण होता है ॥ ५ ॥ सीता-तथा रामके समस्त चरित्र कहनेको शक्ति तो हममें अथवा किसीमें भी नहीं है । अतएव मैं उनको संक्षिप्त रोचिसे तुम्हें सुनाऊंगा ॥ ६ ॥ अश्वमेघयज्ञके अनन्तर रामचन्द्रजी शङ्कुर-पार्वतीके समान सीताजीके साथ कैलास सदृश अयोध्यामें रहकर विहार करने लगे ॥ ७ ॥ सुवर्णं तथा अनेक प्रकारके मणियोंसे रचित एवं वैकुण्ठके समान दिव्य भवनमें चन्द्रमा सदृश स्वच्छ तथा सुन्दर रामचन्द्रजीका शयनकक्ष था ॥ ८ ॥ जिसकी दीवारोंमें रत्नोंके पत्थर सुवर्णके नारेसे जड़े गये थे । जिसमें चारों ओर सफटिक और मरकत मणिके स्तम्भ लगे हुए थे ॥ ९ ॥ जिसमें तीलम आदि मणियोंके छज्जे बने हुए थे । जिसमें चारों ओर दर्पणोंके लगे रहनेसे वह भवन विलकूल श्वेतवर्णका दिखायी देता था । दीवारोंमें कितने ही चित्र लगे हुए थे ॥ १० ॥ उस भवनकी भूमि सोनेकी थी, जिसमें मोतियोंकी झालरसे टैंकी हुई चाँदनी लगी थी ॥ ११ ॥ जिसमें सोनेके तारसे बने हुए कपड़ोंकी चादरें जगह-जगह टैंगी हुई थीं । वह भवन इतना विशाल था कि उसमें दस हजार मनुष्योंकी भी डृ सहजमें सम्भाजाती थी ॥ १२ ॥ इस प्रकार वह भवन बड़ा विस्तृत तथा साफ-सुयरा था और उसमें रत्नोंके दीपक जला करते थे । प्रासादके अग्रभागमें सोनेके कलश चित्रित किये हुए थे ॥ १३ ॥ उसके हजारों चित्र स्त्रियोंको पुष्प कर देते थे और उन्हें देखकर स्त्रियोंको अपने तन-बदनकी भी सुवि नहीं रह जाती थी । वहाँ सुवर्णके पलंगोंपर अनेक विस्तर विछेहे हुए थे ॥ १४ ॥ जिनपर सुवर्णके तार और रेशमकी बुनी हुई चादरें पड़ी थीं । जो भवन कीमती कपड़ों और पूलोंसे सजा हुआ था ॥ १५ ॥ जिसके चारों चारों कोनोंमें मोतियोंके बड़े-बड़े शुभे लटके हुए थे, जिसमें गखमलकी जड़ाऊ तकियायें लगी हुई थीं ॥ १६ ॥ कहीं भीरके पखनोंके बड़े-बड़े